1943 में बंगाल के भीषण
अकाल पर केन्द्रित उपन्यास

भूख

अमृतलाल नागर

भूख

भूख

अमृतलाल नागर

राजपाल

ISBN: 9789350643754
संस्करण: 2016 © अमृतलाल नागर
BHOOKH (Novel) by Amritlal Nagar

राजपाल एण्ड सन्ज़
1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट-दिल्ली-110006
फोनः 011-23869812, 23865483, फैक्स: 011-23867791
e-mail: sales@rajpalpublishing.com
www.rajpalpublishing.com
www.facebook.com/rajpalandsons

विषय-सूची

भूमिका
कथा-प्रवेश
मोहनपुर ऐंग्लो-बंगाली स्कूल

भूमिका

आज से इकहत्तर वर्ष पहले सन् 1899-1900 ई. यानी संवत् 1956 वि. में राजस्थान के अकाल ने भी जनमानस को उसी तरह से झिंझो ड़ा था जैसे सन् '43 के बंग दुर्भिक्ष ने। इस दुर्भिक्ष ने जिस प्रकार अनेक साहित्यिकों और कलाकारों की सृजनात्मक प्रतिभा को प्रभावित किया था उसी प्रकार राजस्थान का दुर्भिक्ष भी साहित्य पर अपनी गहरी छाप छोड़ गया है। उस समय भूख की लपटों में जलते हुए मारवाड़ियों के दल के दल एक ओर गुज़रात और दूसरी ओर पश्चिमी उत्तर प्रदेश के नगरों में पहुँचे थे। कई बरस पहले गुज़राती साहित्य के एक वरेण्य कवि, शायद स्व. दामोदरदास खुशालदास बोटादकर की एक पुरानी कविता पढ़ी थी जो करुण रस से ओत-प्रोत थी। सूखे अस्थिपंजर में पापी पेट का गड्ढा धँसाये पथराई आँखों वाले रिरियाते हुए मारवाड़ी का बड़ा ही मार्मिक चित्र उस कविता में अंकित हुआ है। सन् '47 में आगरे में अपने छोटे नाना स्व. रामकृष्ण जी देव से मुझे उक्त अकाल से सम्बन्धित एक लोक-कविता भी सुनने को मिली थी जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस समय याद आ रही हैं—

"आयो री जमाईड़ो धस्क्यो जीव कहा से लाऊ शक्कर घीव —
छप्पनिया अकाल फेर मती आइजो म्हारे मारवाड़ में।"

सन् '43 के बंग दुर्भिक्ष में मनुष्य की चरम दयनीयता और परम दानवता के दृश्य मैंने कलकत्ते में अपनी आँखों से देखे थे। सियालदह स्टेशन के प्लेटफार्म, कलकत्ते की सड़कों के फुटपाथ ऐसी वीभत्स करुणा से भरे थे कि देख-देखकर आठों पहर जी उमड़ता था। कलकत्तेवालों को उन दृश्यों से घिर जाने के कारण अपना शहर काटता था। इतनी बड़ी भूख के वातावरण में लोगों से मुँह में कौर लेते नहीं बनता था। बहुत-से ऐसे भी थे जिनके ऊपर उन दृश्यों का उतना ही असर होता था जितना चिकने घड़े पर पानी का होता है। 'दुनिया

दुरंगी मकारा सराय, कहीं खूब-खूबां कहीं हाय-हाय।' यही हाल था।

धनाभाव में अथवा अपने से शक्तिशाली के द्वारा भूखे रहने पर विवश किये जाने और स्वेच्छा से व्रत लेकर निराहार रहने में, बात एक होने पर भी ज़मीन-आसमान का अन्तर होता है। सन् '41 में एक बार अर्थाभाव के कारण मुझे बंबई में चार दिनों तक भूख की ज्वाला सहनी पड़ी थी। सन् '43 के अन्त में कलकत्ते से वापस लौटने पर मैं स्वेच्छा से चार दिनों तक भूखा रहा था। पहले अनुभव में बड़ी घुटन, बेबसी और विद्रोह-भावना पायी, दूसरे अनुभव में सहनशक्ति बढ़ी और चेतना गहरायी। मेरा मन उन दिनों कलकत्ते के दृश्यों से इतना भरा हुआ था कि अपनी इच्छा से आरोपित भूख को जनमन की करुण में लय करके सहज बिसार देता था। इस उपन्यास के आरम्भिक नोट्स मैंने अपने उसी उपवास के दौर में लिखे थे। लेकिन यहाँ पर अपना एक और अनुभव लिखे बिना बात अधूरी ही रह जायेगी। सन् '44 में अपने फिल्मी धंधे से एक महीने की छुट्टी लेकर बंबई से आगरा आने पर जब मैं इस कथानक के दृश्य बाँधने लगा तो शुरू के आठ-दस दिनों तक मुझे भूख ने बेहद सताया। लिखते-लिखते बीच में कुछ खाने को मचल-मचल उठता था। बाद में यह मनोविकार स्वयं ही दूर भी कर लिया।

सन् '43 का बंग-दुर्भिक्ष दैवी प्रकोप न होकर मनुष्य के स्वार्थ का एक अत्यन्त जघन्य रूप प्रदर्शन और उसका स्वाभाविक परिणाम था। भारत के एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. महालनवीस ने उन दिनों सही आँकड़े प्रस्तुत करके यह सिद्ध कर दिखलाया था कि उस साल बंगाल में धान की उपज के हिसाब से अकाल पड़ने की कोई सम्भावना ही नहीं थी। द्वितीय महायुद्ध में गला फँसाए हुए तत्कालीन ब्रिटिश सरकार और निहित स्वार्थों-भरे अफ़सर-व्यापारियों के षड्यन्त्र के कारण ही हज़ारों लोग भूखों तड़प-तड़पकर मर गये, सैकड़ों गृहिणियाँ वेश्याएँ बनायी जाने के लिए और सैकड़ों बच्चे गुलामों की तरह दो मुट्ठी चावल के लिए मोल बिक गये। महायुद्ध की पृष्ठभूमि में तस्वीर यों बनती थी कि एक शक्तिशाली पुरुष दूसरे निर्बल के मुँह का निवाला छीन और खुद खाकर तीसरे शक्तिशाली से मारने या मर जाने की ठानकर लड़ रहा था। उसके इसी हठ में असम्भव सम्भव हो गया। वही असम्भव सम्भव इस उपन्यास में अंकित है। उत्तर प्रदेश के एक बड़े कम्युनिस्ट नेता, मेरे मित्र रमेश सिन्हा ने सुप्रसिद्ध फ़ोटो चित्रकार श्रीयुत चिन्ताप्रसाद से बंबई में भेंट करा दी। उन्होंने अकालग्रस्त क्षेत्र में जाकर कई सौ चित्र खींचे थे। चिन्ता बाबू ने मुझे उन चित्रों के पीछे की घटनाएँ भी सुनायी थीं। श्रीयुत जैनुल आब्दीन के बनाये रेखाचित्र भी देखने को मिले थे। मानवीय करुण के उन मार्मिक चित्रों से मैंने प्रेरणा पायी थी अतः इनका कृतज्ञ हूँ।

इस उपन्यास का पहला संस्करण सन् '46 में प्रकाशित हुआ था। तब से अब तक कई विद्वान आलोचकों और उपन्यास साहित्य पर शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करनेवाले अनेक छात्रों ने इस उपन्यास को अपनी-अपनी कसौटियों पर कसकर इसे जीवन का सही दस्तावेज़ बतलाया है। कसने का कष्ट उठाने के लिए उन सबके प्रति कृतज्ञता अनुभव करता हूँ।

इस संस्करण में उपन्यास का पुराना नाम बदल देने के लिए भी सफ़ाई देना आवश्यक है। प्रकाशक को लगा कि नाम बदल देना चाहिए। उनकी इस बात से सहमत होने के लिए मेरे पास भी एक कारण था। लगभग साल-सवा साल पहले एक सज्जन, जिन्होंने इस उपन्यास का नाम भर ही सुना था, मुझसे पूछने लगे—"क्या यह पौराणिक उपन्यास है।" उनके इस प्रश्न से लगा कि जो नाम 26 वर्ष पहले अकाल की स्मृति ताज़ी होने के कारण पाठकों के मन में अपना स्पष्ट अर्थ-बोध करा सकने में समर्थ था वह अब अकाल से सम्बन्धित जन-स्मृति के पुरानी पड़ जाने के कारण शायद दुरूह हो गया है। जिन भावी शोधकर्ता छात्रों को नाम परिवर्तन के कारण कुछ अड़चन महसूस होगी उनसे अभी ही क्षमा माँगे लेता हूँ। बाकी पाठकों के लिए नाम-परिवर्तन से कोई समस्या उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

चौक, लखनऊ-3
9 जुलाई, 1970

—अमृतलाल नागर

कथा-प्रवेश

बर्मा पर जापानियों का कब्ज़ा हो गया। हिन्दुस्तान पर महायुद्ध की परछाई पड़ने लगी।

हर शख्स के दिल से ब्रिटिश सरकार का विश्वास उठ गया। 'कुछ होने वाला है—कुछ होगा!'—हर एक के दिल में यही डर समा गया।

यथाशक्ति लोगों ने चावल जमा करना शुरू किया। रईसों ने बरसों के खाने का इन्तज़ाम कर लिया। मध्यवर्गीय नौकरपेशा गृहस्थों ने अपनी शक्ति के अनुसार दो-तीन महीने से लगाकर छः महीने तक की खुराक जमा कर ली। खेतिहर मज़दूर भूख से लड़ने लगा।

व्यापारियों ने लोगों को कम चावल देना शुरू किया।

हिन्दू और मुसलमान, व्यापारी और धनिक वर्ग, अपनी-अपनी कौमों को थोड़ा-बहुत चावल देते रहे।

खेतिहर मज़दूर भीख माँगने पर मजबूर हुआ।

शुरू में भीख दे देते थे; फिर अपनी ही कमी का रोना रोने लगे। दया-दान की भावना मरने लगी।

भूख ने मेहनत-मज़दूरी करनेवाले ईमानदार इन्सानों को खूँख्वार लुटेरा बना दिया।

भूख ने सतियों को वेश्या बनने पर मजबूर किया।

मौत का डर बढ़ने लगा।

मौत का डर आदमियों को परेशान करने लगा, पागल बनाने लगा।

और एक दिन चिर आशंकित, चिर प्रत्याशित मृत्यु, भूख को दूर करने के समस्त साधनों के रहते हुए भी, भूखे मानव को अपना आहार बनाने लगी।

तब आशावादी मानव कठोर होकर मृत्यु से लड़ने लगा। उपन्यास का प्रारम्भ यहीं से होता है।

मोहनपुर ऐंग्लो-बंगाली स्कूल के बरामदे में पैर रखते ही हेडमास्टर पांचू गोपाल मुखर्जी को ध्यान हो आया कि हीरू बाग्दी का लड़का गणेश लगातार दस दिन तक मलेरियाग्रस्त शरीर की सारी शक्ति के साथ भूख से लड़कर, आज सवेरे चल बसा।

पांचू ने अपने दिल पर एक गहरा धक्का महसूस किया। उसे लगा जैसे कि आज उसका स्कूल मर गया। चार दिनों के अटूट उपवास और काले भविष्य की चिन्ता भी जो आघात उसे न पहुँचा सकी थी, वह सहसा गणेश के मरने की खबर से उसे पहुँचा था। लगा, जैसे मौत बहुत निकट से उसे अपना परिचय देने के लिए आयी हो।

अकाल की न हल होने वाली समस्या 'क्या होगा' प्रश्न के साथ, सारी मानसिक और शारीरिक शक्ति छीनकर, घोर अंधकार के 'कल' में जब उसे फेंक देती थी, तब वह मोहवश अपने आने वाले कल को ठीक-ठीक देख न पाता था। लेकिन आज गणेश की मृत्यु ने सहसा उसकी और उसके परिवार के आने वाले 'कल' की तस्वीर उसके सामने लाकर खड़ी कर दी थी।

आँखों के आगे अँधेरा छा गया। सहसा पांचू को किसी सहारे की ज़रूरत महसूस हुई। उसका हाथ अपने-आप खम्भे की तरफ़ बढ़ गया और उसके सहारे, गिरते शरीर को टेक देकर, उसने अपने को सँभाल लिया।

खम्भे के सहारे टिका हुआ वह गणेश की, सिर्फ़ गणेश की बात सोचने लगा। गणेश बाग्दी उसका पहला शिष्य था।

पांचू की आँखों के सामने वे सब दिन, एक झलक दिखाकर, तेज़ी से आपस में घुल-मिल गये। फिर एक-एक बात उसे याद आने लगी। इण्टरमीडिएट पास करने के बाद एक ओर सहकारी वज़ीफा लेकर आगे पढ़ने का प्रलोभन और दूसरी ओर माँ का पत्र। जीवन में पहली बार उसे अपना कर्तव्य सोचने के लिए गम्भीर होना पड़ा था।

पांचू अपनी वर्तमान परिस्थितियों को, बीते दिनों की बातें सोचकर, बहलाने लगा —"अगर मैं बराबर पढ़ता ही जाता! कितना अच्छा कैरियर था मेरा। प्रिंसिपल जॉर्डन मुझे शर्तिया स्कॉलरशिप दिला देते...लेकिन उससे क्या आज की परिस्थिति में कुछ सुधार हो जाता?"

पांचू के विचारों को सहसा एक झटका लगा। अपने कल्पित स्वर्ग को ठोकर से तीन-तेरह करने के लिए उसने फिर सोचा—"मैं होता इंग्लैंड में, और यहाँ घर-भर सब खत्म हो चुका होता। आई.सी.एस. होकर ही मुझे कौन सुख मिलता।"

पांचू को अपना आई.सी.एस. न होना अच्छा लगा। इतने 'सिविल सर्वेण्ट' होकर आये, और अभागे देश के सर पर डॉसन के बूट फाड़कर चले गये। भारतीय नागरिकों के नौकर भारतीय नागरिकों के हुक्काम बनकर अपनी असलियत और अपना कर्तव्य भूल गये।

पांचू सोचने लगा—"वह इसी तरह का एक नागरिक नौकर होता। एस.डी.ओ. होकर वह भी शायद इसी तरह भुखमरों का निरीक्षण करने आता। दयाल ज़मींदार का आतिथ्य ग्रहण कर स्कॉच ह्विस्की के ज़ोर पर नवाबी प्लेटें हज़म करता। मोनाई बनिया इसी तरह उसके अहलकार के सामने खींसें निपोर-निपोरकर अहलकार की जेब को फुला देता। और थोड़ी ही देर बाद अहलकार की जेब की अधिकांश सूजन खुद उसकी—एस.डी.ओ. पांचू गोपाल मुखर्जी आई.सी.एस. की—जेब को उड़नी बीमारी की तरह छू जाती।"

पांचू को अपने गाँव में एस.डी.ओ. की 'विज़िट' याद आने लगी। दयाल ज़मींदार के यहाँ जिस तरह और जो कुछ उसने देखा था, एस.डी.ओ. के रूप में उसी तरह अपने लिए भी वह उसकी कल्पना करने लगा।

सहसा पांचू का मन घृणा से भर उठा। ध्यान दूसरी तरफ़ करने के लिए उसने स्कूल के बरामदे के सामने फैले हुए मोहनपुर गाँव की तरफ़ से अपनी खोई हुई आँखें फिरा लीं। खम्भे का सहारा धीरे-धीरे हाथ हटाकर छोड़ा और क्लास-रूम की तरफ़ चला। दीवाल पर स्कूल में लगाये जाने के लिए भेजे गये सरकारी पोस्टर चिपके थे। क्लास के दरवाज़े के पास ही पहला पोस्टर था—"अन्न की पैदावार बढ़ाओ।"

घृणा की भावना का एक झोंका उसे फिर लगा। झुंझलाहट में उसके मुँह से अपने-आप ही निकल पड़ा—"किसके लिए?"

फिर उसके हाथ ने झटककर पोस्टर को चीर डाला।

पांचू ने जैसे बदला ले लिया हो। उसकी उत्तेजना कम हुई। तभी उसके मन में एक आशंका भी उठ खड़ी हुई—"किसी ने उसे पोस्टर फाड़ते देख न लिया हो!"

पांचू ने झटपट मुड़कर सामने की ओर देखा। आसपास में कोई नहीं था। दूर, मोनाई बनिये की दुकान पर, जीवित नर-कंकालों की भीड़ हो-हुल्लड़ मचा रही थी। शायद किसी की निगाह उस पर नहीं पड़ी।

पांचू ने एक निःश्वास छोड़ी और कमरे का ताला खोलने लगा। वह सोच रहा था—"अगर किसी ने देख लिया हो...नहीं-नहीं...मान लो, अगर कोई देख लेता? मोनाई की दुकान पर पुलिसमैन तो खड़ा ही है, अगर उसकी नज़र पड़ गयी हो, तब तो बड़ी आफत होगी। वह आयेगा, हाथ पसारेगा, नहीं तो फिर थाने में रिपोर्ट! दूँगा कहाँ से साले को? देने को ही होता तो आज चार दिन से घर में ये एकादशी न होती। पर वह क्या समझे? गाँव में तो सब यही

समझते हैं कि पांचू मास्टर ने न जाने कहाँ-कहाँ की जमा गाड़कर रख ली है।"

पांचू ने मुड़कर फिर देखा, कहीं कोई आ तो नहीं रहा है। फिर झटपट क्लास-रूम में घुस गया, जैसे वह सुरक्षित जगह में पहुँच जाना चाहता हो।

कमरा स्तब्ध। डेस्कों और बेंचों की लम्बी-लम्बी चार कतारें; डेस्कों पर स्याही के तमाम दाग और गर्द की पर्त; कुर्सी-मेज़, दीवालों पर टँगे हुए बंगाल, हिन्दुस्तान और योरुप के तीन नक्शे; कोने में छोटी-सी मेज़ पर रखा हुआ ग्लोब; ब्लैक बोर्ड पर लिखी हुई अंग्रेज़ी की एक कविता।

पांचू का ध्यान उधर गया। बोर्ड पर भी धूल जम रही थी। आज हफ़्ते-भर से स्कूल का चपरासी नहीं आया था। जब से वह गाँव छोड़कर गया है तब से किसी ने स्कूल की सफाई नहीं की, उसने भी नहीं। एक दिन था जब वह हर शनिवार की शाम को छुट्टी से पहले लड़कों के साथ खुद सारे स्कूल की सफ़ाई करता था।

पांचू के होंठों पर एक फीकी-सी हँसी की रेखा खिंच गयी। उन दिनों की चहल-पहल, वह जोश, उसका और उसके स्कूल का वह ऐश्वर्य...।

मीठे स्वप्न-सी इस तेज़ याद को पांचू का चार दिन का भूखा शरीर और चिन्ताक्षत मन सह न सका। बड़ी मुश्किल से अपने शरीर को संभालकर कुर्सी पर अपने-आपको जैसे छोड़कर वह बैठ गया। दोनों बाँहें मेज़ पर टिकाकर उसने सिर झुका लिया।

"तो क्या स्कूल बन्द हो जायेगा?"

यह प्रश्न इतना साफ़-साफ़ और कुछ इस तरह स्पष्ट होकर पांचू के मन में आज उठ आया था, मानो पहले इस प्रश्न से उसका कभी वास्ता ही नहीं पड़ा हो। असल बात यह थी कि अब से पहले इस प्रश्न के उठने की सम्भावना होने पर पांचू अपने मन को बहलाने में सफल हो जाता था; लेकिन आज गणेश की मृत्यु ने उसकी आँखों के सामने से भुलावे का पर्दा हटा दिया था।

"तो फिर...?"

यह एक ऐसा प्रश्न था जो स्कूल बन्द हो जाने की कल्पना के बाद पांचू के मन में फाँस की तरह चुभता था और अँधेरे में भूत की तरह उसकी सारी शक्तियों को स्तम्भित कर देता था।

ग्यारह आदमियों के परिवार का यह स्कूल ही तो आसरा था। तुलसी इस साल पार लगती। माँ के सिर से चिन्ता का बोझ उतर जाता। लेकिन जाने कहाँ से आ गया यह अकाल। क्या हो गया, कुछ समझ में नहीं आता—"दुनिया जायेगी किधर? क्या यह अकाल कभी खत्म न होगा? क्या यही प्रलय है...?"

पांचू के दिमाग को प्रलय के घनघोर बादलों ने ढँक लिया। उसकी बन्द आँखों के आगे घना अँधेरा-सा छा गया। उसे लगा जैसे उस घने अँधेरे में वह कहीं बहुत ऊँचे पर से नीचे की तरफ़, तेज़ी के साथ, खींचकर ले जाया जा रहा हो।

पांचू के लिए यह एक नया अनुभव था—"क्या मैं मर रहा हूँ? लेकिन मरूँगा किस तरह? गणेश को भूख के साथ-साथ इतना पुराना मलेरिया भी तो था। मैं तो खाली भूखा ही हूँ—और माँ-वाँ सब लोग भी बस भूखे ही हैं। फिर चार दिन की भूख भी कोई भूख है? हिन्दू का घर, हमारे यहाँ चातुर्मास का उपवास होता है। और वैसे तो आज शाम तक चावल मिल ही जायेगा। कुछ नहीं, डर की कोई बात नहीं है।"

एक बार अपनी सारी शक्तियों को बटोरकर पांचू ने मेज़ पर से अपना सिर उठाया। फिर उसी जोश में कुर्सी से उठकर क्लास-रूम में टहलने लगा। दो चक्कर पूरे किये, तीसरा चक्कर लगाते ही एक डेस्क पर हाथ टेककर खड़ा हो गया।

अँधेरे में नीचे की तरफ़ खिंचते चले जाने के कल्पना-मिश्रित अनुभव ने पांचू के मन को जैसे कील दिया था। मृत्यु के समान उस स्तब्धता के बंधन से अपने को मुक्त करने के लिए ही जैसे उसने उठकर टहलना शुरू कर दिया था। वह जैसे यह प्रकट करना चाहता था कि उसमें अभी शक्ति है—यह देखो, वह टहल रहा है। लेकिन दो चक्कर लगाने के बाद ही उसे चक्कर-सा आने लगा। फिर तुरन्त ही उसने अपने को सँभाल लिया—"नहीं-नहीं, मुझे चक्कर नहीं आ रहा है, यों ही खड़ा हो गया हूँ। छिः-छिः, कितनी गर्द जम गयी है, देखो तो।"

पांचू ने अपनी जेब से रूमाल निकाल, बेंच पर बैठ, धीरे-धीरे डेस्क साफ़ करना शुरू कर दिया—"जब ये डेस्कें बनकर आयी थीं, कितनी अच्छी लगती थीं। लेकिन अब ये स्याही के दाग—अरे, ये तो लग ही जाते हैं। फिर लड़के जो ठहरे। लेकिन गणेश उन सबमें...अच्छा-अच्छा होगा; बचपन में सब यों ही लापरवाह होते हैं। हम लोग नहीं थे क्या? लेकिन मुझे अपनी हरएक चीज़ का बड़ा ख्याल रहता था। यह देखो, ताला तक नहीं लगा के जाते, बेवकूफ़!"

पांचू ने दराज़ खोली। देखा, दराज़ में एक स्लेट रखी हुई थी। उस पर एक पाउण्ड-शिलिंग-पेन्स का जोड़ किया हुआ था। आदत ने पांचू को काम दिया। उसने हिसाब जाँचा, हर बार 'हासिल' में दो जुड़े हुए थे। पांचू की मास्टर-वृत्ति उभरी—"बेईमान...!"

पांचू ने स्लेट फेंक-सी दी। अगर कहीं स्लेट वाला सामने होता तो उसके कानों की रगें इस वक्त फड़क रही होतीं।

पांचू की नज़र फिर दराज़ की तरफ़ गयी। उसने देखा, एक कागज़ पर कैंची की मदद से आदमी से मिलती-जुलती और बनमानुसों से जुदा एक नयी किस्म की नस्ल ईजाद की गयी है। हाथ में उठाकर देखा तो दूसरी तरफ़ मोटी और महीन कलमों तथा लाल-नीली पेंसिल से, आदिम युग के चित्रकार की भाँति, अपनी कला से पूर्ण सन्तुष्ट किसी नन्हे चित्रकार ने अपने तथा साथियों के मनोरंजन के लिए एक तस्वीर बना रखी थी। सबसे ऊपर सिर का एक छोटा गोला, उसमें कान कटे हुए, चोटी फरमायशी तौर पर टोपी से बाहर, मगर सिर के उस कटे हुए गोले के अन्दर ही, इसके अलावा दो आँखें, उन पर चश्मामय कमानियों के, नाक की जगह पर एक लम्बी लकीर और उसके नीचे साढ़े तीन हाथ की लम्बी मूँछें, उसी गोले के

अन्दर समाई हुई।

इस छोटे गोले को एक बहुत बड़े गोले से मिलाने के लिए गले से बाबा आदम के पुल का काम लिया गया है। मालूम पड़ता है, कैंची से गला मन-मुताबिक कट न सका, इसलिए बाप के ब्लेड से फिनिशिंग टच दिया गया है। बड़े गोले में से दो मुसल्लम हाथ और दो पैर निकालने में किस मशक्कत से काम किया गया है, इसकी गवाही का रुख देती है। पैरों के नीचे ज़मीन है, और उस पर अंग्रेज़ी अक्षरों में लिखा हुआ है—"दिस इज दि कानाई मास्टर-रट्टूबीर।"

पांचू देखते ही हँस पड़ा—"लड़के भी कैसे शैतान होते हैं।"

मन बहल गया। शायद और कुछ हो, यह देखने के लिए दराज़ ज़रा बाहर खींची। अंग्रेज़ी किताब का फटा हुआ एक वर्क पांचू ने देखा—"लेसन नम्बर ट्वण्टीफोर, हम्प्टी-डम्प्टी... पढ़ते क्या हैं, कम्बख्त किताबों से कुश्ती लड़ते हैं!"

पांचू ने उसी हेडमास्टराना तिनतिनाहट और बदले हुए तेवरों से पन्ने के दूसरी तरफ़ देखा। कोने पर दो जुदा-जुदा लिखावटों में कुछ लिखा हुआ था। पहले बंगला में लिखा था, 'खुट्टी'; और उसके नीचे अंग्रेज़ी में दस्तखती लिखावट में डी.आर.। दूसरी लिखावट, उसके ठीक नीचे ही, अंग्रेज़ी में 'ग्रांटेड', बकलम खुद तीन हरूफ़, जी.के.सी.। नीचे ठाठ से लकीर मारकर तारीख तक लिख दी गयी थी—27-1-43।

"जी.के.सी, ये कौन बिगड़े दिल हैं?" पांचू अपने शिष्यों में छुट्टी ग्रांट करने वाले जी.के.सी. महाशय को पहचानने की कोशिश करने लगा—"गोपाल, अच्छा! अपना वो, काकी नम्बर आठ का भतीजा।"

पड़ोस के रिश्ते से रिटायर्ड सब-पोस्टमास्टर रामतनु बाबू पांचू के काका हुए। रामतनु बाबू की किस्मत को शुरू से ही जोरुओं का नाश्ता करने की आदत थी; लेकिन ये काकी नम्बर आठ, मालूम पड़ता है, काका को ही पचाकर मानेंगी। इस अकाल में भी अमर रहने की चुनौती देती हैं। गोपाल उनके भाई का लड़का है।

अप्रत्याशित रूप से पांचू का मनोरंजन हो रहा था। एक सेकेंड के लिए वह भूख, परिवार, बंगाल, अकाल—सारे वर्तमान को ही भूल गया। शायद कुछ और मसाला मिले, पांचू के हाथ ने छोटी-सी दराज़ को खींचकर बाहर ही निकाल लिया।

"अरे, यह क्या?" आश्चर्य की सीमा तक ही, इस नये अनुभव से, पांचू को पीड़ा भी हुई। आश्चर्य के भाव का पारा तो नीचे उतरने लगा, लेकिन पीड़ा उतनी ही बढ़ती गयी—"ये दीमकें कहाँ से आ गयीं?"

एक क्षण के लिए वह जिस तरह अपने वर्तमान को भुलाकर बच्चों के खिलवाड़ में बदल गया था, उसी तरह दराज़ को दीमकों द्वारा खाया हुआ देखकर, प्रतिक्रिया के रूप में, उसका दर्द दूना हो गया। चारों ओर से असफलता और हीन भावना जैसे उसे घेरकर दबोचने के लिए चली आ रही हों।

दराज़ उलटकर देखा, पीछे देखा, डेस्क के नीचे झुककर देखा, कौतूहलवश पास की दूसरी डेस्कों के नीचे भी झाँककर देखा, दीमकें सारा काठ चाटे जा रही थीं। उनके गुच्छे के गुच्छे अपने आहार पर चिपके हुए थे।

पांचू को लगा जैसे दीमकों के कारण ही उसका स्कूल सदा के लिए बन्द हो जायेगा। यों कभी न कभी तो अकाल खत्म होता ही—होगा ही। उसके बाद फिर यही डेस्कें काम में आतीं। लेकिन अब?

पांचू के मन में आशा इस रूप में पहले कभी नहीं झाँकी थी; फिर भी इस समय यह विचार उसे अपना पूर्व परिचित-सा लगा।

स्कूल का भविष्य आज कई दिन से पांचू के मस्तिष्क की बहुत बड़ी उलझन बना हुआ था। फरवरी के आखिरी हफ़्ते से ही लड़के कम होने लगे थे।

एक सौ बाईस लड़कों में से धीरे-धीरे बीस गये, पच्चीस गये, पचास गये। आज 19 मार्च है और स्कूल में एक भी लड़का नहीं। यों तो आज हफ़्ते-भर से कभी वह खुद अकेला हो, और कभी-कभी मोनाई बनिये के चिरंजीव न्याड़ा, बगल में बस्ता दबाये, नमूदार हो जाते हैं। चपरासी खिदू हफ्ता-भर से गाँव छोड़कर चला गया है, तब से तीन कमरे तो खुले ही नहीं। कानाई मास्टर जनवरी में ही गाँव छोड़कर पछाँह चला गया था। बाद में रुना, सी.ओ.डी. में मिस्त्री हो गया है।

कानाई मास्टर है बड़ा अच्छा आदमी। जब सारा गाँव स्कूल और पांचू के खिलाफ खड़ा हो गया था तब कानाई लुहार ही बढ़कर उससे हाथ मिलाने आया था। पांचू की आँखों के सामने वह तस्वीर साफ़ खिंच गयी, जब वह और कानाई दिबू पंडित की पाठशाला में एक साथ पढ़ते थे। कानाई दिबू पंडित की पाठशाला से आगे न पढ़ सका, मगर उतने में ही वह मज़े की बंगला लिख-पढ़ लेता था। बाद में कानाई का पढ़ना-लिखना छुड़ाकर बाप ने उसे अपनी 'विद्या' देकर मिस्त्री बना दिया—ऐसा कि दो-चार-पाँच गाँवों में कानाई मिस्त्री का डंका बजने लगा। अपने साथ के पढ़े-लिखों में पांचू कॉलेज में फर्स्ट आया था और सरकार से वज़ीफा लेकर उसके विलायत जाने की भी कुछ अफ़वाह कानाई ने सुनी थी।

पांचू जब से गाँव आया है, कानाई उससे मिलता तो इस तरह मानो पांचू का सहपाठी होने के नाते उसे भी आत्मगौरव का बोध हो रहा हो। यह बात दूसरी है कि कानाई उससे मिलता कम ही था। दिन-भर अपने काम में फंसा रहता था।

फालतू वक्त काटने के लिए कानाई साप्ताहिक 'देश' का ग्राहक बन गया था, सो हफ़्ते-भर में एक-एक विज्ञापन तक घोट के पी जाता था। जब से 'देश' उसके पास आने लगा, तब से किसी अंक, किसी भी कविता-कहानी, लेख, नाटक-फाटक से लेकर विज्ञापन तक, किसी विषय में कानाई मास्टर को ज़रा कोई छेड़-भर दे और फिर देखे कि खट् से मशीन चालू हो जाती है।

पांचू ने एक बार उसका रिकार्ड स्थापित करवाया था। 'आनन्द मठ' पूरा का पूरा रटकर

सुनाने के लिए उसने कानाई मास्टर को चैलेंज दिया। उस वक्त तो वह कुछ बोला नहीं, किताब लेकर चला गया। चार दिन बाद आया, किताब सामने पटक दी और जनाब ने जो शुरू किया तो पहले के कॉमा-कोलन-फुलस्टॉप से लगाकर प्रेस की भूलें तक ज्यों की त्यों फुलझड़ी की तरह ज़बान से दनादन छूटने लगीं। तीन घंटे में सारी किताब खत्म—घाते में पुस्तक के अन्त में छपी हुई प्रकाशक के अन्य प्रकाशकों की सूची भी, कुल तारीफों के साथ, सुना डाली, सजिल्द-अजिल्द के दाम तक। तब पानी पिया।

कानाई मिस्त्री की यह सनक दूर-दूर तक कहावत बन गयी थी। पांचू ने जब स्कूल शुरू किया तो सारा गाँव खिलाफ। इधर स्कूल भी बराबर चालू रखना, और बीच-बीच में प्रिंसिपल जॉर्डन से मदद और सलाह माँगने के लिए शहर भी जाना। बड़ी मुसीबत हो गयी थी। घर में हिम्मत बँधानेवाली एक अकेली माँ थी, जब कहे तो यही—"पांचू, घबराना मत बेटा, मुसीबत में ही तो नारायण परीक्षा लेते हैं। उन्हें जब उबारना होता है, तो आप आते हैं।"

एक दिन कानाई मिस्त्री आया, आते ही बड़े रोब के साथ कहने लगा—"तुम्हारे साहस को देखकर मुझे तुम पर श्रद्धा हो गयी है। तुम हमारे गाँव के नेपोलियन बोनापार्ट हो!"

फिर कुछ सोचकर कानाई बिलकुल नजदीक आ गया और धीरे-धीरे कहने लगा—"मेरे पास कोई जमा तो है नहीं भाई। हाँ, जो कमाई है उस हैसियत से जो कहो तुम्हारे स्कूल की सेवा करूँ।"

पांचू को उस समय पैसे से अधिक सहयोगी की चाह थी। कानाई छाती भरकर बोला —"जहाँ तक मैं पढ़ा हूँ, सब लड़कों को पढ़ा दूँगा। तुम बेफिकर रहो। शहर जा के स्कूल के लिए मदद माँगो। यहाँ मैं संभाल लूँगा। बाकी एक बार ऐसा स्कूल बनाओ मास्टर, कि लाट साहब को भी यहाँ आना पड़े। तब इन गाँव वालों को मालूम होगा कि विद्या पढ़ने में कोई जात छोटी-बड़ी नहीं है।"

यह कहके उसने पांचू के कंधे पर हाथ से एक थपकी दी और बस, बाबू राइट-अबाउट टर्न! पांचू को एक सेकंड लगा, जैसे माँ के नारायण ही दिमाग से निकलकर कानाई के रूप में सामने दिखाई दिये हों। चित्त की सिसकती हुई अवस्था में उसे कानाई का यह अयाचित, अप्रत्याशित सहारा मिला था।

प्रसन्नता-मिश्रित आश्चर्य से स्तब्ध पांचू अभी कानाई के बारे में सोच ही रहा था कि कानाई फिर से कमरे में लौटकर बोला—"उस वक्त बोलने में मुझसे कुछ भूल हो गयी थी, पांचू बाबू। मैंने तुम्हें भूल से गाँव का नेपोलियन बोनापार्ट कह दिया। दरअसल मैं तुम्हें शेक्सपियर कहना चाहता था। तुम भी शेक्सपियर से कम विद्वान नहीं हो, पांचू बाबू! उसने 'पोयट्री' लिखकर लोगों को पढ़ाया और तुम स्कूल खोलकर पढ़ाते हो।"

फिर ज़रा एक सेकंड निश्चय करके बोला—"बस, यही ठीक है। तुम शेक्सपियर हो, नेपोलियन बोनापार्ट तो लड़ता था।"

"हः हः हः!"

ज़ोर-ज़ोर से हँसने की अपनी ही आवाज़ को सुनकर पांचू को होश आया। दीमकों-भरी दराज़ सामने आयी। अकाल, इस अकाल ने ही कानाई मास्टर को छुड़ाया। गोविन्द मास्टर भी मार्च के पहले हफ्ते में चले गये—"बारह रुपये में अब पोसाता नहीं, पांचू बाबू! कोई दयाल ज़मींदार से पूछे, साँस के बिना भी आदमी जी सकता है जो बैल खोलकर ले गये। इससे तो भीख माँगकर जीना भला। चार पेटों की आग से तो बचा रहूँगा।"

चले गये, गोविन्द मास्टर भी चले गये—सब चले गये—गणेश भी चला गया। ये स्कूल भी आज बन्द हो जायेगा। इसे बन्द करना ही पड़ेगा। अब तो यहाँ भी जी नहीं लगता। फिर?

इस 'फिर' की खोज में पांचू ने एक बार इधर-उधर, अपने चारों ओर खोई हुई-सी आँखों से देखा।

जी न लगने की समस्या पांचू के दिमाग में घुन बनकर समा गयी थी। घर में जी नहीं लगता। गाँव जैसे काटने को दौड़ता है। कहाँ जाये? स्कूल में एक लड़का न आने पर भी पांचू नियमित रूप से रोज़ स्कूल आता है, दिन-भर बैठा रहता है और आयी-गयी, नयी-पुरानी बातों से अपना जी बहलाया करता है। लेकिन आज गणेश की मृत्यु ने स्कूल की बिल्डिंग से उसका मन एकदम उचाट कर दिया है, किसी तरह भी मन नहीं लगता। अब वह अपना जी कैसे बहलाये—कहाँ जाये?

पांचू का मन इस वक्त चिड़चिड़ा हो रहा था।

बाहर निकालकर डेस्क पर रखी हुई दीमकों-भरी दराज़ से पांचू के हाथ अपने-आप ही खेलने लगे। इससे उसका ध्यान बँटा। उसने अपने हाथों को उस दीमकोंवाली दराज़ पर महसूस किया। उसने चौंककर फौरन अपने हाथ हटा लिये। उसे अनायास ही ऐसा महसूस होने लगा जैसे दीमकों वाली दराज़ पर इतनी देर तक हाथ रखकर उसने कोई बहुत बड़ी गलती की है।

"दीमकों की यह दराज़! मतलब यह कि दीमकों की फ़ौज की फ़ौज डटी है। वह वहाँ से नहीं हटेगी। और साहब, क्यों हटे? लकड़ी, कागज़ वगैरा उसकी खूराक है। और आदमी ने उस पर भी अपना अधिकार कर लिया है—वह भी खाने के लिए नहीं! ओफ्फोह, इतना अन्याय! भला सोचिए, हज़ारों साल से, जब से आदमी ने लकड़ी पर अपना अधिकार कर उसका प्रयोग करना सीखा, दीमकों की जाति में अकाल पड़ रहा होगा! ओफ्फोह, इस तरह दीमकें हज़ारों साल से अकाल की यातनाएँ भुगत रही हैं? बेचारी!"

पांचू की आँखों में आँसू छलछला उठे। अकाल की सारी यातनाओं को सहते हुए, अपने को मजबूत बनाने के लिए, वह बार-बार आँसुओं का दमन करता आया है। लेकिन अगर आज हज़ारों साल से अकालपीड़ित दीमक-जाति की दुर्दशा की कल्पना से उसकी आँखों में आँसू दिखाई पड़ गये तो इसका यह अर्थ नहीं कि उसका धैर्य घुटने टेक रहा है। नहीं, उसका धैर्य भंग नहीं हो सकता। उसका धैर्य अडिग है।

और, उसने अपने अडिग धैर्य को और भी अधिक अडिग बनाने के लिए दीमकों के

अकाल पर आँसू आ जाने की बात के बारे में, अंग्रेज़ी में, बढ़-चढ़कर सोचना शुरू किया—

"जस्ट इमेजिन, देयर चिल्डरन—सन्स, डाटर्स, नेफ्यूज, नीस—अं, नीस—यस, यस, नीस आलसो। नीस मस्ट बी देयर, शुड बी देयर, आट टू बी..."

पांचू ने एकाएक अपने में एक हल्की-सी चेतना का अनुभव किया। उसे लगा कि वह विचारों में बहक रहा है। पर यह चेतना उसे अच्छी न लगी। मन को भुलावा देकर बहलाने का और कोई साधन उसके पास नहीं था। अपने 'विचारों' को ज़बर्दस्ती न्यायपूर्वक सत्य सिद्ध करने के लिए जो कुछ भी वह सोच रहा है, वह सब निहायत ही समझदारी के साथ सोच रहा है। विधि का विधान ही ऐसा है। हमने दीमकों को भूखा मारा और दीमक हमें..."रिमेम्बर दिस आलवेज़ माई ब्वाय, देयर इज लिमिट फॉर एवरी थिंग...तुम अभी दीमकों पर चाहे जितना अत्याचार कर लो, लेकिन दीमकों की सहनशक्ति का भी अन्त होता है। तो? लेकिन वह तुम्हारा बिगाड़ ही क्या सकती हैं?"

पांचू ने एकदम से अपने दोनों हाथों को बहुत पास लाकर देखना शुरू किया। गौर से देखा। इतनी देर से दीमकोंवाली दराज़ पर हाथ रखे हुए थे, शायद एक-आध चढ़ गयी हो।

"तब फिर? काटेगी? ज़रूर काटेगी। अरे, जब लकड़ी और कागज़ को काट सकती है तो आदमी के माँस में क्या रखा है—मुलायम गोश्त और पीने को आदमी का गर्म-गर्म खून। अगर कहीं दीमकों की ज़बान को चस्का लग गया! फिर...तो क्या होगा? अरे, अभी हफ़्ते में 6 मौतें हुई हैं, तब छः सौ, छः हज़ार, लाख, दस लाख, करोड़, दस करोड़, अरब, पद्म, शंख, महाशंख—इसके माने सब गिनती खत्म। तब तो बस प्रलय—एकदम प्रलय!"

पांचू अपने दिल को बेलगाम बहलाये जा रहा था—"दीमकों द्वारा पृथ्वी का अन्त? ऐसा तो कहीं..."

तभी पट् से ध्यान आया—"अरे, अपने वाल्मीकि! जस्ट इमेजिन, आदमी इतना बेहोश कि शरीर पर दीमक चढ़ने की खबर न हुई। नानसेन्स, दरअसल इसका अर्थ है कि इस बार आदमी पर दीमकों की विजय होगी—वाल्मीकि-विजय। ठीक तो है, पहली प्रलय में मनु बचे और उनकी संतान—मानव—निकम्मी सिद्ध हुई। इस बार प्रलय के बाद वाल्मीकि की संतानों से नया ग्लोब बसेगा। वाल्मीकि के राम-राज्य की अमर कल्पना। प्रलय के बाद—हाँ, यह प्रलय तो है ही। दीमकों की...दीमक-प्रलय!"

पांचू एकाएक चौंककर उठा। उसे अपने दिमाग की इस हालत पर बड़ी शर्म आने लगी। अब इतना भी अपने दिमाग पर अधिकार न रहा। उसे अपने दिमाग की कमज़ोरी दूर करने के लिए दवा खाने की ज़रूरत एकाएक महसूस होने लगी। वह कौन-सी दवा खाये? उसकी दराज़ में एस्प्रो की टिकिया है। जब सर्दियों में एक दिन सिर दुखा था, तब यही तो मँगा के खायी थी और बाकी यहीं दराज़ में रख दी थी। ज़रूर होगी।

पांचू कुछ संभला। लेकिन मेज़ की दराज़ में भी अगर कहीं दीमकें...छिः, वाट नानसेन्स...फिर बहका। बुरी बात। यू काण्ट अफोर्ड टु डू दिस मिस्टर पी. मुखर्जी, तुम्हारे

ऊपर इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी है, सारे घर की ज़िम्मेदारी है।

"लेकिन कहाँ? मैं सतर्क तो हूँ। मैंने अभी तक कोई गलत बात नहीं की। मैं बिल्कुल ठीक हूँ। तब फिर यह दवा किसलिए...एस्प्रो की टिकिया..."

इस वक्त तक पांचू अपनी मेज़ के पास पहुँचकर कुर्सी पर बैठने वाला था कि यह विचार आते ही वह एकदम गम्भीर हो गया। उसके हाथ मेज़ पर टिक गये, और वह वैसे झुककर खड़ा-खड़ा सोचने लगा—"खाऊँ कि न खाऊँ?"

पूरी चेतना के साथ, निष्पक्ष भाव से, उसने अपने स्वास्थ्य की मन ही मन परीक्षा लेनी शुरू की—कहीं दर्द है? हाथ-पैर में, पेट में, सिर में?"

बगैर जबान चलाये उसने पूरी चेतना के साथ अपने-आपसे सवाल-जवाब करना शुरू किया और महसूस किया कि एड़ी से लेकर चोटी तक रग-रग में, पोर-पोर में दर्द समाया हुआ है। इसके बाद उसने महसूस किया कि उसकी आँखें जल रही हैं, और उसका बदन भी गर्म है। तब तो दवा ज़रूर ही खानी चाहिए। हाँ, साँस भी गर्म है।

पांचू ने अपने हाथ को नाक के पास ले जाकर साँस को महसूस किया, "इसके माने ये कि मुझे बुखार है, मलेरिया।"

मलेरिया का खयाल आते ही उसे तुरन्त ध्यान आया कि वह भूखा भी है। डर ने उसे फिर घेरना शुरू किया। उसे फिर से चक्कर आने लगा, मेज़ पर टिके हुए हाथ काँपने लगे, पैर एकदम सुन्न पड़ गये—उनमें जैसे दम न रहा हो।

अपना सारा मानसिक बल शरीर को देकर वह फिर सीधा तनकर खड़ा हो गया—"मैं बिलकुल ठीक हूँ। मुझे कोई बीमारी नहीं है। ज़रा भी बुखार नहीं है। ये सब मेरी खामख्याली है। मैं बड़ा बेवकूफ़ हूँ जो यह सब खुराफ़ात सोचता हूँ। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि आखिर मैं यह सब सोचता ही क्यों हूँ? नहीं, नहीं, अब ऐसे बेहूदे विचार अपने मन में आने ही न दूँगा!"

अपने को जगाकर पांचू दिल को बहलाने के लिए फौरन ही काम की सोचने लगा। उसने एक बार चारों तरफ़ नज़र डाली—ऊँचे प्लेटफार्म पर मेज़ और कुर्सी रखी थीं। कुर्सी पर बैठे हुए पांचू की आँखें, अपनी दृष्टि के क्षेत्र को बहुत संकुचित कर, अपनी बाईं तरफ़ से दाहिनी ओर तक अर्धचन्द्राकार में क्रमशः प्लेटफार्म के सहारे घूमने लगीं। आँखों को फोकस करते हुए पहले फ्रेम में उसने प्लेटफार्म के नीचे सीमेण्ट-बालू के फर्श को ज़रा दूर तक देखा। सीमेण्ट के चौके जड़े हुए हैं, यह शुबहा दिलाने के लिए ही शायद इमारत बनाने वाले कारीगरों ने फर्श-भर में ये चौकोर लकीरें काटी होंगी।

प्लेटफार्म के चारों ओर अर्द्धचन्द्राकार में अपनी आँखें घुमाते हुए दृष्टि-सीमा में पहले फ्रेम में ही मेज़ का कोना आ जाता था। गोलार्द्ध में यात्रा करती हुई आँखें मेज़ की सतह को छूती हुई उसके ऊपर से गुज़रीं—तीन-चार डेस्कों के सामने दिखायी पड़ने वाले हिस्से पर से होती हुई। पांचू सोचने लगा, "समझो, क्लास में सब लड़के मौजूद हैं।" जिस हद तक पांचू

की आँखें प्लेटफार्म के आस-पास उस गोलार्द्ध में घूमी थीं, उस हद में सारा दर्जा लड़कों से भरा होने पर भी, वे उसके लिए अदृश्य ही रहते थे।

पांचू की गर्दन इन डेस्कों को देख घूमते-घूमते ज़रा थम गयी। आँखों की पुतलियों को उसी सीमा के अन्दर वापस लौटाकर उसने आँखों से डेस्कों को महसूस किया और पुतलियाँ फिरने के साथ ही गर्दन फिर उसी सीमा में घूमती और क्रमशः आने वाले कुछ ज़्यादा उजाले को देखतीं, प्लेटफार्म के नीचे ज़रा दूर तक, सीमेण्ट बालू के चौके कटे हुए फर्श पर टिक गयीं। सूर्य का प्रकाश दरवाज़े से कमरे में मद्धिम होकर आ रहा था। सीलन की हल्की-सी नमी लिये हुए सीमेण्ट-बालू के चौके कटे हुए फर्श पर वह मद्धिम रोशनी उसे बड़ी हल्की और शीतल मालूम हुई। उसने अपने-आप में सन्तोष का बोध किया और इससे उसको आनन्द हुआ।

गोलार्द्ध में नज़र दौड़ाने की क्रिया के इस एक सेकंड में पांचू ने अपने आप में एक तरह की उमंग का अनुभव किया। और उसी उमंग के सहारे उसने अपने को यह सोचने दिया कि तमाम बेंचों पर लड़के बैठे हैं। उसने उन सबों को कुछ काम दे रखा है—गाय पर लेख लिखने के लिए आज्ञा दी है और वह स्वयं मेज़ पर झुका हुआ—रजिस्टर पर—फीस का हिसाब जोड़ रहा है।

उसने अपना फाउण्टेनपेन कमीज़ की जेब से निकालकर मेज़ पर रखा। फिर ताला खोलकर दराज़ बाहर खींची। चाक-स्टिकों का आधा भरा हुआ डिब्बा, ब्लैक बोर्ड साफ़ करने के लिए 'डस्टर', 'काजल-काली' की एक दवात और पीछे की तरफ़ बँधे हुए कागज़ों का एक बंडल था।

"चाक चुराने का शौक लड़कों में कितना होता है! जिस दिन दराज़ ज़रा देर के लिए भी खुली रह गयी कि चार-पाँच चाकें गायब!"

पांचू अपने मन को गुदगुदाने लगा—"मैं अभी ज़रा देर के लिए दराज़ खुली छोड़कर बाहर चला जाऊँ...लेकिन लड़के कहाँ है?"

पांचू इस बार अपने को धोखा न दे सका—सहसा उसके मुँह से सच निकल ही पड़ा।

सूने क्लास-रूम को देखने के लिए, फाँसी के तख्ते पर कदम रखे हुए शहीद की दृढ़ता के साथ, पांचू ने अपना सिर ऊँचा उठाया।

कमरा स्तब्ध। डेस्कों और बेंचों की लम्बी-लम्बी चार सूनी कतारें, डेस्कों पर तमाम स्याही के दाग और उन पर गर्द की पर्त। अन्दर आते ही सामने वाली डेस्क पर उसने ताला खोलकर रखा था। पीतल के उस बड़े ताले पर पांचू का ध्यान एक सेकंड के लिए अटका। ताला इस जगह कभी भी नहीं रखा जाता। दीवालों पर टँगे हुए बंगाल, हिन्दुस्तान और योरुप के तीन नक्शे, कोने में छोटी-सी मेज पर रखा हुआ एक ग्लोब। ब्लैक बोर्ड पर अंग्रेज़ी की एक कविता और उस पर धूल जमी हुई। पांचू का दम घुटने लगा। तीव्र पीड़ा तीर की तरह सनसनाती हुई उसके दिल में समा गयी।

सूनापन, अपनी असमर्थता और निष्क्रियता का अनुभव कर उसका हृदय फटने-सा लगा।

दराज़ खुली हुई थी। सामने ही चाक-स्टिकों से आधा भरा हुआ डिब्बा रखा था। आज इसका क्या उपयोग है? आज इसे चुराने वाला कौन है? आज उसके दर्जे में अगर लड़के बैठे होते तो वह कहता—"लो, यह सब लूट ले जाओ।"

काश कि अपने स्कूल का सब कुछ लुटाकर इन सूनी डेस्कों को एक बार भी लड़कों से भरी हुई अगर आज वह देख सकता!

अपनी असमर्थता पर उसे बड़ी ज़ोर से झुंझलाहट आ गयी। चाक-स्टिकों से आधे भरे हुए डिब्बे पर छूटते ही उसकी नज़र गयी और उसने फौरन ही उसे उठाकर सामने की डेस्कों पर उछाल दिया। चाकों के गिरने से डेस्कों पर पचीसों हल्की 'ठक-ठक' की आवाजें, प्रायः सामूहिक रूप से, उसके कानों में गूँज उठीं। ढलवां डेस्कों से नीचे लुढ़कती हुई चाकें, आपस में टकराती हुई; ठक-ठक फर्श पर गिरकर टूट गयीं। कुछ चाकें डेस्कों पर ही पड़ी रहीं।

इस तरह मानो चाक-स्टिकों का अभिमान भंग कर, एक विजेता की दृष्टि से उनकी तरफ़ देखते हुए, दार्शनिक की मुद्रा में पांचू ने सोचना शुरू किया—"हाय रे इनका दुर्भाग्य, आज ये चाकें इस तरह लुटी हुई पड़ी हैं।"

आज इनका कोई भी प्रेमी नहीं। वो खुशी से चमकती हुई शैतान आँखें, वो किलकारियाँ, सबसे ज़्यादा चाकें हथियाने के ज़ोम में कुश्तम-कुश्ता, धौल-धप्पा।

लड़कों और चाक-स्टिकों के रिश्ते की एक अधूरी-सी, भावनामय तस्वीर, उन सूनी बेंचों और डेस्कों पर उसकी आँखों के सामने खिंच गयी।

उसका दिल भर आया।

चार दिन के भूखे शरीर और चिन्ताक्षत मन से दिल का यह भार संभल न सका।

स्वयं अपने लिए संवेदना प्रकट करने में भी आज यह असमर्थ था।

पांचू अपने से मान करने लगा। एक निहायत बारीक विद्युत-रेखा की तरह तड़पती हुई झुंझलाहट-सी उसने अपने सिर में महसूस की।

झुंझलाहट ने अनजाने में ही पांचू के दिमाग को लखलखा सुंघाकर बेहोशी की दशा में उस पर अधिकार जमा लिया। शरीर ने मस्तिष्क के प्रभुत्व को अस्वीकार कर मनमानी करनी शुरू कर दी। आँखों और चेहरे पर तमतमाहट आ गयी। हाथ ज़रूरत से ज़्यादा फुर्ती दिखाने लगे। डस्टर निकालकर बाहर पटक दिया। काजल-काली की दवात फेंकने के लिए दाहिना हाथ झटके के साथ आगे बढ़ा, फिर एकाएक रुककर धीरे से मेज़ पर वापस चला आया। दवात मेज़ पर रख दी।

अब क्या करे?

फाउण्टेनपेन पास रखा था। उसे याद आया, परसों रात को घर में जॉर्डन साहब को चिट्ठी लिखते-लिखते ही स्याही खत्म हो गयी थी।

पांचू फाउण्टेनपेन में स्याही भरने लगा। तभी उसे एकाएक सूझा—"मुझसे तो यह कलम ही अच्छी। इसे अपनी खुराक तो मिल गयी!"

रोते-रोते सो जाने वाला बच्चा जैसे सपने में फिर से सिसकियाँ भरने लगा, पांचू ने अपने खाली पेट में सुरसुराहट महसूस की। छाती से नीचे आने-जाने वाली साँस का दौरा उसे भारी-भारी सा लगने लगा।

फिर उसका मन गिरा। फिर उसने अपने को संभाला—"यह क्या मि. पांचू गोपाल! अरे, जाओ भी, ज़रा-सी भूख भी नहीं बर्दाश्त होती तुमसे? औरों को देखो, सारा गाँव, सारा बंगाल भूखा है।"

"सारा बंगाल!"—पांचू की आँखें सामने दीवाल पर लटके हुए बंगाल के नक्शे पर घूमने लगीं।

पिछले दिनों की बात है। पाँच ही महीने तो हुए हैं। बारह रुपये मन के भाव से चावल बेचकर गाँव का हर किसान कितना खुश नज़र आता था! बारह रुपये मन चावल बिकेगा, कभी बाबा राज में भी ऐसा हून नहीं बरसा। तीन-साढ़े तीन के भाव में बिका करता था। बारह रुपये मन के लोभ में लोग अन्धे हो गये। घरों का धान भी उठा-उठाकर बेच दिया। दो-तीन उपास करना या आधे पेट रहकर ज़िन्दगी गुज़ार देना—इसकी आदत तो हमारे देश के हर किसान को जन्म से ही होती है। पेट की ओर से तो वह प्रायः उदासीन हो चुका है। लेकिन रुपया! अरे, वह तो सपने की चीज़ है। लक्ष्मी का सुख भोगना तो सदा से ही बड़े आदमियों के भाग में रहा है। इस बार बड़े भाग्य से माँ लक्ष्मी किसानों पर दया कर रही हैं—दुर्गापूजा के अवसर पर!

हज़ार-हज़ार, आठ-आठ सौ की गठरियाँ बाँधकर किसानों के पीले चेहरों पर लाली दौड़ गयी। सुहागिनों की शिकायतें जागीं, सुनारों के भाग जागे। कपड़े-गहने, शौक-सिंगार की चीज़ें—गाँव के आठ-दस घरों में ग्रामोफ़ोन तक बजने लगे। लोग-बाग पक्के मकान बनवाने की सोचने लगे। बूढ़ों को तीरथ-बरत की उतावली पड़ने लगी। पैसे के अभाव में किसान जिन सुखद कल्पनाओं से अपना मन बहलाया करता था—अगर उसके पास पैसा होता तो वह यह करता और वह करता—अब वह अपने जी के सारे हौसले निकाल लेगा। इस वक्त वह लाट साहब का भी बाप है। दयाल ज़मींदार और मोनाई अब उसके ऊपर धौंस नहीं गाँठ सकते।

पैसे की गर्मी से किसान बौरा गया।

दयाल ज़मींदार और मोनाई की उधार-वसूली शुरू हुई। पैसे के जोश में, दुर्गापूजा के अवसर पर, किसान जैसे यह भूल ही गया था कि उसे कर्जा भी पाटना पड़ेगा। पैसा अनेक मदों में खर्च हो चला था।

मोनाई की तरफ़ से, दयाल ज़मींदार की तरफ़ से कचहरियों के सम्मन आने लगे। चार दिन की चाँदनी दिखाकर सुहागिनों के तन पर चमकते हुए सोने और चाँदी के गहने उतर

गये। ग्रामोफ़ोन बजने बन्द हो गये। पक्के मकान अब स्वर्ग में बनेंगे। दस का माल दो में लुट गया। बचा-खुचा नाज, कपड़ा-लत्ता चोर-डाकू ले गये।

परजा मुँह देखती रह गयी।

चावल का भाव अट्ठारह रुपये मन!

चावल चौबीस रुपये मन!

पैंतीस रुपये मन—चालीस रुपये मन!!

यह क्या हो रहा है? क्या होगा?

कइयों ने फाँसी लगाकर जानें दे दीं। पोखरों में आये दिन एकाध लाश उतराने लगी। लोग नौकरी की तलाश में गाँव छोड़-छोड़कर शहर भागे, इस लालच में कि शहर से कमाकर घर भेजेंगे। गाँव-भर में इने-गिने जवान ही दिखायी पड़ने लगे।

माताएँ अपने नन्हे-मुन्नों की भूख को दिलासा देने लगीं—"तेरे बाबा शहर से रुपया भेजेंगे, तब चावल खरीदेंगे। बिना पैसे लिये मोनाई भला क्यों देने लगा!"

बूढ़े माँ-बाप डाकिये को घेरकर पूछते—"मेरे बेटे का मनीऑर्डर लाये? उसने ज़रूर भेजा होगा। तुम लोग सब डाकखाने वाले मिलकर हमारा रुपया खा गये।"

मनीऑर्डर के आसरे में भूख न रुकी।

घर-मकान, खेत-खलिहान, कपड़े-लत्ते, चिथड़े-गुदड़े सब बेच-बेचकर खा गये। मोनाई ने सब कुछ खरीदा, और चावल भी बेचा।

ज़मींदार के डंडे खाकर तालों की मछलियाँ ज़्यादा न खा सके। पेड़-पत्ते, घास-फूस, कुत्ते-बिल्ली-चूहे का माँस, जो भी मिला, पेट की ज्वाला में भस्म हो गया। भूख इतने पर भी नहीं मानती—रोज़ लगती है।

भूख का ध्यान आते ही पांचू की चेतना वापस आ गयी। उसकी आँखें इतनी देर से बंगाल के नक्शे पर टिकी होने पर भी उसे देख नहीं रही थीं। विचारों से जागकर उसकी आँखों ने फिर से बंगाल को देखा। अनगिनत टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों और काले-काले अक्षरों में सैकड़ो गाँवों, कस्बों और शहरों के नाम इतनी दूर से आँखों के लिए अस्पष्ट होने पर भी उसके दिमाग में साफ़-साफ़ उभरकर आये। हर गाँव में, हर घर में, इसी तरह भात की समस्या होगी। और हर गाँव का मोनाई इसी तरह बेहिसाब दाम माँग रहा होगा। लोग मोनाई की दुकान पर इसी तरह खुशामद करते होंगे, मोनाई को स्वर्ग से भी ऊँचे-ऊँचे आशीर्वाद दे-देकर हाथ-पाँव जोड़ते होंगे। सारे गाँव की भूख मुनाफे का लोभ बनकर मोनाई के पेट में समा चुकी होगी। लोग मोनाई को घेरकर रोते होंगे, कोसते होंगे, गालियाँ देते होंगे। और हर गाँव का मोनाई आशीर्वाद और गालियों को समान रूप से सुनता हुआ, स्थिरचित्त होकर बैठा-बैठा अपने खाते का हिसाब जोड़ता होगा। हज़ारों लोग मर रहे होंगे। गाँव छोड़कर भाग गये होंगे। लड़के भी चले गये होंगे। हर गाँव का स्कूल भी इसी तरह सूना हो गया होगा। और जहाँ के मास्टर!

पांचू को अपने घर की याद आयी। पूरे तौर पर आज चार दिन से उसके घर में भी अकाल पड़ रहा है। किसी ने भात की एक कनी भी मुँह से नहीं लगायी। उसकी दस बरस की छोटी बहन कनक ने भी अपने छोटे-छोटे भतीजों—दीनू और परेश के पक्ष में अपना हिस्सा त्याग दिया है। सिर्फ़ इन्हीं दोनों को दो-चार कौर खिलाकर चावल का माँड़ पिला दिया जाता है। लेकिन वह उनका पेट भरने के लिए काफ़ी नहीं। सारा दिन 'भात-भात' चिल्लाते ही बीतता है। उसकी आठ महीने की नन्ही-सी भतीजी चुन्नी भूख के मारे रोते-रोते अधमरी-सी हो गयी है। माँ का दूध पीती है; जब उसे ही खाने को नहीं मिलता तो वह बेचारी दूध कहाँ से पायेगी? चावल का माँड़ उसे भी थोड़ा-बहुत चटा दिया जाता है। माँ, बौदीदी, उसकी पत्नी मंगला, तुलसी, कनक, बाबा, दादा और वह खुद भी तो आज चार दिन से बस पानी पी-पीकर ही जी रहे हैं।

लेकिन आज तो शाम को दयाल ज़मींदार के यहाँ से चावल मिल ही जायेगा। पर इस तरह कितने दिन चलेगा? आबरू कब तक बचेगी? फिर आबरू किसकी बचेगी और किससे बचेगी? घर-घर में यही ठंडे चूल्हे हैं। क्या कुलीन, क्या अकुलीन—एक मोनाई और दयाल ज़मींदार तथा उनके जैसे दस-पाँच को छोड़कर अब किसके यहाँ चूल्हे में बराबर आग दिखायी देती है। सारा गाँव इसी तरह भूख से तड़प-तड़पकर जान दे देगा। पार्वती काकी मरीं, हारान मरा, तिनकौड़ी मरा, गणेश मरा। गाँव में बराबर मौतें होती जा रही हैं। और इसी तरह एक दिन उसके घर के लोग भी एक-एक करके...

"ओह!" पांचू के माथे पर सिकुड़नें पड़ गयीं। चेहरा खिझलाहट से भर उठा। उसका जी बुरी तरह से विचलित हो गया।

लाख न चाहने पर भी बार-बार अपने विचारों में मृत्यु तक पहुँच जाने की आत्म-दुर्बलता पर पांचू की आँखों में आँसू बरबस छलछला उठे। इन आँसुओं पर वह और भी खीझ उठा—वह यह सब बातें सोच ही क्यों रहा है? क्या उसे दुनिया में और कोई काम नहीं है?

धोती के छोर से आँखें पोंछकर पांचू ने खुली दराज़ की तरफ़ देखा। पीछे की तरफ़ कागज़ो का बंडल बँधा रखा था। उसने झट उसे बाहर निकालकर उस पर बँधी हुई सुतली खोल डाली। उसमें चिट्ठियाँ-पत्रियाँ, डिग्रियों के सर्टिफ़िकेट वगैरा, बँधे रखे थे। एक बार जब उसके दादा ने अपने ज़ोम में आकर उसका एक सर्टिफ़िकेट फाड़ डाला था, तब से वह अपने निजी कागज़-पत्रा स्कूल की दराज़ में ही रखता है।

पांचू ने कागज़ो को उलटना शुरू किया। प्रोफ़ेसर बनर्जी का दिया हुआ सर्टिफ़िकेट, जॉर्डन साहब का सर्टिफ़िकेट, जॉर्डन साहब की चिट्ठी, फिर जॉर्डन साहब की दूसरी चिट्ठी, राय भुवन मोहन सरकार की चिट्ठी, गणेश की लिखावट...

सुचारू रूप से बंगला लिखना-पढ़ना सीख लेने के बाद गणेश एक बार कुछ दिनों के लिए अपने काका के पास ढाका गया था। वहाँ से उसने यह चिट्ठी लिखी थी—"श्रीचरण कमलेषु..."

अपने दिल के अन्दर ही अन्दर उसने यह जाना कि गणेश के इस पत्र पर ज़रा-सा ध्यान देते ही फौरन मृत्यु उसके विचारों में आ जायेगी। और जब तक मृत्यु स्पष्ट रूप से उसके दिमाग में आये-आये, उसे अपना ध्यान किसी और तरफ़...

अरे हाँ, वह तो पिछले महीने की फ़ीस का हिसाब देखने बैठा था न!

उसने अपने आगे रखे हुए कागज़ों को बायें हाथ से झटककर एक ओर सरका दिया। कागज़ ऊँचे-नीचे होकर ज़रा बिखर गये।

फौरन ही दूसरी दराज़ का ताला खोलकर उसमें रखे हुए दोनों रजिस्टर उसने बाहर निकाल लिये। रजिस्टर बाहर निकालते समय बीच से कोई चीज़ खिसककर प्लेटफार्म पर जा पड़ी। पांचू ने उसे देखा। उसकी आँखें खुशी से चमक उठीं—एस्प्रो का पैकेट!

फौरन ही रजिस्टरों को मेज़ पर पटक और फुर्ती से झुककर उसने एस्प्रो का पैकेट उठा लिया। लिफ़ाफ़े के अन्दर दो टिकियाँ रखी थीं।

"खा लूँ?...यानी बीमार...नहीं जो, बीमार नहीं, यों ही सिर में दर्द है। सच? हाँ-हाँ, इतने ढंग-कुढंगे विचार सिर में समाये हुए हैं तो क्या दर्द भी न होगा। ज़रूर दर्द हो रहा है।"

कागज़ के अन्दर चमकती दो सफ़ेद टिकियों को पांचू ने भूखी आँखों से देखा। फिर कागज़ फाड़कर उसने दोनों टिकियाँ हाथ में रखीं और इससे पहले कि कोई नया तर्क दिमाग में उठे, पांचू ने अपने से चुराकर उन्हें झट से मुँह में रख लिया।

"निगल जाऊँ?—नहीं, चबाना चाहिए। ज़रा देखें तो इसका स्वाद कैसा होता है।"

कट-कट दोनों टिकियाँ दाँतों में बोल गयीं। जैसे कोई खाने की वज़नी चीज़ हो, इस तरह उसने दोनों टिकियों को चबाना और फिर फिर-फिर चबाना चाहा; लेकिन वे तो घुलने लगीं। दाँतों की अक्षमता को समझकर पांचू ने घुली हुई टिकियों के बारीक कणों को ज़बान से तालू में रगड़-रगड़कर और भी घुलाना शुरू किया। मुँह में कसैला लुआब बँधने लगा। पांचू उन्हें घुलाता ही रहा। दोनों गालों के फूलने की हद तक वह लार को घोटकर बढ़ाता ही रहा—यहाँ तक कि उसके जबड़े दर्द करने लगे। तब वह मजबूरन उसे पी गया।

कसैला ही सही, आज चार दिन के बाद पांचू की फीकी ज़बान को किसी तरह का स्वाद तो मिला था। इससे उसे एक तरह का सन्तोष हुआ।

पानी पीना चाहिए। वह उठा और बाहर आया।

मुँह का वह कसैलापन अब धीरे-धीरे फीकेपन में बदल चुका था। यह पांचू को अखरने लगा। उसकी भूख एकदम तेज़ हो गयी। सिर की झनझनाहट बढ़ गयी। स्कूल के पीछे ही पोखर थी। पांचू कदम बढ़ाकर वहाँ पहुँचा। दोनों हाथों की अंजुली बाँधकर उसने पानी पिया। पानी खाली पेट में लगा। उसने फिर पिया, तीसरी बार, चौथी बार, पाँचवीं, छठी बार —सातवीं बार उसने अंजुली भरकर फिर छोड़ दी।

उसका पेट तन गया था। उसमें अब पानी पीने की ताब नहीं थी। लेकिन पानी से अभी मन न भरा था। उसने अपना मुँह धोया, सिर पर छींटे मारे, कुल्ला किया, और धोती के छोर

से मुँह और हाथ पोंछते हुए उठ खड़ा हुआ। उसने जानबूझकर अपने में एक ताज़गी महसूस करना शुरू किया और सोचना शुरू किया कि उसका पेट भरा हुआ है, वह अब मज़े में है।

पेट भरा होने की कल्पना उसके विचारों को अपने परिवार की ओर खींच ले गयी।

उन सबों ने भी पानी पी लिया होगा। वे सब भी मज़े में होंगे। बस, अब देर ही कितनी है। दिन के ढलते ही...

पांचू ने धूप से अन्दाज़ लगाया, ढाई बज रहे होंगे। एक घंटा और यहीं बैठना चाहिए, साढ़े तीन बजे चलना ठीक होगा। लेकिन रोज़ तो साढ़े चार-पाँच तक जाता है। दयाल बाबू अपने मन में सोचेंगे कि आज चावल लेना है, इसलिए जल्दी चला आया। ऊँह, सोचेंगे तो सोच लें। कह दूँगा कि कोई काम तो था नहीं, इसलिए सोचा, लाओ जल्दी ही पढ़ा आऊँ। और जब जल्दी ही जाना है तो अभी क्यों न चला जाये? नहीं, अभी जाना ठीक नहीं। तब तो साफ़ खुल जायेगा कि चावल के लिए इतनी जल्दी की गयी है। मगर यह कोई झूठ बात थोड़े है। हाँ, आबरू का सवाल ज़रूर है। आबरू चली गयी तो लाख का आदमी खाक का।

पांचू के मन में प्रश्न उठा—"तो क्या चावल माँगने से आबरू नहीं गयी? नहीं, इसमें आबरू का कोई सवाल नहीं उठता। तनख्वाह न ली, चावल ले लिया। लेकिन चावल तो मोनाई की दुकान से भी..."

आठ दिन पहले जब दयाल ज़मींदार से उसने वेतन के रुपयों के बजाय चावल माँगा था और दयाल ने उसे देना स्वीकार कर लिया था, तभी से उसे आशा बँध गयी थी कि दयाल बाबू वेतन के रुपयों से चावल न तोलेंगे। वह मोनाई तो हैं नहीं, ज़मींदार हैं। इतने बड़े, और फिर उसे इतना मानते हैं। वह उनके लड़के का गुरु है, उन्हें अखबार पढ़कर सुनाता है, साहबों के लिए उनकी चिट्ठियाँ अंग्रेज़ी में लिख देता है। इन सबका कभी एक पैसा आज तक उसने नहीं लिया। कोई किसी तरह से समझता है, कोई किसी तरह से। लेकिन आठ रुपये में मन-दो मन तो उठाकर देने से रहे। अरे ज़्यादा से ज़्यादा पाँच सेर के दस सेर दे देंगे, बस! ज़्यादा भी दे सकते हैं। हाँ भाई, ज़मींदार जो ठहरे। भला राजा के घर मोतियों का काल? वो चाहें तो उठाकर मन-दो मन दे दें। उनके लिए कौन बड़ी बात है! खैर, इतना तो नहीं, अगर पन्द्रह सेर भी दे दिया तो ठाठ से महीना बीत जायेगा। आधा सेर में रोज़ घर-भर निबट लिया करेगा। न सही भर पेट; अरे न होने से तो काने मामा ही भले। फिर किया क्या जाये? ज़माना कैसा आ लगा है! जब तक लड़ाई चलेगी ये अकाल नहीं जाने का। लड़ाई की वजह से ही तो यह अकाल है।

पांचू ने अखबार में दूसरे प्रान्तों से यहाँ के लिए अनाज भेजे जाने की खबरें पढ़ी थीं। गाँव-गाँव में यूनियन बोर्ड खोले जा रहे हैं जो मिट्टी के मोल चावल बेचेंगे। यह सुनकर दयाल भी हँसे थे, मोनाई भी हँसा था। और उन दोनों की हँसी में सोने के बंगाल के मरघट हो जाने की सूचना छिपी थी, उनके साथ इतने दिनों के अपने सम्बन्ध की वजह से पांचू यह भी समझता था। फिर भी, अगर उसे और उसके परिवार को दयाल ज़मींदार से रोज़ आध सेर

चावल मिलता रहे तो वह अपनी सारी सहृदयता को बंगाल के साथ ही मरने दे सकता है।

पांचू सोच रहा था—"आठ रुपये में तो हर महीने पन्द्रह सेर देने से रहे। हाँ, अगर वह तनख्वाह बढ़ा दें तो अलबत्ता गुज़ारा हो सकता है। अच्छी बात है, तो आज मैं दयाल बाबू से तनख्वाह बढ़ाने की बात ही कहूँगा। मान जायेंगे? अरे, मैं उनका कोई दूसरा काम कर दिया करूँगा। क्लर्की ही सही, किसी तरह मेरा घर तो पेट की ज्वाला में जलने से बचे। कहें तो मैं उनकी सारी ज़मींदारी में झाड़ू लगाया करूँ। जान है तो जहान है। पेट भरे पर आबरू भी भली लगती है।...हे भगवान, बस ऐसा ही कर दो। हे नाथ, मेरी सुन लो। किसी तरह दयाल बाबू मान जायें, बस ऐसा कुछ कर दो!'

प्रार्थना से हृदय गद्गद हो उठा। पांचू इस वक्त तक क्लास-रूम के दरवाज़े के सामने पहुँच चुका था। फटे हुए पोस्टर पर नज़र गयी। पांचू ने खट् से पलटकर मोनाई की दुकान की तरफ़ देखा—पुलिसमैन? नहीं आ रहा! पांचू एक निःश्वास छोड़कर कमरे में दाखिल हुआ। और कमरे की तमाम चीज़ों से जबरन निगाह बचाकर वह कुर्सी पर बैठ गया।

वह अब सूनी डेस्कों की बात नहीं सोचेगा, दीमकों की भी नहीं। भाड़ में जाये स्कूल, उसे अब करना ही क्या है? बस, दयाल ज़मींदार के यहाँ उसे काम मिल जाये।

दराज़ के अन्दर रख देने के लिए उसने दोनों रजिस्टरों को उठाया। उनके नीचे उसके कागज़ बिखरे हुए पड़े थे। छूटते ही उसकी नज़र पड़ी —माँ की लिखावट। ढाई बरस पहले जिस पत्र ने उसे आई.सी.एस. होने से रोक दिया था, उस पत्र के ऊपर का कुछ हिस्सा दूसरे कागज़ों में दबा हुआ था। जहाँ से दिखायी देता था, पांचू उस पत्रा को वहीं से पढ़ने लगा—

"...कल रात तुलसी के ब्याह के लिए बनवाये गये सारे गहने जुए में हार आता। मेरे सिरहाने से कुंजी निकालते समय बहू की नज़र पड़ गयी थी। मैं छत पर खड़ी रामतनु की घरवाली से बातें कर रही थी। बहू जब तक कहने आये, वह अपना काम कर चुका था। तेरे बाबा के कानों में जब कोठरी और संदूक के ताले खुलने की खटर-पटर गयी, तो 'वह कौन है, कौन है' कहके पुकारने लगे। तू तो जानता ही है, अपनी कोठरी में बैठे-बैठे वे इसकी कैसी ताक बजाते रहते हैं। पर वे पुकार करें, बन्दा बोला तक नहीं। और मैं जब घबराकर नीचे आयी तो बाहर के दरवाज़े से निकल रहा था। कितना पुकारा, 'शिबू! शिबू!' पर शिबू किसकी सुनता है? जब माँ थी, तब थी। अब तो वह अपने मन का हो गया है भैया! क्या करूँ, जो लिखा के लायी हूँ, वह भोगना ही पड़ेगा। तेरे बाबा आज यों अंधे हो के पड़े हैं। शिबू के रूप में नारायण मेरी परीक्षा ले रहे हैं। नहीं जानती और आगे क्या-क्या देखना बदा है। शिबू आज ऐसा न उठता तो भगवान के चरण पकड़कर अपनी मौत माँगती? मेरे जैसा सौभाग्य किस स्त्री का है? जिसके दो-दो जवान बेटे हों, उस माँ को चिन्ता रहे? पर बेटा, ऐसे तप मैंने किये कहाँ थे? मेरी हालत तो कंजूस के धन-सी है जो ईश्वर की दया से सब कुछ होते-सोते भी उसका सुख नहीं भोग सकता।

"मैं अब शिबू की या तेरी बात नहीं सोचती बेटा! तुम लोग तो, नारायण कृपा करें, अपने

हाथ-पैर के हो गये हो। शिबू बहू के गहने पहले भी बेच चुका है। दो बार तो उसने मारा भी। बहू ने कल तक मुझसे वे सब बातें छिपाकर रखीं। जुआ खेलने लगा है, यह बात तो बहू ने एक बार पहले भी कही थी। मना करने पर कहता था, तकदीर का व्यापार है, जो लगाऊँगा, दूना-दस गुना मिलेगा। बार-बार न सही तो बस इकट्ठा, एक ही दाँव में। और भी बहुत-सी बातें बनाता रहा। ज़ोर-जुलुम भी शुरू हुए। बहू से लड़ता था, यह तो मैंने भी कई बार सुना। पर इतना नहीं समझती थी। शिबू की यही दशा रही तो घर का भगवान ही मालिक है। और मैं तो बेटा, जब तक जिऊँगी, चिन्ता करती रहूँगी—बहू की, तुलसी के ब्याह की। कनक भी अब दस बरस की हो गयी है। इसके अलावा अब तो दीनू और परेश की भी चिन्ता है। वे दुधमुँहे बच्चे क्या समझें कि उनका बाप जुआरी है और जुआरियों के बेटे सदा पराया मुँह ही जोहते हैं।

"कल की घटना पर तेरे बाबा से भी बातें हुईं। कहने लगे, 'जब तक आँखें रहीं, तब तक दुनिया को न देख पाया। और अब अंधा होने पर, जिस दुनिया का भयानक रूप मैं अपनी आँखों से देख चुका था, उसका अन्त कैसा भयानक होगा, यह साफ़-साफ़ देख रहा हूँ।'"

"मुझसे कहने लगे—'शिबू, तुम्हारे ही लाड़-प्यार के कारण हाथ से निकल गया। बच्चे को एक उम्र से ज़्यदा अगर बच्चे की तरह ही रखोगी तो उसकी गैर-ज़िम्मेदारियों का सारा दोष भी तुम्हारे ऊपर ही आयेगा।' अगर यह जानती होती बेटा, कि माँ का प्यार आशीर्वाद न होकर कभी-कभी शाप बनकर बच्चों को लग जाता है तो कलेजे को पत्थर बनाने की कोशिश करती। पाँच बच्चों को धरती माता की गोद में देकर शिबू का मुँह देखा था। इसीलिए उसे गोद से उतारते भी डरती थी। तू इतना पढ़-लिख गया है, शायद माँ की यह बात समझ सकेगा। पर अब तू और कितना पढ़ेगा पांचू? तू अपने मन में कहेगा, माँ मेरी तरक्की होते भी नहीं देख सकती। पर बेटा, एक तेरी ही सोचती रहूँ तो ये तुलसी, कनक कहाँ जायेंगी? दीनू, परेश का क्या होगा? तुलसी अब सोलह बरस की हो गयी है। इसकी पहाड़-सी उमर कब तक दुनिया की आँखों से छिपाती रहूँगी। सात बरस में तार-तार जोड़कर इतने गहने बने थे सो भी भगवान ने छीन लिये। कैसे बेड़ा पार लगेगा?

"तूने लिखा है, छुट्टियों में नहीं आऊँगा, विलायत की पढ़ाई पढ़नी है। सो ठीक है; पर एक बात मुझे बता दे। तू तो विलायत चला जायेगा, लेकिन तेरी माँ कहाँ जायेगी? किसे अपना दुखड़ा सुनायेगी?

"जो मन की थी सो तेरे आगे कह चुकी। आगे तू समझदार है। नहीं तो फिर भगवान तो हैं ही बेटा! तू जहाँ भी रहे सुखी रहे। मेरे जी से तो सदा यही असीस निकलती है।"

पत्र पूरा होते ही एक ठंडी साँस पांचू के मुँह से निकल गयी। उसने अपनी पीठ कुर्सी से टिका दी। बीते हुए दिन एक-एक करके उसके मन की आँखों के सामने आने लगे। लाख अनिच्छा होने पर भी उसे अपनी माँ के इस पत्रा के सामने झुकना पड़ा था। और वह एक बार घर आया था, यह सोचने के लिए कि अब क्या किया जाये।

दादा उससे चिढ़ते हैं। पांचू जानता है, अपना निरक्षर रह जाना उन्हें खलता है। जिसका छोटा भाई इतना तेज़ है, उसे उससे भी बढ़कर कुछ होना चाहिए, इसी एक धुन ने दादा को जुआरी बनाया है। बाबा जो कहते हैं कि माँ के लाड़-प्यार ने ही दादा को हठी, स्वार्थी और निकम्मा बना दिया, सो कुछ झूठ बात नहीं है। माँ को अभी भी दादा का बहुत पक्षपात है।

माँ का पत्रा पाकर पांचू जब गाँव आया, शिबू दिन में दस बार उसपर अपने बड़प्पन की शान झाड़ने से नहीं चूकता था।

घर आकर पांचू अभी यह सोच ही रहा था कि जीवन निबाहने के लिए उसे कौन-सा काम करना चाहिए, कि एक दिन गाँव का हीरू बाग्दी अपने आठ बरस के लड़के गणेश के साथ आकर उससे कहने लगा—"एकटू खमा करबेन मेज ठाकुर। आपको देखकर एक बात मेरे मन में ये आयी, कि हमारी तो सात पुरखों से आप लोगों के चरनों में कट गयी। बाकी, इन लड़कों की न निभेगी। ये लोग तो अभी से ही गाँधी बाबा का झंडा उठाते हैं। बड़े होकर मिट्टी खराब हो जायेगी इनकी। इससे जो ये गनेसा चार अच्छर यस-नो के सीख लेगा आपकी दया से, तो सहर में कहीं नौकरी पा जायेगा। और मेरा बुढ़ापा भी आपके चरणों की दया से बन जायेगा।"

पांचू को उसी दिन यह मालूम हुआ कि गंवई-गाँव के डोम-बाग्दियों में भी अब इतनी समझ आ गयी है। यह समझते हुए भी पांचू के संस्कारी मन को डोम-बाग्दियों का अंग्रेज़ी शिक्षक बनने में संकोच हुआ। वह उसे मना करने जा ही रहा था कि पास खड़े हुए बूढ़े रामलाल चक्रवर्ती, जो उधर से जाते हुए हीरू-पांचू की बातें सुनने के लिए खड़े हो गये थे, अपने सम्पूर्ण ब्रह्मतेज को आँखों में दर्शा कर बोल उठे—"छोट जातेर मुखे आगुन! शालार ब्याटा, डोम-बाग्दी अब ऊँच जाति की बराबरी करने चले हैं?"

दूसरे के मुँह से, विशेषकर एक ऊँची जाति वाले के मुँह से छोटी जाति वालों के लिए गालियाँ सुनकर शहर की राजनीतिक और सामाजिक हलचलों से प्रभावित पांचू की साम्यवादिता चेतन हो गयी। उसका हृदय ऊँची जाति वालों के प्रति विद्रोह से भर गया। उसकी निगाह गणेश के चेहरे पर जा पड़ी। भोला-सा चेहरा, आशा-भरी दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था। रामदुलाल के व्यंग्य की प्रतिक्रिया-स्वरूप उसे लगा, गणेश को न पढ़ाकर वह सरस्वती का अपमान करेगा। और उसने रामदुलाल के देखते ही हीरू को आश्वासन दिया कि जब तक वह गाँव में है, गणेश उससे पढ़ने आ सकता है।

गाँववाले कितने नाराज़ हुए थे! खुद उसके घर में उसकी माँ ने भी पहले उसे मना किया। दादा ने तो कहनी न कहनी, सभी सुना डाली। सारा गाँव उसकी निन्दा करने लगा। और ज्यों-ज्यों गाँव का विद्रोह बढ़ता गया, पांचू का हठ भी ज़ोर पकड़ता गया—"सबको विद्या पढ़ने का समान अधिकार है।"

पांचू के जीवन में नया रस आ गया। केवल अपने उत्साह के बल ही वह अपनी ज़िद पर अड़ गया था। और उसी जोश में एक दिन उसने गाँव-भर के 'छोटे लोगों' के लड़कों को

एकत्रित कर पेड़ के नीचे बैठकर पढ़ाना शुरू कर दिया।

वह आया था घर के लिए कुछ सहारा करने, कहाँ इस मुसीबत को गले डाल लिया? लेकिन अब तो बात पर बात अड़ गयी। उसने निश्चय किया कि वह स्कूल खोलेगा और धीरे-धीरे आगे चलकर स्कूल को ही अपनी आमदनी का ज़रिया बनायेगा।

जब सारा गाँव स्कूल के खिलाफ, पांचू के खिलाफ, तब कानाई मिस्त्री ही बढ़कर उससे हाथ मिलाने आया था—"शहर जाके स्कूल के लिए मदद माँगो। यहाँ मैं संभाल लूँगा। बाकी एक बार ऐसा स्कूल बनाओ मास्टर, कि लाट साहब को भी यहाँ आना पड़े।"

कानाई की शुभकामना फली। शहर जाकर प्रिंसिपल जॉर्डन के अदम्य उत्साह और सहयोग के कारण अनेक धनवान और सम्मानित नागरिकों से उसने अपने स्कूल के लिए सहायता प्राप्त की। उन रुपयों से जब वह किताबें, स्लेट, पेंसिल आदि लेकर गाँव आया तब लड़के कितने खुश हुए थे! और एक दिन जब अमेरिकन मिशनरी जॉर्डन अपने कुछ विलायती और देशी मित्रों के साथ उसका स्कूल देखने के लिए आये थे, तब गाँववालों पर उसका कितना प्रभाव पड़ा था।

प्रिंसिपल जॉर्डन ने उसके स्कूल के लिए पक्की इमारत बनवा देने का वचन दिया। गवर्नमेंट कॉन्ट्रेक्टर राय भुवन मोहन सरकार तथा उनके द्वारा आस-पास के बड़े-बड़े ज़मींदारों का सहारा पाकर स्कूल की इमारत देखते-देखते खड़ी हो गयी। कलक्टर आये, बड़े-बड़े लोग आये, जल्सा हुआ; लड़कों को मिठाइयाँ बाँटी गयीं। दयाल ज़मींदार भी अब उसकी पीठ पर हाथ रखने लगे; उसे अपने लड़के का शिक्षक नियुक्त किया। अपने पिता की मृत्यु के बाद रामदुलाल चक्रवर्ती का लड़का गोविन्द भी किसी गाँववाले साले की परवाह न कर, शुभ काम में हाथ बँटाने पांचू के स्कूल में मास्टर हो गया।

गोविन्द मास्टर के आने से गाँव में खलबली-सी मच गयी। रामदुलाल शुरू से पांचू के स्कूल के सबसे बड़े विरोधी थे। जब उन्हीं का लड़का नीच जाति को पढ़ाने लगा तो चार उँगलियाँ गोविन्द पर उठीं। गोविन्द ने अपने कार्य का समर्थन करने के लिए ब्रह्मास्त्र खोज निकाला—"खास कलक्टर साहब ने पांचू बाबू से यह स्कूल खुलवाया है। वह सबको राजभाषा सिखाना चाहते हैं। कल यही डोम-बाग्दियों के लड़के अंग्रेजी पढ़कर हमारे ऊपर राज करेंगे और कलक्टर साहब के हुकुम से बामन-कायस्थों से मैला उठवायेंगे—देख लेना। इतने बड़े-बड़े आदमी एक इशारे पर दौड़े चले आये। हमारे पांचू बाबू क्या कोई मामूली आदमी हैं? कलक्टर साहब के बड़े जिगरी दोस्त हैं। जो उनके स्कूल के खिलाफ बोलेगा, उसी को जेल हो जायेगी।"

गोविन्द मास्टर की अतिशयोक्ति में थोड़ी -बहुत गुंजाइश रखते हुए भी गाँव वालों को यह मानना पड़ा कि पांचू मामूली लड़का नहीं है। उसके स्कूल के विरोधी को जेल न सही, जुर्माना अवश्य हो सकता है। लोग उसके प्रभाव के कारण अब उसका आदर भी करने लगे। पर बामन-कायस्थों की नाक न कटे, इसलिए सन्धि के प्रस्ताव में एक शर्त यह रखी गयी कि

स्कूल में नीच जाति के लड़कों से अगर ऊँचों को अलग बैठाने को राज़ी हों तो सब जने अपने लड़कों को पढ़ायेंगे। प्रस्ताव पांचू की माँ की मार्फत आया, और माँ के विशेष आग्रह पर पांचू को ऐसी व्यवस्था करनी पड़ी।

पांचू को आज भी याद है, अपनी इतनी बड़ी सफलता पर बच्चे की तरह उल्लसित हो गणेश की पीठ थपथपाते हुए उसने कहा था—"गणेश अगर तू न आया होता तो गाँव में आज यह स्कूल भी न होता!"

बालक गणेश का भोला-सा मुँह उस समय आत्म-गौरव और प्रसन्नता से चमक उठा था। आज भी पांचू की आँखों के सामने वही चेहरा फिर रहा है।

आज गणेश नहीं रहा, यह स्कूल भी नहीं रहा!

पांचू की इच्छा हुई कि वह फूट-फूटकर रोये। गणेश और स्कूल दोनों शरीर और प्राण की तरह एक थे। एक के न रहने पर दूसरे का न रहना भी ठीक उस तरह स्वाभाविक था। गणेश को फिर से लाकर अपने स्कूल को पुनर्जीवित करने की असमर्थता को, आन्तरिक विद्रोह और पीड़ा के साथ अनुभव करता पांचू विकल हो उठा।

छोटे बच्चे जिस तरह किसी चीज़ को पाने के लिए पैर रगड़-रगड़कर मचलते हैं, पांचू का मन उस समय ठीक उसी तरह गणेश को पाने के लिए मचल रहा। उसकी कल्पना कमरे के ज़र्रे-ज़र्रे से गणेश को खोज निकालने लगी। वह महसूस करने लगा, गणेश दरवाज़े से अन्दर आ रहा है। गणेश डेस्क पर है—गणेश सब डेस्कों पर है। वह चाकें बटोर रहा है। ग्लोब के पास—हाँ, ग्लोब के पास गणेश ही खड़ा है। उसने ग्लोब घुमाया। सचमुच ग्लोब घूम रहा है? नक्शे के अन्दर से भी गणेश निकलता हुआ दिखायी दिया। उसे एकसाथ कई जगह से गणेश अपने पास आता हुआ महसूस हुआ।

"सर...!"

पांचू ने चौंककर अपने पीछे देखा। कुछ भी नहीं। लेकिन आवाज़ गणेश की ही थी—साफ़ गणेश की। तब क्या...?

सहसा उसने खिलखिलाकर हँसने की आवाज़ महसूस की। पांचू का दिल धक्-धक् करने लगा। साथ ही साथ दिमाग के अन्दर एकदम सुन्न पड़ जाने का अनुभव हुआ। पांचू का सिर अपने-आप ही झोंक खा गया।

सारी शक्ति के साथ कुर्सी के पीछे लटकते हुए दोनों सुन्न हाथों को उसने अपने आगे मेज़ पर पटक दिया; फिर हथेलियों पर अपने शरीर का सारा भार टिकाकर प्राणपण से उसने अपने शरीर को उठाने की कोशिश की—और वह उठ खड़ा हुआ। वह बदहवास होकर कमरे से बाहर निकला। बरामदे में आकर कमरे की तरफ़ देखते हुए उसने महसूस किया कि उसका दिल अभी भी धड़क रहा है, उसकी साँस तेज़ हो रही है। तो क्या सचमुच...

पांचू की चेतना वापस लौट आयी। संभलकर उसने अपने को फटकारा—"फिर बहके! नहीं, नहीं, मगर वो आवाज़ें...और वो...?"

पांचू की साँस अपनी गति से चलने लगी, दिल की धड़कन भी स्वाभाविक हुई—"सब मेरी कल्पना थी, और कुछ नहीं। सच कुछ भी...सच कुछ भी नहीं था।"

एक इच्छा हुई, अन्दर चलकर बैठे। पर...

उसने एकाएक घूमकर धूप को देखा। साढ़े तीन बज रहे होंगे; बल्कि अब तो पौने चार होंगे। चलना चाहिए।

लेकिन ये रजिस्टर, कागज़—अजी, पड़ा रहने दो इन्हें। कौन आता है यहाँ?

ताला दो कदम अन्दर जाकर डेस्क पर रखा था।

उठाता हूँ—हाँ, उठा लाऊँगा। कोई बात नहीं है।

कदम तौलते हुए पांचू का साहस स्वयं उसे भी चकित कर गया। लपककर ताला अन्दर से उठा लाया और दोनों हाथों से खींचकर कमरे के दरवाज़े बन्द कर दिये।

दरवाज़े की कुण्डी लगाते हुए पांचू ज़रा मुस्कुराया—"बेकार में डर गया। डरा नहीं जी... अच्छा होगा, दयाल बाबू के यहाँ जाना है। वक्त से उठ आया, नहीं तो खयालों में ही बैठा रह जाता।"

ताला लगाते-लगाते वह सोचने लगा—"क्या सचमुच दयाल बाबू ने मुझे आज चावल देने का वायदा किया था—या यह भी मेरी कल्पना?"

"नहीं, बिल्कुल सच है।" तत्क्षण दूसरे विचार ने उसके मस्तिष्क में आग्रहपूर्वक प्रवेश किया और आत्मा की दृढ़ता के साथ उसने अपने को विश्वास दिलाया कि दयाल ने उसे चावल देने का वचन दिया था।

फिर एकदम से पांचू को हँसी आ गयी।

2

"बड़ी बहू! चलो, चलो। बखत न गँवाओ। चूल्हा संजो के तैयार रखो माँ! और पानी की पतीली गरम होने को रख दो। पांचू के आते ही चावल उसमें डाल दिया जायेगा—बस, छिन-भर में भात रंधकर तैयार!"

पानी पीकर रीता गिलास हाथ में लिये पार्वती माँ, एक सुर में बोलती हुई, गिलास माँजने में अपनी सारी फुर्ती दिखाने लगी।

शिबू की बहू, दालान में बैठी, पास ही चटाई पर पड़ी हुई चुन्नी को थपकी देकर सुला रही थी। अभी-अभी उसकी आँख लगी है, बड़ी मुश्किल से सोयी है।

पास ही कनक भी सो रही थी। शिबू की बहू चुन्नी को धीरे-धीरे थपथपाती ही रही। सास की बात पर मुस्कुराते हुए उसने सिर उठाया और धीरे से बोली—"लेकिन, ठाकुर-पो (देवर) को घड़ी में तो अभी बड़ा सवेरा ही दिखायी देता है न!"

बात करते हुए उसके मुँह का रुख, दीवाल से टिककर बैठी, दोनों घुटनों की 'वर्किंग टेबिल' सी बनाकर, तकिये के गिलाफ पर हरे-लाल डोरों से 'गुड लक' काढ़ने में लीन, पांचू की पत्नी मंगला की तरफ़ ही था।

आवाज़ के अन्दाज़ पर मंगला का चेहरा उठा। चेहरे की विशेषता के रूप में मंगला की बड़ी -बड़ी सपनोंभरी आँखों की पुतलियाँ चमककर शिबू की बहू की आँखों में समा गयीं, और दो जोड़ी होंठों पर शैतान मुस्कुराहट खिलवाड़ कर गयी।

बात खत्म करने के बाद उसने ज़रा आहिस्ता से एक सर्द आह की सलामी मंगला को सुनाते हुए छोड़ दी। बनावटी आह भरने से उसके भूखे शान्त पेट में एक गति-सी मालूम हुई। यह उसके पेट में ठंडी-सी, भली मालूम हुई।

सपनों-भरी आँखों की पुतलियों में गुस्से का बहाना बरसाकर फिर अपने काम में लगी हुई मंगला चट-से बोल उठी—"अरे अभी तो ज़मींदार की घड़ी में दोपहर और शाम भी बीतने को पड़ी है। और फिर ज़मींदार की घड़ी ठहरी—उसमें कब जाने दोपहर हो और कब शाम! भई बकुलफूल, तुम तो भूख के मारे अभी से ही बच्ची बनी जा रही हो।"

"तुम चाहे जैसे समझो। आज तो तेरे उनकी बाट में मैं भी तेरी तरह ही मन मारे बैठी हूँ सखी! हाय, तुझे रोज़ इतनी बाट जोहनी पड़ती है।"

बड़ी बहू ने फिर एक लम्बी सर्द आह खींचकर मंगला की तरफ़ फेंकी, लेकिन इस बार ठंडक पाकर पेट कुड़मुड़ाने लगा।

मज़ाक करते-करते ही बड़ी बहू अनमनी हो गयी। पेट की कुड़मुड़ाहट से बेचैन हो, उसे भूलने के लिए वह खड़ी हो गयी। जिठानी को उठते देख मंगला भी काम में हाथ बँटाने के खयाल से अपना सारा सामान बटोरकर ऊपर अपने कमरे में रख आने के लिए उठी।

सूरज की रोशनी की एक लकीर दालान के आगे की टूटी मेहराब से गुज़रकर दालान के अन्दर की दीवाल पर पड़ रही थी। मंगला के खडे होने पर रोशनी उसकी गर्दन, होंठ, नाक और सिर के कुछ हिस्से पर पड़ने लगी। उस रोशनी में नाक की सोने की कील में जड़ा हुआ लाल नग दमक उठा। आज चार दिन से, जब से इस घर में अकाल आया है, पार्वती माँ ने बचे-खुचे एक-एक, दो-दो गहने सब लड़की-बहुओं को पहना दिये हैं। रसोईघर में भी ज़रूरत से ज़्यादा बर्तन खनकते हैं। औरतें ज़रूरत से ज़्यादा काम-काज में व्यस्त, सदा की भाँति ही आज भी जीवन में, मन में पूर्ण निश्चिन्तावस्था का अभिनय करने के विफल प्रयत्न में प्राणपण से लगी हैं।

पिछली शाम पांचू यह सब देखकर हँस पड़ा था। कहने लगा—"माँ, अगर कोई अखबार का रिपोर्टर इस समय तुम्हारे घर में आये तो उसे यहाँ ज़रा भी अकाल नज़र नहीं आयेगा। मेरी समझ में नहीं आता कि तुम छिपाती किससे हो? सबके घरों में यही तमाशा तो है।"

पार्वती माँ खिसियानी हँसी हँसकर बोलीं—"चाहे जो हो, पर आबरू तो संभालनी ही पड़ती है न! भगवान ने यही तो छोटे लोगों से हम लोगों में फरक रखा है। नहीं तो हम लोग भी उनकी तरह गली-गली, गाँव-गाँव में भीख न माँगते होते, लूट-मार न करते होते।"

पांचू ने इस पर फिर हँसकर जवाब दिया—"पर कब तक नहीं करेंगे माँ? आबरू से पेट तो भरता नहीं, फिर उसे बचाकर रखने से भी क्या लाभ?"

पार्वती माँ को कुछ जवाब न सूझा, हारकर कहने लगीं—"तेरा मत तो सारी दुनिया से निराला है। भला आबरू के बंधन भी कहीं छूटते हैं? कुलीनों की आबरू तो चिता तक साथ जाती है, बेटा!"

"पर पुरानी धोती के हज़ार पैबंधों की तरह कुलीनों की आबरू भी अब अपनी असलियत को, लाख कोशिश करने पर भी, छिपा नहीं पाती माँ!"

"ये तो सच है। किया भी क्या जाये। नंगे की तो दोनों टाँगें उघाड़ी, तब भी वह किसी तरह लाज तो समेटता ही है, बेटा!"

इसके ज़रा देर बाद ही रामतनु की घरवाली आ गयी। पार्वती माँ उनसे बातें करने में लगीं। सारा घर काम-काज में व्यस्त हो गया। लेकिन बीच में ही दीनू ने भूख-भूख चिल्लाना शुरू कर दिया, परेश भी उसका साथ देने लगा। डाँट-धमकी, बहलाने-फुसलाने से काम नहीं चला। आबरू की रक्षा में माँ को हार मानते देख शिबू भी आ गया और उसने लड़कों को मारना-पीटना शुरू कर दिया।

पांचू किसी तरह दोनों भतीजों को शिबू से छुड़ाकर ऊपर अपने कमरे में ले गया। उसके बाद उसने अपनी डायरी में लिखा—"आबरू के असत्य से दूर की सलाम रखनेवाला सच्चा जवांमर्द अगर कोई इस देश में मिल सकता है तो वह कोई छोटी उम्र का बच्चा ही होगा, जो भूख लगने की इन्सानी कमज़ोरी के लिए ज़रा भी लज्जित नहीं।"

बाँस की छोटी-सी मेज़ पर मंगला के हाथ का कढ़ा हुआ मेज़पोश बिछा हुआ था। बीच में शीशे का छोटा-सा कलमदान रखा था, जिसकी दोनों दवातों की स्याही सूख गयी थी।

बायीं तरफ़ एक ईंट के दो टुकड़े कर, उस पर पन्नी चढ़ाकर, ऊपर से मंगला के बनाये मोम के रंगीन मोतियों की झालरें पड़ी हुई थीं। इस तरह दोनों ईंटों के सहारे से उनके बीच में आठ-दस किताबें सजाकर रखी गयी थीं। दाहिनी ओर पीतल की ॐकार बनी हुई छोटी-सी धूपदानी और मेज़ के ऊपर दीवाल पर भारतीय चाय का एक कैलेंडर टँगा था। दीवाल के दोनों तरफ़ गाँव की ओर खुलती हुई दो खिड़कियाँ थीं। दीवाल से सटी हुई बड़ी चारपाई, उस पर करीने से बिस्तर लगा हुआ। चारपाई से लगी हुई दीवाल के ठीक बीचोबीच एक राधाकृष्ण की तस्वीर, अगल-बगल सुभाषचन्द्र बोस और जवाहरलाल नेहरू की तस्वीरें।

एक तरफ़ तीन संदूक एक-दूसरे पर चुने हुए रखे थे, उसके ऊपर के आले में रद्दी अखबार बिछाकर एक शीशा, कंघा, तेल, आलता की शीशियाँ और बनारस की बनी हुई लकड़ी की सिन्दूर की डिबिया रखी हुई थी।

मंगला ने मेज़ पर, धूपदानी के पास, अपने काढ़ने-बुनने का सामान रख दिया।

डायरी खुली हुई सामने रखी थी। बीच में पेंसिल रखी हुई थी। मंगला ने पांचू का लिखा एक बार पढ़ा। पेंसिल उठाकर कलमदान में रख दी, और डायरी बन्द करके किताबों के पास। फिर शीशे में एक बार मुँह देखा, कंधे से बालों को ज़रा-सा 'टच' दिया और नीचे जाने लगी। दरवाज़े के इधर से ही फिर लौटी, खिड़की बन्द करने के लिए। बाहर देखा, पाँच-छह आदमियों के बीच में बैठा हुआ शिबू ज़ोर-ज़ोर से कह रहा था—"खुद मोनाई ने मुझसे कहा कि सरकार ज़बर्दस्ती फ़ौज के लिए उससे सारा अनाज खरीद ले जाती है। अरे..."

मंगला ने खिड़की बन्द कर दी और नीचे चली गयी।

वह सोच रही थी—"चावल लेकर आते होंगे।"

जीने के नीचे पैर रखा ही था कि बाहर के दरवाज़े से तुलसी और दीनू-परेश अन्दर आते दिखायी दिये।

मंगला को देखते ही बच्चे एकसाथ ही बोल उठे—"काकी माँ, हमने छन्देच काये, दो-दो!"

सारे घर का ध्यान बच्चों की तरफ़ चला गया।

पार्वती माँ और बड़ी बहू चौके में बैठी थीं। कनक तब तक जाग चुकी थी। हथेली पर सिर टिकाकर लेटी हुई, चटाई की सींक तोड़कर, दाँतों से चबा रही थी; उठ बैठी। पार्वती माँ ने पूछा—"संदेश कहाँ पाये, दीनू?"

बच्चों से पहले तुलसी बोल उठी—"काकी नम्बर आठ के भाई आये हैं कलकत्ते से।"

बात काटकर पार्वती माँ बीच ही में घुड़क पड़ीं—"फिर कहा काकी नम्बर आठ! तुझे भी पांचू की आदत पड़ गयी है? रामतनु की घरवाली सुनेगी तो क्या कहेगी? खबरदार, जो आज के पीछे फिर कभी कहा तो!"

तुलसी चुप हो गयी। बच्चे सहमकर वहीं के वहीं खड़े रह गये।

एक सेकंड चुप रहकर पार्वती माँ फिर स्निग्ध स्वर में बोलीं—"गोपाल का बाप संदेश लाया होगा। कब आया वो?"

"अभी दिन में ही तो आये हैं। गोपाल को ले जायेंगे।" तुलसी ने सिर झुकाकर कहा।

परेश दादी के पास जाकर बोला—"थाकुम्मा, छन्देच काया। मीथा-मीथा।"

दीनू से भी दूर न रहा गया, पार्वती माँ के पास जाकर कहने लगा—"ठाकुम्मा, हमको तो मामा ने एक-एक दिया, और बुआ को तो बौत से खिलाये।"

तुलसी एक संदेश छिपाकर लायी थी। उसे चुपके से कनक को देकर वह उसके पास ही चटाई पर बैठ गयी थी। तड़ से डपट पड़ी —"झूठ बोलता है। दो दिये थे मुझको। मैं तो बहुत

मना करती रही माँ!"

दीनू भी कम नहीं, लड़ पड़ा—"नई, दो तो अपने हात से तुमे खिलाये ते मामा ने। हमने गिना ता—एक, दो—जब काकी आयी थीं कमरे में, आं।"

"और तुम लोगों को भी तो दो-दो दिये थे उन्होंने।"

"वो तो हमें बाद में काकी नम्बर आ..."

"फिर कहा, आप तो सही!" पार्वती माँ दीनू पर घुड़क पड़ीं।

दीनू चट से भागकर चाची के पैरों से चिपक गया। मंगला तुलसी-मंडप के आस-पास बुहार रही थी। दीनू के अचानक पैरों में आ लिपटने से वह ज़रा लड़खड़ाई, फिर संभल गयी।

"अरे-अरे..."

"काकी माँ," दीनू ने उससे धीरे-धीरे कहना शुरू किया—"काकी माँ सच्ची! अमको तो एक-एक संदेच दिया मामा ने, और बुआ को तो बौत-से संदेच बी दिये और बौत-सा प्यार बी किया। अमको तो प्यार बी नई किया मामा ने।"

दीनू रूठी हुई आवाज़ में धीरे-धीरे कह रहा था। बीच-बीच में अपनी दादी की तरफ़ भी देखता जाता था, गोया इशारा हो—"तुमने हमारी शिकायत नहीं सुनी तो हम अब सुनाने के भी नहीं; हम तो अपनी चाची को सुना रहे हैं, चुपके-चुपके!"

गुस्से को बेबसी से दबाये, सकपकाई हुई नज़रों से, तुलसी दीनू की तरफ़ ही देख रही थी। मंगला ने यह बात सुनकर कड़ी नज़र से तुलसी की तरफ़ देखा। आँखें मिलते ही उसने आँखें चुरा लीं और झुककर चटाई की सींक तोड़ने लगी। उसे इस समय अपने ऊपर बड़ा गुस्सा आ रहा था। वह दीनू-परेश को काकी नम्बर आठ के यहाँ अपने साथ ले ही क्यों गयी। पर उसे मालूम थोड़े ही था कि मामा आये हैं; और मामा उसके साथ ऐसा बर्ताव करने लगेंगे।

मामा के बर्ताव का ध्यान आते ही तुलसी ने अपनी रग-रग में गुदगुदी से भरी हुई सिहरन महसूस की। झुका हुआ चेहरा अपनी तमतमाहट को रोकने के लिए दोनों घुटनों के बीच और भी गड़ गया। बाल की एक लट खिसककर चेहरे पर आ गिरी। तुलसी अपने सारे बदन को और भी सिकोड़कर बैठ गयी। मामा के रूप में एक पुरुष ने आज उसकी कल्पना की दुनिया में पहली बार कदम रखा था। घर में, पास-पड़ोस में, बराबर की ब्याही हुई लड़कियों में, बंकिम-शरत् के उपन्यासों में, और अपनी उम्र के तकाज़े से, सारी समझी-समझाई हुई बातों को वह जिस तरह आपबीती बनाने के लिए पिछले दो-ढाई बरसों से दिल ही दिल में तड़पा करती थी, मामा से उन्हीं बातों का कुछ-कुछ आभास उसने पाया था। फिर दीनू-परेश गड़बड़ कर उठे। काकी नम्बर आठ आ गयीं। उन्हें देखते ही वह कैसी धक्-से रह गयी थी। फिर काकी की मुस्कुराहट और मतलब-भरी निगाहों से उसकी और मामा की तरफ़ देखना, फिर दीनू-परेश को बहलाकर बाहर ले जाना। उसके बाद मामा की रसीली बातें, उनकी यह प्यार-भरी छेड़छाड़। वह लाज के मारे पसीना-पसीना हो गयी। बाँहों से निकलकर भागी। मामा की बेकरारी; कमरे के दरवाज़े पर चट से उसका हाथ पकड़कर मामा ने कहा—"शाम

को आना। ज़रूर-ज़रूर! उमा दीदी कुछ न कहेंगी—किसी से कुछ न कहेंगी...।"

"शाम को आना! शाम को आना!"—गर्दन उठाने की ताब नहीं, वह देखे कैसे कि अँधेरा हो रहा है, शाम हो रही है...!

तभी कनक ने उसका हाथ झटककर पूछा—"मामा ने तुम्हें कितने सन्देश दिये थे दीदी?"

"कह तो दिया कि दो—एक तुझे ठुसा तो दिया!"

तुलसी तड़पकर खड़ी हुई लेकिन उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि वह घर में और कहाँ जाकर बैठे। उसके लिए कहीं एकान्त नहीं। घर में हर एक का चेहरा उसे दुश्मन जैसा नज़र आ रहा था। उसका सारा बदन अकड़ रहा था। खड़े रहने की ताब न थी। वह कहीं जाकर चुपचाप लेट जाना चाहती थी, अपने में खो जाना चाहती थी।

"अरे सुनती हो, एक गिलास पानी तो दे जाना!" बाबा की कोठरी से आवाज़ आयी।

आवाज़ के कानों में पड़ते ही तुलसी के खयालों ने करवट ली। "शाम को आना।"—वह जानती है, जब बाबा पानी माँगते हैं तो माँ को जाना पड़ता है। तुलसी ने अपने में स्फूर्ति का अनुभव किया। आँखें माँ की ओर उठ गयीं।

पार्वती माँ मन ही मन कटी जा रही थीं। झुंझलाहट पेशानी की नसों में तनी जा रही थी। लटके हुए गालों पर शर्म का बोझ पड़ रहा था जिसे उठाना अब उनकी उम्र के लिए दूभर था। काश कि कान बहरे हो जाते। उनकी आँखें क्या फूटी हैं कि दिन और रात का लिहाज़ भी न रहा!

"अरे सुना नहीं, तुलसी! अपनी माँ से कह, एक गिलास पानी दे जाये।"—फिर आवाज़ आयी।

दालान में खड़ी हुई तुलसी ने फौरन ही बड़े उत्साह के साथ कहा—"माँ, बाबा पानी माँग रहे हैं।"

पार्वती माँ की आत्मा पर तमाचा पड़ा। वह तिलमिला उठीं। जवान-जवान बहुएँ, बेटियाँ —तीन-तीन पोती-पोतों की दादी के पद की प्रतिष्ठा को आघात लगा। गुस्सा उतारा तुलसी पर—"तो सूंस ऐसी खड़ी -खड़ी सुन क्या रही है? दे क्यों नहीं आती एक गिलास पानी उन्हें?...अन्धे क्या हो गये हैं, मेरी जान पर संकट आ गया है। दिन-रात हाय-हाय, हाय-हाय। पानी चाहिए, औ' पान चाहिए, औ' पत्ता चाहिए। बैठ के बूढ़ों की तरह से राम का नाम नहीं लिया जाता। उंह!"

अपनी कोठरी में केशव बाबू चारपाई पर अधलेटे-से पड़े थे। पार्वती माँ का एक-एक शब्द उनके दिल को, अन्धी आँखों पर ही चुभता हुआ महसूस हो रहा था। मोतियाबिन्द से भरी हुई आँखों की पुतलियाँ इधर-उधर फड़फड़ाने लगीं। फीके चेहरे पर तमतमाहट छा गयी। केशव बाबू एक बार उठकर बैठ गये। बेताबी और झुंझलाहट से उनके बदन में एक किस्म की फुर्ती आ गयी। मगर दूसरे ही क्षण वह फिर निढाल होकर तकिये के सहारे टिक

गये, टाँगें ऊपर की ओर समेट लीं।

एक हल्की-सी निःश्वास केशव बाबू ने छोड़ दी।

आज पाँच वर्षों से वह अन्धे होकर पड़े हैं। राम का नाम भी कोई कहाँ तक लेता रहे। चौबीस घंटे कोठरी में पड़ रहो। नरक के कुत्ते की तरह दो रोटियाँ खा लीं; बस। कोई बात भी पूछनेवाला नहीं..."अरे, जब पत्नी ही अपने कहे की न रही, तब और किससे आशा की जाये? वो तो भाई, अब जवान-जवान बेटों की माँ है। कमाऊ-धमाऊ बेटे हैं, बहुएँ हैं। मेरी बात भला अब वो क्यों पूछेगी? परन्तु उसे बेटोंवाली बनाया किसने? आज मैं अन्धा हो गया हूँ तो क्या मेरी बात भी नहीं सुनेगी?"

पानी का गिलास लेकर आये हुए तुलसी को एक मिनट से ऊपर ही हो चुका था, लेकिन वह चुपचाप खड़ी हुई बाबा की तरफ़ देख रही थी। केशव बाबू का चेहरा उस धुँधली रोशनी में भी भारी और तमतमाया हुआ उसे दिख रहा था।

केशव बाबू ने एक भारी निसाँस छोड़ी और टाँगें फैलाकर तकिये के सहारे ज़रा और झुक गये। तब कड़ी आवाज़ में तुलसी ने कहा—"बाबा, पानी।"

तुलसी की आवाज़ कानों में पड़ते ही केशव बाबू उत्तेजित हो उठे—"लड़की के हाथ पानी भेज दिया। अब इतनी अवहेलना होगी मेरी—नहीं चाहिए मुझे उसका अहसान!"

"नहीं चाहिए पानी-वानी, ले जा! जब भगवान ने आँखें ही छीन लीं, अन्न ही छीन लिया, तब पानी पीकर क्या करूँगा!"

केशव बाबू ने अपनी अन्धी आँखों को तुलसी की आवाज़ के अन्दाज़ पर टिकाकर गुस्से से कहा। पार्वती माँ की इस अवहेलना ने केशव बाबू के पुरुष-मन को विरक्ति से भर दिया था।

"प्राणों से अधिक प्यार किया—उसका ये फल दे रही है मुझे? इच्छा करते ही पचास विवाह कर सकता था। एक से एक बढ़ी-चढ़ी, इन्द्र की अप्सराएँ इन चरणों पर शीश झुकातीं। बड़े-बड़े श्रीमान और धीमान जिसके आगे हाथ जोड़े खड़े रहते थे, उसकी अवहेलना करती है यह नारी! आखिर तो ठहरी स्त्री की जाति, जवानी रहे की साथी। फिर ज़रा-सा भी बुलाओ तो हज़ार नखरे...पर दोष तो मेरा ही है। मैंने ही इसको लाड़ कर-करके सिर पर चढ़ा लिया है। जो यह कहती थी, करता था। इसका दिल न दुखे, इसलिए शिबू को इसके पास ही रहने दिया। इसके कारण ही मैं उसे पढ़ा-लिखा न सका, नहीं तो आज यह भी पांचू की तरह विद्वान होता। अरे विद्वान के बेटे विद्वान ही होंगे—परन्तु यह मूर्खा मेरी कदर क्या समझे? फिर, अपने को बड़ी पतिपरायण और बुद्धिमती समझती है। पत्थर पड़ें ऐसी बुद्धि पर! आना चाहे तो सौ बहाने निकालकर आ सकती है। मगर नहीं, इसमें भी जैसे उसकी कोई जमा जाती है। दो घड़ी इस शुष्क जीवन में रस आ जाता है, सो भी इसे..."

केशव बाबू के खून में फिर गर्मी चढ़ने लगी। अपनी परवशता पर वह मन को मसोस-मसोसकर रह जाते थे। भूखे शरीर और भूखी वासना के घात-प्रतिघात से उनका मन जर्जर

हुआ जा रहा था। सिर में चक्कर आने लगा। तन थकने लगा। साँस भारी चलने लगी।

केशव बाबू ऊब गये; हार गये, सारा मन खीझ से भर गया। अगर ये लड़के-बच्चे न होते तो अवश्य चली आती। लड़के-बच्चे, बहुएँ, पोती-पोते उन्हें ज़हर-से लगने लगे। इन्हीं के कारण वह इच्छा करने पर अपने जीवन में रस नहीं पा सकते। पत्नी के ऊपर भी क्रोध आ रहा था—"इशारा नहीं समझती। पत्थर है पत्थर! अपनी इच्छा हो तो सारी दुनिया की आँखों में धूल झोंककर मेरे पास आ सकती है। परन्तु इच्छा करे तब न! दादी और सास बनकर वह भूल गयी है कि पहले वह पत्नी है। शास्त्रों ने पत्नी के लिए पतिसेवा ही श्रेष्ठ धर्म बताया है।...परन्तु किसका शास्त्रा? किसकी पत्नी? ये सब मोह हैं। मायाविनी! नारी आखिर है तो माया की ही मोहिनी! बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों की तपस्या भंग कर दी। अरे, दूर कहाँ जाऊँ—मुझे ही इसने पथभ्रष्ट कर दिया, अन्यथा आज लोक-परलोक सुधर गया होता मेरा। किन्तु नारी। नरक का द्वार! हरे! हरे! कहाँ इस गृहस्थी के माया-जाल में फँस गया? गोविन्द! गोविन्द! इस स्त्री ने मुझे बहुत लुभाया।"

केशव बाबू की अन्धी आँखों ने कोठरी में इधर-उधर दौड़कर चारों तरफ़ टाँडों पर लदे हुए अनेक ग्रन्थों और पोथियों के बस्तों को अनुमान से देख लिया। स्वयं शास्त्री, तर्करत्न, तिसपर विद्यावागीश के पुत्र! बड़े-बड़े इनकी विद्वत्ता का लोहा आज भी मानते हैं। ढाका कॉलेज में संस्कृत के प्रोफ़ेसर थे। इन अन्धी आँखों ने उन्हें कहीं का न रखा। और इस नारी, नरक द्वार...

कोठरी के दरवाज़े की कुंडी धीमे से खनक उठी। सारा दर्शन, ज्ञान और पांडित्य कपूर की तरह पल-भर में उड़ गया। "आयी शायद...पसीजी"—केशव बाबू की अन्धी आँखें आशा की ज्योति से चमक उठीं। किन्तु 'चूँ-चूँ-चूँ'—चिड़िया थी। कुंडी पर आकर बैठी, और फिर पर फड़फड़ाकर उड़ गयी।

केशव बाबू के मुँह से बरबस एक ठंडी आह निकल गयी—"अरे, वह भला क्यों आने लगी। कुछ नहीं, अब तो बस संन्यास ले लूँगा। ऐसे घर से लाभ ही क्या? ऐसी पत्नी से सुख ही क्या? यों ही देश के ऊपर ईश्वर का कोप हो रहा है। और उसके ऊपर घर में अपनी पत्नी ही जब अपने सुख की शत्रु हो जाये...हो जाने दो...नारी नरक...का द्वार...गोविन्द! गोविन्द!"

काम-वासना की उत्तेजना क्रोध बनकर फिर धीरे-धीरे, मन ही मन में, विरक्ति भाव धारण कर मन को संन्यासी बना चुकी थी, परन्तु यह कोई नयी बात नहीं। ऐसा अक्सर होता है। केशव बाबू का पुरुष-मन जब रम नहीं पाता तो संन्यासी हो जाता है। और एक बार तो ऐसे ही संन्यासीपन के 'मूड' में उन्होंने खिझलाकर दीवाल से अपन सिर फोड़कर खून निकाल लिया था। जब संन्यास आता, तब शंकराचार्य की चर्पट-मंजरी का पाठ आरम्भ कर देते हैं। आज भी हारे हुए संन्यासी मन ने चर्पट-मंजरी की शरण ली। विरह-कातर क्षीण वाणी को संन्यास का कुश्ता चटाने लगे—

‘का ते कान्ता कस्ते पुत्रः
संसारोऽयमतीव विचित्रः।
कस्य त्वं वा कुत आयातः
तत्त्वं चिन्तय तदिदं भ्रातः!
भज गोविन्दं भज गोपालं, गोविन्दं भज मूढ़मते।

शिबू की बहू चूल्हे के पास बैठी थी। मंगला चूल्हे में जलाने के लिए लक़डियाँ लेकर आयी थी; वहीं खड़ी थी। पार्वती माँ ज़रा दूर पीढ़े पर बैठी थीं। बाबा की कोठरी से चर्पट-मंजरी सुनायी पड़ने लगी। शिबू की बहू ने मतलब-भरी आँखें ऊपर उठायीं। मंगला की आँखों से मिलीं। दो जोड़ी होंठों पर शैतान मुस्कुराहट खिलवाड़ कर गयी।

सास की तरफ़ मंगला की पीठ थी, शिबू की बहू ने अपनी मुस्कुराहट छिपाने के लिए मुँह फिरा लिया; फिर भी पार्वती माँ से छिपा न रहा। पद-गौरव और बुढ़ापे की झुंझलाहट बेबसी में झेंप बनकर रह गयी। बहुएँ जानती हैं, सास भी स्त्री है।

चर्पट-मंजरी ‘भज गोविन्दं, भज गोपालं’ तक पहुँच गयी। यदि कुछ देर तक और इसी तरह ‘मूढ़मते’ को गोविन्द-गोपाल भजने पड़े तो सिर फोड़ने की नौबत आ जायेगी, यह डर पार्वती माँ को समर्पण के लिए धीरे-धीरे प्रस्तुत कर रहा था। अठारह-बीस साल की जवान बहुओं की कक्षा में बैठते हुए सुहागिन सास की उम्र का अड़तालीसवाँ बरस बूढ़ी लाज के घूँघट से जवान बनकर झाँकने लगा—“फिर क्या किया जाये नहीं मानते तो!...”

पर जवान कुँवारी बेटियों के आगे, दिन-दहाड़े संन्यासी पति को फिर से गृहस्थ बनाने के लिए जाते हुए बूढ़ी सुहागिन के पैर कैसे उठेंगे?

चर्पट-मंजरी का पाठ चल रहा था—“प्राप्ते सन्निहिते मरणे...”

“तुलसी! जा बेटी, रामतनु की घरवाली से पूछ तो आ, एकादशी कब की है?”

अन्धे को जैसे आँखें मिल गयीं। तुलसी चल दी। कनक को एक ही संदेश मिला था, वह भी उठ खड़ी हुई—“मैं भी जाती हूँ माँ!”

“तू क्या करेगी चलकर?” तुलसी भड़की।

मंगला तुलसी को कड़ी निगाह से देखकर बोल उठी—“ले जाओ न उसको। कनक, दीनू, परेश को भी ले जाओ। और तुम लोग सब मामा के पास ही रहना—अच्छा!”

तुलसी झुंझला उठी—“तो फिर कनक ही पूछ आये न; मैं क्या करूँगी जाकर?”

“...पुत्रादपि धनभाजां भीतिः...” बाबा की कोठरी बोल रही थी।

माँ तड़ककर बोलीं—“ले क्यों नहीं जाते उसे? बिचारी दिन-भर से कहीं गयी नहीं, आयी नहीं। और वो भला क्या पूछेगी एकादशी-सुआदशी? खेल में भूल जायेगी, मेरा बरत रह जायेगा। जा, और दीया जले से पहले ही लौट आना—भला! और किसी को संदेश न माँगने देना, सुना?”

कनक, दीनू और परेश पहले ही जा चुके थे। तुलसी गुस्से में मुँह लटकाये सुनी-अनसुनी-

सी करके तेज़ी से निकल गयी।

कोठरी की आवाज़ तेज़ी पकड़ रही थी—"भज गोविन्दं, भज गोपालं—भज गोविन्दं, भज गोपालं..."

"ऊँह, मौत भी नहीं आती मुझ नसीबों जली को।" कहते हुए पार्वती माँ पीढ़े से उठीं। खड़े-खड़े एक सेकंड के लिए ठिठकीं, फिर कोठरी की तरफ़ सिर झुकाये हुए चल दीं।

बड़ी बहू और मंगला ने आज़ादी के साथ मुस्कुराने के लिए सिर उठाया। सास का पीढ़ा पास खींचकर उस पर बैठते हुए मंगला ने कहा—"तुम क्यों हँसती हो रानी? जब सास बनोगी तब मालूम पड़ेगा। ज्याठा मोशाई आखिर हैं तो अपने ही बाप के बेटे। तुझे बुढ़ापे में माला जपने के लिए छोड़ थोड़ी देंगे!"

मज़ाक करने का हौसला और चेहरे की मुस्कुराहट एकदम गायब हो गयी—"जान दे दूँगी अगर ऐसी नौबत आयेगी तो।"

बात कहते-कहते बड़ी बहू का चेहरा तमतमा उठा। अपनी बेबसी से विद्रोह करते हुए वह केवल मौखिक रूप से ही जान दे सकती है, बड़ी बहू इसे अच्छी तरह जानती है। तन की मशीन जिन्दा रखने वाली अन्तिम साँस तक वह अपने स्वामी की मिल्कियत है। पारसाल एक सौ तीन डिगरी के भरे बुखार में भी न छोड़ा था—मरने से बची थी उस बार।

बड़ी बहू सिहर उठी। भूख की कमज़ोरी से दिमाग की उत्तेजना उसे चक्कर देने लगी। किसी तरह अपने को संभालकर एक उसाँस लेती हुई बोली—"स्त्री-जीवन भी भला कोई जीवन है! माँ पर तरस आता है मुझे तो।"

"पर मैं कहती हूँ, दोष इसमें माँ का ही है। कठोर बन के बैठ जायें, बाबा कर ही क्या लेंगे? एक बार सिर फोड़ेंगे, दो बार फोड़ेंगे—अन्त में पित्ते मारकर आप ही बैठ जायेंगे।"

"भोला-भाला पा गयी है न! सारी दुनिया के मरदों को ठाकुर-पो जैसा ही समझती है तू तो। उनके ऐसा..."

चुन्नी जाग पड़ी थी, रोना शुरू हो गया था। दालान की तरफ़ एक बार देखकर बड़ी बहू बात कहते-कहते रुक गयी। तन और मन की थकान चेहरे और आँखों के भावों में उभरकर सामने आयी। रीढ़ की हड्डी उचकाकर पीठ को तानते हुए बड़ी बहू ने दीनता-भरे स्वर में मंगला से कहा—"उसे उठा तो ले फूल! मेरे बदन में तो सत नहीं रहा।"

चुन्नी के रोने और माँ के फर्ज़ में आत्मीयता की नाज़ुक डोर गज-ग्राह-द्वन्द्व-सी खिंच रही थी। दूध उतरता नहीं; नन्ही-सी जान रोते-रोते सदा के लिए खामोश हो जायेगी। माँ अपनी छातियों में दूध कहाँ से पैदा करे? और अपने कलेजे की कोर के बिलख-बिलखकर भूखे मर जाने की कल्पना से माँ का दिल अपनी पूरी शक्ति के साथ क्यों न उमड़ पड़े? क्यों न चीख उठे?

चुन्नी के आँसू बड़ी बहू की आँखों में आ गये। आँसू आते गये, बढ़ते गये। गोदी के बच्चे की तरह उसका बेबस मन अपने शरीर की ज़िम्मेदारियों को उठा सकने में अशक्त होने के

कारण हुमड़-हुमड़कर रोने लगा।

चुन्नी के रोने की आवाज़ बराबर नज़दीक आते-आते बड़ी बहू के कानों में कहीं गुम हो गयी। चुन्नी को लेकर मंगला रसोईघर में आ गयी थी। चुन्नी—बड़ी बहू की सावन बरसाती हुई आँखों ने उसे 'शायद' देखा—आँखें अपनी आदत से लाचार होकर सिर्फ़ अपना फर्ज़ अदा कर रही थीं, लेकिन मन उनसे अलग होकर आँसुओं में डूबता जा रहा था। डूबता ही चला गया—कहीं थाह नहीं, कहीं थाह नहीं। मन के पैर उखड़ने लगे, दम घुटने लगा। दिमाग नहीं, शरीर नहीं, सिर्फ़ दम है—और वह आँसुओं के बोझ से दबता जा रहा है, घुटता जा रहा है। आँसुओं के होश का साथ अब छूट रहा है। अँधेरा, भूरा, मटमैला-सा धुआँ-धुआँ...

"फूल, ओगो!"

कहीं असीम-अनन्त से फिर प्राणों के साथ शरीर का नाता जुड़ता हुआ जान पड़ा। प्राण हिल रहे हैं, ऊपर उठ रहे हैं। शरीर हिल रहा है। कहीं दूर से एक परिचित स्वर सुनायी पड़ रहा है—"फूल, ओगो।"

डूबते हुए मन को शब्दों का सहारा मिला। चेतना से दूर उस अँधेरे में वे परिचित शब्द प्राण और चेतना के बीच की टूटती हुई कड़ी को जोड़ रहे हैं—"फूल, ओगो...ओगो!"

ये शब्द उस दम घोंटनेवाले अँधेरे से उसे उबार रहे हैं। उसे सन्तोष मिल रहा है। प्राणों में उत्साह आ रहा है। आँसुओं के वेग को चीरकर वह उस परिचित स्वर को अपनी चेतना का संदेश सुनाना चाहती है।

स्वर का उद्वेग बढ़ रहा है। प्राण फिर तेज़ी से अपनी शक्तियों का संचय कर रहे हैं। आवाज़ को अपनी ताकत मिल रही है। आवाज़ अपनी पूरी ताकत के साथ कहना चाहती है, कहती है—"ह-अ-आं, ह-अ-आं!"

मंगला हक्की-बक्की-सी हो गयी थी। चुन्नी को लेकर आयी। देखा, बकुलफूल रो रही है। "अरे क्या हुआ, क्यों रो रही है?" कितना ही पूछो, कुछ जवाब नहीं देती। रोती जा रही है, फूट-फूटकर रो रही है। हिचकियाँ घुट-घुटकर आ रही हैं। उसने देखा, बड़ी बहू का शरीर अपने काबू में नहीं आ रहा है। गिरना ही चाहती है। उसकी गोदी में चुन्नी थी। वह भी रो रही थी। मंगला पल-भर के लिए तो घबरा गयी। फिर अपने को झटपट संभालकर चुन्नी को जल्दी से वहीं ज़मीन पर लिटा दिया और बड़ी बहू को लपककर उसने दोनों हाथों से रोक लिया। बड़ी बहू के कंधों को ज़ोर से झकझोरकर उसने घबराहट के साथ पुकारा—"फूल, ओगो...फूल, फूल!"

बड़ी बहू बोली—"हाँ...! हाँ!"

"क्या हो गया है तुम्हें? अरी बोलती क्यों नहीं, बोल ना?"

बड़ी बहू ने अब तक अपने को काफ़ी संभाल लिया था। वह सुबकियों से लड़ रही थी। सुबकियों को काफ़ी तौर पर उसने अपने कब्जे में कर लिया। गला खखारकर साफ किया।

"अरी क्या हो गया तुझे?" मंगला ने फिर पूछा, और अपने आँचल से उसके आँसू

पोंछती हुई बोली—"पागल कहीं की! इस तरह अपने को मिटाते हैं भला। पगली, कहाँ की बात कहाँ जोड़ ले गयी। ले, लड़की को संभाल। रोते-रोते गला बैठा जा रहा है बिचारी का।"

मंगला ने चुन्नी को उठाकर उसकी गोद में दे दिया। बड़ी बहू ने अब तक अपने को अच्छी तरह संभाल लिया था। आँखें और नाक अपनी धोती के पल्ले से पोंछकर उसने चुन्नी को ठीक तरह से अपनी गोदी में लिटा लिया और घुटने हिलाते हुए उसे थपकियाँ देकर चुप कराने लगी।

मंगला की सपनों-भरी आँखें बराबर अपनी सहेली के चेहरे को ही टकटकी बाँधकर देख रही थीं। जिस दिन से इस घर में आयी, उसी दिन से इन दोनों में बहनापा जुड़ गया। एक दिन के लिए भी देवरानी-जेठानी बनकर नहीं रहीं। ब्याह के बाद एक बार मंगला मैके गयी थी तो सास से कहकर इसे भी अपने साथ ले गयी। बड़ी बहू के माँ-बाप नहीं थे। मामा ने किसी तरह ब्याह के बाद अपना पिंड छुड़ाया और फिर कभी नाम भी न लिया।

बचपन में मामा की लड़की बहन थी जो सदा इसे दुतकारती रही, घर में मामी ने इसे नौकरानी की तरह जोतकर रखा, इसलिए बाहर कोई सखी-सहेली मिल न पायी। इस घर में आयी तो किस्मत बदल गयी। उसे सास नहीं मिली, माँ मिली। पांचू, तुलसी, कनक, बाबा—सभी उसे इतने अच्छे मिले। शुरू-शुरू में तो शिबू भी उसे अच्छा लगता था। अब भी वह उसे प्यार करती है, लेकिन...

बड़ी बहू और मंगला की आँखें मिलीं। आँखें चार होते ही रिश्ता प्यार की गहराई में उतर गया। गीली-गीली आँखें अनुराग से चमक उठीं। होंठ फड़के। दो जोड़ी होंठों पर प्यार-भरी मुस्कान की रेखाएँ खिंच गयीं।

"शैतान कहीं की! रो-रो के मेरा जी दहला दिया कम्बख्त ने!" मंगला रसोईघर के दरवाज़े की तरफ़ मुड़ते हुए बोली—"एक तो भूख की मारी, दूसरे तेरी ये रोनी सूरत देखकर चक्कर आ गया मुझे तो। पानी पियेगी, पी ले थोड़ा-सा; लाती हूँ।"

अपनी फूल का हाँ-ना कुछ सुने बिना ही मंगला रसोईघर के बाहर चली गयी। बड़ी बहू छिन-भर तो दरवाज़े की तरफ़ देखती रही, फिर चुन्नी को गोदी से उठाकर अपनी छाती से चिपका लिया। चुमकारने लगी—"आ-आ-आ...!"

चुन्नी बहलती नहीं। अब तो रोया भी नहीं जाता। हाँफ रही है। बड़ी बहू ने हारकर अपनी छाती खोलकर उसका मुँह लगा दिया। चुन्नी चुप हो गयी। दूध उतरता नहीं। भूख की बावली नन्ही-सी जान माँ का स्तन खींच-खींचकर अपनी खुराक के लिए जान लड़ाये दे रही है। माँ को तकलीफ हो रही है; लेकिन यह तकलीफ इस वक्त बर्दाश्त कर सकती है। बड़े जो पाप करते हैं, उसका ये फल भोग रहे हैं। लेकिन इस बिचारी बच्ची ने ऐसा कौन-सा पाप किया है जो धरती पर आते ही अकाल के दिन देखने पड़े।

"ले पानी।" मंगला ने पानी का गिलास लिये हुए रसोईघर में प्रवेश किया।

बड़ी बहू की विचारधारा टूटी। फीकी हँसी हँसकर गिलास के लिए हाथ बढ़ाते हुए बोली

—“हम लोग तो पानी पी-पीकर जी लेंगे फूल, पर इसका क्या होगा?”

“क्या होगा?” इस प्रश्न का उत्तर दोनों जानती हैं, यही नहीं, बल्कि उन्हें मालूम है, सारा गाँव जानता है, सारा बंगाल जानता है, फिर भी मौत का नाम लेते हुए हर एक की ज़बान लड़खड़ाती है। दिल दहल उठता है।

मंगला चुप हो गयी। गम्भीर हो गयी। भूख को व्रत का बहाना देकर सारा घर आज चार दिन से टाल रहा है। घर में अनाज भरा हो तो चार दिन क्या, आठ दिन भी व्रत रखा जा सकता है, पर यहाँ? कुछ नहीं, आते होंगे चावल लेकर।

“अरे अभी आते होंगे चावल लेकर। तू घबराती क्यों है?” मंगला सांत्वना देती हुई बोली —“भगवान सब ठीक करेंगे। ला, चुन्नी को मुझे दे। खींच-खींचकर जान निकाल लेगी तेरी।”

पास आकर चुन्नी को बड़ी बहू की गोद से लेकर मुस्कुराते हुए चुन्नी की ओर देखकर मंगला बोली—“अरी बस कर। सब दूध तू ही मत पी जा; कुछ अपने होने वाले भाई-बहनों के लिए भी छोड़ दे।”

उसने चुन्नी को अपनी गोद में खींच लिया। खुराक पाने के उस भूखे सहारे को चुन्नी किसी तरह भी छोड़ना नहीं चाहती थी। वह पूरी ताकत से माँ की छाती को अपने मसूड़ों में दबाकर जोंक की तरह चिपकी ही रही। बड़ी बहू का भूखा और कमज़ोर तन इसे बर्दाश्त न कर सका, तिलमिला उठा—“सीः आहः, कमबख्त मर!”

गाली देना चाहती है। तमाम हिन्दुस्तानी माताओं की तरह बड़ी बहू को भी अपने बच्चों को गालियाँ देने की आदत थी। ‘मर जा। भाड़ में जा!’ वगैरह किस्म के आशीर्वाद वह दिन में पचासों बार अपने बच्चों को दिया करती थी। और अगर कोई इस पर कुछ कहता तो जवाब देती—“माँ की गालियों से ही बच्चे अगर मरते तो ये दुनिया आज न दिखायी देती।” मगर आज चुन्नी को मर जाने की गाली देते हुए बड़ी बहू की आत्मा बेसाख्ता चीख उठी। यों बिना बुलाये ही मौत हर घड़ी मेहमान बनने को तैयार रहती है। ज़बान से ‘उफ’ निकालने में साँस के तार टूटते हैं। तब भला ये गाली...!

बड़ी बहू का जी उस गाली को वापस लेने या बेअसर करने के लिए अन्दर ही अन्दर बेताब हो घुटने लगा—“ये बच्चे सलामत रहें। सब आदमी सलामत रहें। मुसीबत तो आती-जाती रहती है। राम करे सबकी मौत मुझे...”

मौत जब दूर थी, गाँव में कभी-कभी किसी के यहाँ आया करती थी, तब उससे इतना डर न लगता था; लेकिन आज मौत सिर पर नाच रही है। इस लड़ाई और अकाल का लाभ उठाकर मौत अपनी भूख को बेतरह से इज़ाफा दे रही है, इसलिए आज बड़ी बहू बच्चों से लेकर अपने तक, किसी के लिए भी, मौत नहीं चाहती। वह मौत से भागना चाहती है, जान चुराना चाहती है।

तभी सदर दरवाज़े पर शिबू की आवाज़ सुनायी पड़ी—“निःशंक होक मोशाई! मैं तुम्हारा लीडर होकर एस.डी.ओ. के यहाँ चलूँगा, आमि गभरमेण्ट के बोलबो, जे शाला तूमि

आमार देश को भूखा मार डालोगे!"

शिबू के साथ और दो-तीन लोग दहलीज पार कर अब दालान में आ चुके थे। शिबू आगे, उसके पीछे सोमेन, पांचू का अनन्य मित्र। वह अक्सर पांचू के साथ घर आता है। बड़ी बहू, मंगला सभी उसे जानते हैं।

शिबू सबको ऊपर कमरे में लिये जा रहा था।

चुन्नी अभी भी रो रही थी। शिबू ने रौब जमाया—"अरे क्यों रो रही है चुन्नी? उसे दूध पिला दो—और...?"

शिबू ने अपने साथियों की तरफ़ देखकर कहा—"तुइ चाय खाबी सोमेन? अच्छा, चार-पाँच प्याला चाय भी बना देना। और थोड़ा-सा नाश्ता भी—हलवा बना लेना। और कुछ नमकीन भी? अच्छा नमकीन भी सही, सुना। हाँ तो वाट आई वाज़ स्पीक...हाँ, गभरमेण्ट..."

शिबू और उसके साथी सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर जा चुके थे। मंगला और बड़ी बहू एक-दूसरे को देखकर मुस्कुराने लगीं। बड़ी बहू बोली—"चाय बनाओ रानी! और हलवा भी बना लेना। भंडारघर खाली हो जाये तो मोनाई के यहाँ से रवा और शक्कर के बोरे खुलवा लेना। कल तुम्हारे ज्याठा राजा तगड़े बनकर सुराज लेने जायेंगे।"

"स्वराज? अरे आई नो, तूमि माँगो स्वराज,—एण्ड दे बोले, जे तुम शाला हिन्दुस्तानी लोक, यू वाण्ट स्वराज? अच्छा शाला, आमि तोमाके जमराज देबौ।" ऊपर शिबू जी लीडराना मूड में चहक रहे थे—"अरे बाबा, आमि जानी, एइ तो गभरमेण्टेर पालिसी। एइ शाला चालीस कोटि भारत मातार शोन्तान खिदे पेये विल डाइ, फेमीन विल एण्ड और तब शाला हू आस्क स्वराज? शे बोलबे आमि ब्रिटिश गभरमेण्ट इण्डिया इज अवर थिंग—आमार वोस्तु!"

शिबू की लीडरी में एक शान है—दस हों, हज़ार हों, दस हज़ार हों, किसी को बोलने नहीं देता। यह काम वह सिर्फ़ अपने ज़िम्मे ही रखता है। लोगों को लीडर की ज़रूरत हो या न हो, मगर शिबू मुखर्जी हर वक्त लीडर हैं। कांग्रेस से लेकर कम्युनिस्ट पार्टी तक और हिन्दू महासभा से लेकर मुस्लिम लीग तक, मनुष्य-मात्र के जन्मजात लीडर शिवगोपाल मुखर्जी अभी-अभी कुछ देर पहले अचानक ही घोषपाड़ा अकाल-निवारिणी महासमिति के दफ़्तर में पहुँच गये थे। सोमेन उनका सहायक मंत्री है। दफ़्तर में कुछ युवक बैठे हुए तय कर रहे थे कि एक डेपुटेशन लेकर एस.डी.ओ. से मिला जाये। शिबू फौरन लीडर बन गया।

एक बार लीडरी संभाल लेने पर शिबू मुखर्जी को फिर कोई टस से मस नहीं कर सकता। सन् '42 के अगस्त-आंदोलन में पहली बार शिबू मुखर्जी को लीडरी का खयाल आया था। पांचू का स्कूल उस वक्त ज़ोरों से चल रहा था। सात गाँवों में पांचू के नाम का फेरा लगता था। पांचू का बड़ा भाई होने के कारण शिबू अपने को स्वाभाविक रूप से बड़े नाम और बड़े काम करने का अधिकारी समझता था। अगस्त-आंदोलन ने स्फूर्ति दी। देश-हित के लिए शिबू

मुखर्जी ने बहुत अच्छा उपाय सोच निकाला।

आंदोलनकारियों पर लाठियाँ और गोलियाँ कौन बरसाता है?—पुलिस। इसलिए अगर पुलिस को रोक दिया जाये तो आंदोलन सफल हो जाये! यह सोचकर शिबू मुखर्जी ने एक फावड़ा लिया और जाकर कोतवाली के सामने की सड़क खोदने लगे, पकड़े गये तो 'इन्कलाब ज़िंदाबाद' का नारा लगाया। फिर पुलिस वालों को अपने प्रचंड रूप का परिचय देकर डराना चाहा—"आमा के ठीक करे बूझो ना तूमि, भावचि। ताइ जन्येइ जान्नाच्चि, जे कलिजुगे आमि चानक्येर अवतार। ब्राह्मोन शोन्तान आमि। एके बारे जॉड़ खोद डालेगा शाला!"

बाद में जब बेंत पड़ने लगे तो दूसरे ही बेंत पर पुलिस अफ़सर के पैर पकड़ लिये। माफी माँगने लगे। छोड़े गये। बात फैल गयी। लोग चिढ़ाते हैं; मगर इससे उनकी लीडरी पर ज़रा भी आँच नहीं आती।

सोमेन आजिज़ आ चुका था। पांचू के कारण सोमेन भी शिबू का अदब करता है। मगर अदब की भी एक हद होती है। शिबू किसी हद को मानता ही नहीं। अकाल-निवारिणी महासमिति के सब सदस्य शिबू के आते ही एक-एक करके चले गये। सोमेन बेचारा फँस गया। पास के गाँव से दो युवक उससे सलाह-मशविरा करने आये थे, उन्हें भी उसके साथ ही साथ परेशान होना पड़ा। जान छुड़ाने के लिए सोमेन ने दफ़्तर बन्द किया तो दादा उसे और उसके साथियों को ज़बर्दस्ती अपने घर ले आये। रास्ते-भर अंग्रेज़ों की पॉलिसी, स्वराज लेने के नुस्खे और एस.डी.ओ. को सुनाने काबिल गालियों की लिस्ट, उसे और उसके साथियों को अकाल-पीड़ितों की सेवा करने का विचार त्याग देने पर मजबूर करती रही। जान छुड़ाने के लिए सोमेन के सारे बहाने और हीले-हवाले खत्म हो गये। ज़बान बन्द हो गयी, मगर (पांचू के शब्दों में) दादा की 'मेड इन इंडिया' अंग्रेज़ी का धाराप्रवाह भाषण बन्द न हुआ।

दादा को अपनी इस 'मेड इन इंडिया' अंग्रेज़ी पर भी नाज़ है। ज़ोर-शोर से बोलते हैं, ज़बर्दस्ती बोलते हैं। और नौजवान कौमी कार्यकर्ताओं के सामने जब कभी मौका पा जाते हैं तब तो खास तौर पर इस स्वदेशी अंग्रेज़ी का प्रचार करने के लिए बोलते ही चले जाते हैं —"शाला यू मेड दि अवर स्लेव, आमि शाला मेड फेलिबो योअर दि लैंगवेज दि स्लेव। एज़-एज़, आमि हार्सेर मुखे लागाम देबो, एण्ड दैन ह्वेन आमि एकटू वेरी विंग फोर्स ए लागाम बिल बी पुलिंग एण्ड तोमार हॉर्से जखन आमि शड़ाक-शड़ाक दुइ हाण्टर मारबो शाला!—योर हॉर्स ड्राउन इन सी एण्ड यू गो इंग्लैंड शाला।"

सोमेन बार-बार अपनी घड़ी देख रहा था। साढ़े पाँच बज रहे थे। सोमेन के साथी परेशान होकर उसकी सूरत देख रहे थे। मगर लीडर किसी बात की परवाह नहीं करता। वह अपनी ही धुन में मस्त है। बाँह पकड़-पकड़कर अपनी बात सुनाता है।

आखिर सोमेन को एक तरकीब सूझी—"दादा, तो कल डेपुटेशन लेकर चलना है न?"

दादा को झटका लगा—"चलना माने की, अरे आई गो..."

ज़बर्दस्ती बात काटकर सोमेन बोला—"मगर हम नहीं चाहते कि हमारा लीडर मामूली ढंग से एस.डी.ओ. के पास जाये।"

"दैट्स राइट। दैट्स राइट..."

सोमेन ने शिबू को इससे आगे बोलने ही न दिया। ज़ोर देकर बोला—"तो बस, मैं जाता हूँ। जुलूस का प्रबन्ध करता हूँ। आज दस गाँवों के आदमी इकट्ठा करके आपका जुलूस निकाला जायेगा। तब असर पड़ेगा।"

"शेइ आमि चाइ..." लीडराना रौब से शिबू ने फिर बोलने की कोशिश की। सोमेन तड़ से उठते हुए बोला—"बस, अब आप अंग्रेज़ी में एक अर्ज़ी लिख डालिए। पांचू को दिखा लीजियेगा। मैं जाता हूँ।"

शिबू की महत्ता को सोमेन की जल्दबाज़ी ने भूल से टोंचा मार दिया—"पांचू क्या देखेगा। ह्वाट ही सी माई इंगलिस? अरे, आई टीच हिम टेन इयर्स।"

सोमेन ने मन ही मन अपने कान पकड़े और फौरन ही बिगड़ी बात बनाने के लिए बोला—"आप मेरा मतलब नहीं समझे दादा! दिखाने से मेरा मतलब यह है कि गाँव के सब आदमियों को वह अर्जी दिखानी तो पड़ेगी ही। पहले पांचू को दिखाकर दस्तखत करा लीजियेगा।"

गम्भीरता के साथ शिबू ने जवाब दिया—"पांचू के दस्तखत पहले नहीं होने चाहिए—एस.डी.ओ. सोचेगा, हेडमास्टर नो प्राइस—दो कौड़ी का। लीडर माने लीडर। रौब पड़ेगा। जनता के लीडरों के दस्तखत पहले चाहिए। तुम बैठ जाओ। मैं लिखता हूँ; तुम दस्तखत करो, एज वन लीडर एण्ड..."

"तब फिर पहले दस्तखत आप ही कीजिए। बल्कि अकेले आप ही बंगाल के लीडर की हैसियत से दस्तखत कीजिए। और हम जाते हैं जुलूस का प्रबन्ध करने। चलिये, आइये।" उसने अपने साथियों से कहा और एक सेकंड भी न रुका।

3

दयाल ज़मींदार के यहाँ पांचू यह आस लगाकर गया था कि सहारे के लिए एक और जुगाड़ लगायेगा, सो उलटे ट्यूशन भी गयी। ज़मींदार अपनी पत्नी और बच्चों को कल पछाँह भेज

रहे हैं। भुखमरों की बढ़ती हुई लूटपाट और हमलों से दयाल भी डरते हैं। डाकू को डाकुओं का डर है। पचास भोजपुरिये लठैत और दो-दो बंदूकें पास रखकर भी सपनों में चौंक-चौंक उठते हैं कि कहीं...!

दयाल वर्ग के प्रति पांचू का निष्क्रिय विद्रोह अपनी असमर्थता पर व्यंग्य बनकर उसके मस्तिष्क में चुभ रहा था। अंतर्चेतन मन में छिपा हुआ यह व्यंग्य पांचू को चिढ़ा रहा था। अपनी इस खीझ को उलट-पुलटकर अनेक पहलुओं से देखते हुए सोचने लगा कि हमारी कमज़ोरी ने ही उन्हें बढ़ावा दिया है। हमारे निष्क्रिय त्याग और सहनशीलता ने ही इनकी स्वार्थी प्रवृत्तियों को हम पर अधिकाधिक अत्याचार करने को उकसाया है। सदियों की आदत ने इन्हें एक झूठा बल दे दिया है। मंदाग्नि रोग से पीड़ित, चर्बी बढ़े हुए फुसफुसे बदन के मसनवी गद्दों के आगे तगड़े से तगड़ा पहलवान भी एड़ियाँ रगड़ने लगता है। बड़े से बड़ा बुद्धिमान भी इन कुंदज़ेहन पैसाखोरों की अक्ल को इनकी तिजोरी की तरह बड़ी बताकर अपने अस्तित्व को साफ़ भुला देने में अपनी रक्षा समझता है। यह सब इसलिए न कि इनके पास पैसा है।

एक दयाल, एक मोनाई, गाँव-भर का अनाज खा जाता है, गाँव-भर के कपड़े पहन लेता है। हमारी खुराक, हमारे तन ढँकने के कपड़े, उनकी तिजोरियों में नोटों के बंडल, सोने, चाँदी और हीरे-जवाहरात के तोड़ों की शक्ल में हिफाज़त से रखे हैं। उनकी हिफाज़त के लिए भोजपुरिये लठैत हैं, बन्दूकें हैं, पुलिस है, कानून है—और हमारी हिफाज़त...?

पांचू की झुकी हुई आँखें मोहनपुर की ओर उठीं। दयाल ज़मींदार की हवेली गाँव-हद के पार थी। पांचू अब मोहनपुर में प्रवेश कर रहा था। झोंपड़ियाँ दिखायी पड़ने लगीं। अब तो इन्हें झोपड़ियाँ कहना भी पाप होगा—मिट्टी की चार टूटी हुई दीवालों के ढूह, जिनके बाँस बिके, छप्पर बिके, चिथड़े-गुदड़े बिके, घर-गृहस्थी लुटी।

दो बच्चों की नंगी लाशें पड़ी हुई थीं रामू की झोंपड़ी के पास। बच्चे शायद रामू के ही हैं। पांचू से रहा न गया। पास जाकर देखा, मौत अभी बच्चों के साथ खेल ही रही थी। घड़ी-पल के मेहमान हैं। रामू की बहू बहुत पहले ही भाग गयी थी और रामू लुटेरों में मिल गया था। घर-बार, माँ-बाप, सब साथ छोड़ गये, बस ये थकी-थकी साँसें, एक-एक कर पल-दिन गिनतीं, किसी तरह अपना फर्ज़ पूरा होने तक साथ दिये जा रही हैं।

पांचू मौत को बहुत नज़दीक से देख रहा था। बहुत गौर से देख रहा था। इस अकाल में यही हालत एक दिन उसकी और उसके घरवालों की...। लेकिन अभी तो उसके पास चावल हैं। घरवाले उसकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे—दीनू, परेश, नन्ही-सी चुन्नी, कनक...

पांचू फौरन ही वहाँ से हट गया और तेज़ी से अपने घर की तरफ़ चलने लगा।

यह फजलू काका अपनी झोपड़ी से टीन निकाल रहे हैं, बेचने के लिए। और यह पेड़ के नीचे बूढ़ी खेत्रमनि, कमर में एक लंगोटी लगाये दोनों हाथों से मिट्टी की एक हंडिया थामे, सिर झुकाये खोयी हुई-सी बैठी है। कभी गाँव-भर की परिक्रमा किया करती थी। पांचू ने

इसका नाम नारदजी रख छोड़ा था। ब्राह्मणों के टीले से यह मछुओं की बस्ती की ओर कैसे चली आयी? यह भी एक दिन यों ही बैठे-बैठे मर जायेगी। रामू के बच्चे तो शायद अब तक मर गये होंगे। उन्हें कौन उठायेगा? यों ही लाशें सड़ती रहेंगी? क्या आदमियों की लाशें यों ही सड़ती रहेंगी? क्या एक दिन उसकी भी लाश इसी तरह...?

पांचू ठिठका। उसकी तबियत हुई कि लौटकर बच्चों को देख आये। लेकिन उसे घर जाना है। दीनू-परेश, चुन्नी-कनक, सब भूखे होंगे।

रामू के बच्चों की लावारिस लाशों से लेकर अपनी कल्पना तक, सारी विचार-धारा से हठपूर्वक मन मोड़कर वह आगे बढ़ा। कदम तेज़ी से आगे बढ़ रहे थे।

यह बेनी की झोंपड़ी है। बेनी वो बैठा है। अपने घुटनों पर सिर झुकाये उसकी पत्नी बैठी है। दो महीने पहले ही उसका ब्याह हुआ था। नयी जवानी, नयी उमंगें और यह अकाल। बंसी बजाने में बेनी अपना सानी नहीं रखता था। पांचू ने देखा, दोनों की जवानी बूढ़ी हो गयी है। पास-पास बैठे रहने पर भी न औरत को मर्द का होश है, न मर्द को औरत का। पांचू सोचने लगा, अकाल-पीड़ित नव दम्पती का यह मधुचन्द्र...उसे मंगला की याद आयी—वे सपनों-भरी आँखें, उसका अल्हड़पन उसकी मुस्कुराहट...

चार दिन से वह भी भूखी है। पांचू के कदम और तेज़ पड़ने लगे।

आँखों के सामने, थोड़ी ही दूर मोनाई की दुकान थी। माँस की पतली-पतली झिल्लियों में चमकती हुई खुदा की खुदाई डगमगाते हुए कदमों से इधर-उधर डोल रही थी। गड्ढों में धँसी हुई डगर-डगर आँखें घूर-घूरकर, अन्न के एक दाने की तलाश में मोनाई की दुकान के आस-पास मँडरा रही थीं। कितने ही नर-कंकाल झुके हुए, ज़मीन में चावल की सिर्फ़ एक कनी को खोज रहे थे। बेतरतीबी के साथ उनकी दाढ़ियाँ बढ़ी हुई थीं। औरतों के बाल अस्त-व्यस्त, तमाम जिस्म की नसें और हड्डियाँ चमक रही थीं। बच्चे इन्सान के बच्चे नहीं मालूम पड़ते—ये समूची बस्ती ही इन्सान की बस्ती नहीं मालूम पड़ती।

झुटपुटी साँझ धीरे-धीरे घिर रही थी। उसके मद्धिम उजाले में ये हिलते-डोलते प्राणी...

पांचू सोचने लगा, "रईसों और अफ़सरों की दुनिया में क्या इन इन्सानों को कोई इन्सान मानेगा? वे इन्हें भूत कहेंगे, भूत। हालाँकि वे खुद मुर्दा इन्सानियत के भूत बनकर हमारे सिरों पर सवार हैं। हमारी भूख की नींव पर उन्होंने अपनी सोने की हवेलियाँ बनवाई हैं। आदमखोर, हैवान!..."

शहर के राजनीतिक वातावरण में पनपा हुआ पांचू का दिमाग इस समय शौकिया तौर पर जोश खा रहा था। उसके पास इस समय पाँच सेर चावल हैं। वह आज खाना खायेगा। चावल पाने के पहले वह भी भुखमरों में से एक था। वह भी भूख की तकलीफ को उसी तरह महसूस कर रहा था जैसे कि ये चलते-फिरते नर-कंकाल। लेकिन यह सन्तोष कि उसे और उसके परिवार को आज भोजन मिलेगा, उसे तमाम भुखमरों से अलग किये दे रहा है। इसके साथ ही साथ वह यह भी जानता है कि उसका यह सन्तोष अस्थायी है। उसका मन इसलिए

इन भुखमरे साथियों का साथ छोड़ने से इनकार करता है। परसों से उसके परिवार का भविष्य भी इन्हीं की तरह कठोर हो जायेगा। लेकिन इस वक्त तो वह खुश है। फिर भी, अपने साथ ईमानदारी बरतते हुए, वह अपने आनन्द को अस्थायी बना देनेवाले दयाल और दयाल-वर्ग के लोगों पर बौद्धिक बड़प्पन के साथ झुंझला रहा है। खाने के मामले में आज वह दयाल और मोनाई के बराबर का ही दर्जा रखता है। फिर क्यों न वह उन पर झुंझलाये, और क्यों न ले अपने भविष्य के साथियों का पक्ष?

सहसा पांचू का ध्यान टूटा। मोनाई की दुकान के सामने पाँच-छह जीवित कंकाल एक को घेरे हुए छीना-झपटी और हाथापाई कर रहे थे। उनकी अस्पष्ट और भयावह आवाज़ों के सामूहिक स्वर साँझ की बढ़ती हुई अँधियारी को मनहूसियत का गहरा रंग दे रहे थे। फिर पांचू ने देखा, उस घिरे हुए आदमी की चीख इस मनहूस शोर में एक दर्द पैदा करती हुई अचानक घुट-सी गयी और वह घिरा हुआ आदमी गिर पड़ा।

पांचू दौड़कर पास पहुँचा। उसने देखा मुनीर बढ़ई था। साँस नहीं चल रही थी। मर गया। हार्ट फेल हो गया शायद। मुनीर की लाश के आस-पास चावल बिखरा था, जिसे बटोरने के लिए लोग गिद्धों की तरह टूट पड़े थे। उन्हें इस बात का कोई खयाल न था कि उनके पास ही एक आदमी की—उनके ही एक साथी की—लाश पड़ी हुई है। वे इस समय पूरे उत्साह के साथ ज़्यादा चावल बटोर लेने के प्रयत्न में थे। एक बार लाश को, फिर एक बार पांचू को, कुछ खोयी हुई दृष्टि से देखकर वे अपने काम में लग गये। उनके हाथ छीना-झपटी करने लगे।

पांचू चिल्लाया—"मार डाला न तुम लोगों ने इस बेचारे को।"

पांचू की आवाज़ सुन जीवित कंकालों के चेहरे उठे। उनके चेहरे पर चिढ़ का भाव था। वे सूखी हुई झुर्रियाँ, वे धँसी हुई आँखें गोया प्रश्न कर रही थीं—"क्या बकता है? हम अपना काम कर रहे हैं।"

दो-एक निगाहें पांचू के हाथ की पोटली पर भी गयीं। पांचू सकपकाया। वह उठ खड़ा हुआ। उसने एक बार मुनीर की लाश की तरफ़ देखा। मुनीर ने उसके स्कूल की बिल्डिंग में लकड़ी का बहुत-सा काम किया था। बड़ा भला आदमी था बेचारा।

लेकिन मन कहता था कि उसके चावल के लिए भी छीना-झपटी न करें। उसे चिन्ता नहीं थी कि उसका चावल ये लोग छीन सकेंगे, 'बल्कि इस छीना-झपटी में उसके धक्के से अगर एकाध और मर गया तो...?'

एक लाश और बढ़ जायेगी। लाशें—मुनीर की लाश, रामू के लावारिस बच्चों की लाशें, और एक दिन खुद भी...

नहीं-नहीं, वह इसे दफनाने का प्रबन्ध करेगा। इन्सानियत का तकाज़ा है। और फिर मुनीर ने उसके साथ स्कूल में काम किया था।

बढ़ई नूरुद्दीन आज चार दिनों से दोनों जून पेट पर हाथ फेरकर डकार ले रहा है। अज़ीम के घर मेहमान है। साँझ होते ही बड़े सुरीले गले से गाता है—

जीवनेर आज फूल फूटे छे,
आशबे बोले शाँझ बेलाय...

बेफिक्री से गूँजता हुआ स्वर पड़ोस के भूखे घरों की दीवालों से टकराकर लोगों के दिलों में टीसें उठाता है। नूरुद्दीन के घर में कोई नहीं। बाप बहुत पहले ही मर चुका था। एक बहन थी, जिसकी शादी हो चुकी थी। माँ थी तो पिछले हफ़्ते एक रोज़ सात दिन की भूख का गुस्सा नूरुद्दीन ने उसके गले पर उतार दिया। गला घुटे ही भूखी लागर बुढ़िया की रूह तड़पकर अर्शे मोअल्ला को छेदती हुई खुदावन्द करीम से फरियाद करने पहुँच गयी। माँ के मरते ही गुस्से की लगाम काबू में आयी, लेकिन भूख में साझीदार के लिए नफ़रत इतनी थी कि गुनाह को गुनाह न समझ। भूख से मर गयी, इस तरह मन को समझाकर, अज़ीम की मदद से, उसे दफनाने का इन्तज़ाम किया। उस दिन अज़ीम ने उसे अपने घर खाना भी खिलाया।

अज़ीम मोनाई का दाहिना हाथ है। बचपन से ही उसकी दुकान पर नौकर है। अकाल कभी उसके घर झाँकने की हिम्मत भी नहीं कर सकता। नूरुद्दीन ठहरा उसका लंगोटिया यार, एक जान दो कालिब। मुसीबत में दोस्ती का हक अदा करना इन्सान का फर्ज़ है। अलावा इसके नूरुद्दीन बड़े काम का आदमी है। अज़ीम समझता है, जैसे रोज़गार-बैपार में वह दूर की कौड़ी ले आता है, वैसे ही नूरुद्दीन भी कहो तो राजा इन्दर के घर से परी निकालकर ले आये। अज़ीम को जब से मोनाई का विश्वासपात्र और प्रधानमंत्री का पद मिला है, वह अपने को (मोनाई के बाद) गाँव के बड़े-बड़े आदमियों में समझने लगा है।

नूरुद्दीन की दोस्ती से अज़ीम को भी कभी-कभी शेर के शिकार में सियार की जूठन मिल जाया करती है। इसीलिए उससे दबता है। नूरुद्दीन के साथ रहते-रहते बहुत दिन पहले एक बार खुद उसने भी मुनीर की बीवी के साथ छेड़छाड़ करने की हिम्मत की थी, पर मुँह की खायी। तब से उस औरत पर उसके दाँत हैं। पर जूठन चाटने की तबियत अब नहीं होती। इसीलिए नूरुद्दीन से उसने मुनीर की बीवी के लिए फरियाद न की।

औरतों के सामने ही नूरुद्दीन मज़ाक-मज़ाक में उसका पानी उतार लिया करता था। इस बार वह पकड़ में आया है। एहसान का फर्ज़ पाटने का अच्छा मौका लगा है। अज़ीम ने मोनाई के यहाँ उसका घर और चार बीघे ज़मीन बिकवाकर पच्चीस रुपये उसे दिला दिये, अपने घर लाकर उसे रखा, दोनों वक्त भरपेट खाना भी उसे खिलाया। इसके एवज़ में अज़ीम ने नूरुद्दीन से मुनीर की बीवी तलब की। साथ ही उसकी यह शर्त भी कि इस बार शेर वह खुद बनेगा और सियार नूरुद्दीन। यह शर्त नूरुद्दीन के लिए सख्त थी, मगर अज़ीम से उसे चावल मिलते थे। अलावा इसके वे पच्चीस रुपये भी अभी अज़ीम ही के पास थे।

नूरुद्दीन के चक्कर मुनीर के घर की तरफ़ लगने लगे।

सात दिन से मुनीर के यहाँ किसी के मुँह में अन्न का एक दाना भी न पहुँचा था। दो छोटी-छोटी लड़कियाँ, चाँद और रुकिया, अन्न बिना मुर्दे-सी पड़ी रहती थीं। मुनीर भूख के साथ-साथ मलेरिया से भी लड़ रहा था। लेकिन मुनीर की बीवी को आज भी पाँचों वक्त की नमाज़ का सहारा था।

नूरुद्दीन हमदर्दी दिखाने आया। पर मुनीर की बीवी उसकी परख में खरी उतरी।

नूरुद्दीन ने दाँव पलटा। मुनीर की बीवी के खुदा में साझा लगाया। इलहाम के चर्चे होने लगे।

मीरगंज की मस्जिद मोहनपुर और मीरगंज की हद पर थी। पीढ़ियों से 'भूतों की मस्जिद' के नाम से मशहूर थी। नूरुद्दीन ने बताया—"यहाँ एक भूत सवाब करता है। पिछले हफ़्ते मैं इधर से आ रहा था। छः रोज़ से फाके हो रहे थे। शाम को नमाज़ का बखत। फिर सोचा, भूतों के डर से खुदा बहुत बड़ा है। जी कड़ा करके वहीं नमाज़ पढ़ी। नमाज़ पढ़कर मस्जिद के बाहर आया, तो देखा कि जीने पर एक केले के पत्ते पर भात और भुनी हुई मछलियाँ रखी हैं। मैं चकराया। मुँह में पानी भर आया मगर भूतों का डर था। तभी कहीं से आवाज़ आयी—"ऐ खुदा के बन्दे, ये तेरे ही वास्ते हैं। ढाई सौ वर्ष के बाद तू ही एक ऐसा इन्सान मिला, जिसने खुदा के खौफ को हमसे बड़ा माना। आज की दुनिया में अज़ाब बढ़ गया है। दुनिया, खुदा को भुला बैठी है। मगर जो खुदा को नहीं भुलाता उसको खुदा प्यार करता है। ले, खा ले और रोज़ आकर यहाँ नमाज़ पढ़। तुझे कोई खौफ नहीं। मैं भूतों का सरदार हूँ। खुदा के हुक्म से खुदा के बन्दों का इम्तिहान लेता हूँ। तुझे यहाँ रोज़ खाना मिलेगा। खुदा के बन्दे कभी भूखे नहीं रह सकते।"

नूरुद्दीन एक दिन शाम को यह करिश्मा दिखाने के लिए मुनीर की बीवी को ले गया। नमाज़ के बाद मस्जिद के जीने पर दो आदमियों के लिए खाना परोसा हुआ मिला।

उस दिन, पूरे सात दिनों के बाद, मुनीर की बीवी ने भरपेट खाना खाया था।

बच्चियों का खयाल आता था, बीमार और भूखे मुनीर का खयाल आता था, मगर नूरुद्दीन ने साफ़ जता दिया था कि खुदा की मर्ज़ी के खिलाफ़ अपना हक अपने प्यारे से प्यारे को भी तुम देने के हकदार नहीं।

अपनी भूखी बेटियों और बीमार पति के सामने खुदा के घर से खाना खाकर लौटने पर मुनीर की बीवी की आँखें न उठती थीं। जी बेहद कलपता था, मगर शाम होते ही नमाज़ के बाद परोसी हुई पत्तल का खयाल आता, जिसमें खुदा के हुक्म से उसके सिवा और किसी का हक ही नहीं।

खुदा के खौफ ने मुनीर की बीवी को झूठ बोलना सिखाया। आत्मा सोने लगी, स्वार्थ जगने लगा।

मुनीर की बीवी रोज़ नमाज़ पढ़ने जाने लगी।

नूरुद्दीन थाली परोस चुका था। अज़ीम आज खाने पहुँचेगा। चालाक नूरुद्दीन जानता था, वह हर तरह से अज़ीम के हाथ में है। उसने मुनीर की बीवी को अपना हथियार बनाया। पहले अपने पच्चीस रुपये वसूल किये और सोचा कि शहर जाकर मिलिटरी में बढ़ई का काम ढूँढेगा। उसके लिए औज़ार चाहिए। अपने औजार, घर की तमाम चीज़ों के साथ बेचकर, पहले ही वह अपना और अपनी माँ का पेट, जब तक चला, भरता रहा। उसने सोचा, भूखे मुनीर से औज़ार खरीदे जा सकते हैं।

नूरुद्दीन मुनीर के घर आया। उसकी बीवी से बोला—"अपना हक भी आज से तुम्हें देता हूँ। मैं शहर जाऊँगा। मेरा हक खुदा की मर्ज़ी से तुम्हारी बच्चियों और तुम्हारे शौहर को मिलेगा।"

मुनीर की बीवी खुशी-खुशी नमाज़ पढ़ने गयी।

यह पहला मौका था जब नूरुद्दीन नहीं गया और अज़ीम को शेर बनने का मौका मिला। आज अज़ीम खुद खाना लेकर मस्जिद पहुँचने वाला था। अपने पच्चीस रुपये वसूल करने के बाद नूरुद्दीन ने उसे सब कुछ समझा दिया—"भूखी बच्चियों और शौहर से चुराकर अकेले खाने की आदत डलवाकर मैंने उसका ज़मीर चूर-चूर कर दिया है। अब सच्चाई और पाकदिली की वह अकड़ उसमें नहीं रही है। थाली दिखाकर सामने से घसीट लेना। वह तुम्हारे पीछे-पीछे चली आयेगी। सब्ज़ बाग दिखाना, सब्ज़ बाग।"

मुनीर की बीवी नमाज़ पढ़ने गयी, इधर नूरुद्दीन ने अपना जाल फैलाया। भूख हाथ काटने के लिए तैयार हो गयी। मुनीर ने सिर्फ़ एक अठन्नी के लिए सारे औज़ार बेच दिये। अठन्नी पाकर बारह रोज़ के भूखे और बीमार मुनीर के डगमगाते हुए कमज़ोर पैर जल्द से जल्द मोनाई की दुकान पर पहुँच जाने के लिए उतावले हो उठे थे।

मुनीर की लाश को उठाकर ले चलने के लिए पांचू ने अपनी ही तरह के सहृदय और मृत्यु-भीरू को 'मज़बूत' मरभूखों को राज़ी कर लिया। चावल की गठरी अपने गले में बाँधकर पीठ की तरफ़ कर ली। चलने में पाँच सेर चावलों की गठरी इधर-उधर हिलती, और उसका गला घुटने लगता। हाथों पर एक आदमी की लाश का बोझ और मन भारी; बड़ी मुश्किल से रास्ता तय हुआ। चाँद और रुकिया बाप की लाश को देखकर बेहाल हो गयीं। भूख की कमज़ोरी और बाप की मौत का गम नन्ही-सी रुकिया की बर्दाश्त से बाहर हो गया। वह बेहोश हो गयी। चाँद दस बरस की थी, रुकिया से ज़्यादा समझदार, बाहोश और इसलिए ज़्यादा तकलीफ में।

माँ घर पर नहीं है, बाप की लाश घर पर आयी है और छोटी बहन बेहोश पड़ी है, वह क्या करे? बिलख-बिलखकर रो रही है, दम घुटने लगता है, एक दुःख में हज़ार दुःख याद आ

रहे हैं। अब्बा गये थे चावल लाने और खाली हाथों, यों आ गये। हाय अब्बा!

अब्बा की याद में भूख की तड़प थी, जो उस वक्त अब्बा की तरह ही अज़ीज़—अब्बा से भी ज़्यादा अज़ीज़ थी।

भूतों की मस्जिद के पास, झाड़ी की आड़ में, मुनीर की बीवी खाना खा रही थी और अज़ीम उसके पास ही बैठा उसके बदन पर हाथ फेर रहा था। अज़ीम की आँखों में वहशत थी, उतावलापन था। ज़ब्त की शिद्दत से बीच-बीच में होंठ काटने लगता था। उसकी आँखें चढ़ जाती थीं। मुनीर की बीवी के बदन पर उसके हाथों का दबाव सख्त होता जाता था और मुनीर की बीवी? वह खाना खा रही थी, और उसी में अपने को खोये रखना चाहती थी।

नूरुद्दीन मुनीर के मरने की खबर सुनकर उसके घर आ पहुँचा। बगुला-भगती मुहब्बत बगैर आँसुओं के उसे ज़ोर-ज़ोर से रुला रही थी। दिमाग में पेच पड़ रहे थे—"औरत खाली हुई है। शहर ले चलें। इस तरह से अपने काम आयेगी। दो लड़कियों की माँ हो जाने पर भी अभी ढली नहीं है। काठी अच्छी है इसकी। चार दिन और अच्छी तरह से इसकी खिलाई-पिलाई करूँगा, निखर उठेगी।"

मुनीर की लाश उठाकर लाने वाले तीनों आदमियों में से किसी में इतनी ताकत नहीं थी कि लाश को कब्रिस्तान तक ले जा सके। घर के पिछवाड़े ज़रा दूर पर एक ऊसर खेत था। नूरुद्दीन कहीं से फावड़ा ले आया। किसी तरह ज़मीन खोद रहा था। साथ ही साथ उसका दिमाग भी चल रहा था—"लौटकर आये तो दाँव फेंकूँ। कहीं भड़की हुई न आये! फुसलाना चाहिए। दो रुपये दूँ। मुसीबत में हमदर्दी! मगर रुपये तो शायद अज़ीम भी दे। यों तो घाघ है, मगर औरतों के मामले में साले की अकल घास चरने चली जाती है। और फिर इस पर तो महीनों से तबियत आयी थी। इसे तो ज़रूर ही रुपये देगा वह। तब फिर? लौंडियों को हथियार बनाना चाहिए। माँ का दिल लूटने के लिए सबसे अच्छा यही तरीका होता है। करें क्या?...खिलाओ सुसरियों को। बस, यही ठीक है। मास्टर बाबू की गठरी में अनाज मालूम पड़ता है। इसे ही उड़ाना चाहिए। मगर टटोल तो लिया जाये। देखें, अनाज है या और कुछ।"

नूरुद्दीन ने फावड़ा रख दिया। हाँफने लगा, जैसे थककर चूर-चूर हो गया हो। दूसरा आदमी उठा। आप पांचू के पास बैठ गया। बातों-बातों में बहाने से गठरी पर हाथ रखकर टटोल देखा, चावल है। सोचा—"उड़ाना चाहिए। ऐसे तो हाथ नहीं आयेगा। तिकड़म करें। लड़कियों को उकसा दें। पढ़े-लिखे तो बेवकूफ़ होते ही हैं। रहम-दया बहुत रहती है इनमें। और जिसमें मास्टर बाबू तो बस मोम का दिल रखते हैं। चाँद और रुकिया को उकसा दें कि मास्टर बाबू चलने लगें तो पैरों से लिपट जायें, खाना माँगें। बस, फिर गठरी मैं ही धरवा लूँगा। मगर समझो कि न पसीजें तो? यकीन तो नहीं होता। अगर ऐसे ही पत्थर-से बन गये होते तो यों लाश लेकर न आते। नहीं, दाँव खाली न जायेगा। अल्लाह ने चाहा तो कौड़ी चित ही पड़ेगी। और जब वह आयेगी तो ताज़े गम में यह तसल्ली बड़ा काम देगी। बस, फिर काबू में आयेगी। मगर ये लड़कियाँ? इन्हें साथ ले जाना तो बेवकूफ़ी होगी। लेकिन इन्हें उससे अलग

कैसे किया जायेगा? खैर, यह फिर सोच लेंगे। अभी तो मास्टर की गठरी...”

नूरुद्दीन ने झट से एक लम्बी आह छोड़ी। पांचू की तरफ़ देखकर बोला—“इसकी बीवी बेचारी मस्जिद में नमाज़ पढ़ने गयी है। घर लौटकर देखेगी तो...(गला भर आया। आँसू पोंछने के बहाने कमीज़ के पल्ले में मुँह छिपाकर दो-एक सुबकियाँ भी ले डालीं)...क्या बताऊँ, मास्टर बाबू—खुदा जाने क्या-क्या दिखाने वाला है आगे। अभी थोड़ी देर पहले तो मैं मुनीर को दो रुपये देकर गया था। आप लोग तो राजा आदमी हैं। मेरी तो कोई औकात ही नहीं पर अपनी-सी हालत सबकी जानता हूँ। दस रोज़ खाने को न मिला। माँ बिचारी मर गयी। घर-ज़मीन बेचकर रुपये लाया था, सो उसमें से पहले इसे दो रुपये निकालकर दे दिये। पर किस्मत! बेचारा अपनी जान से गया। हाय! आज बारह दिन से फाके हो रहे हैं इसके यहाँ। जब से रुपये लेकर मोनाई की दुकान की तरफ़ गया था, लड़कियाँ बेचारी आस लगाये बैठी थीं कि अब अब्बा चावल ले के आते होंगे। (गला फिर भरने लगा) बेचारियों को यह मालूम नहीं था कि अब्बा अब साँसें भी साथ लेकर न लौटेंगे। हाय!” (फिर सुबकियाँ और रोना।)

पांचू स्तब्ध। अपने जीवन में मुनीर की इस घटना का समावेश कर वह देख रहा था। जिस तरह बर्फ़ का टुकड़ा देर तक हाथ में रखा रहे तो वह हाथ सुन्न पड़ जाता है, उसी तरह मृत्यु का भय पांचू के हृदय पर इस समय तक पूरी तरह से छाकर उसे स्तब्ध कर चुका था। मुनीर की लाश के स्थान पर वह अपनी लाश देख रहा था। नूरुद्दीन की एक-एक बात उसके मन की ऊपरी सतह को छूती हुई, उसे इस तरह लग रही थी जैसे उसके मर जाने के बाद उसकी तथा उसके परिवार की कहानी, नूरुद्दीन किसी दूसरे को सुना रहा हो।

पांचू मुनीर की लाश की तरफ़ देखता रहा। उसमें वह अपनी लाश देख रहा था। गड्ढा खुद गया। बगैर कफन के लाश दफना दी गयी। मिट्टी पड़ रही है। मुनीर की लाश पर मिट्टी पड़ रही है। पांचू खड़ा देख रहा है। लाश है। ढँक रही है। मिट्टी का बोझ लाश पर पड़ता जाता है। लाश अब दिखायी नहीं देती। गड्ढा भर रहा है। मुनीर की लड़कियों के रोने की आवाज़ उसके कानों को सुनायी दे रही है। नूरुद्दीन का ज़ोर-ज़ोर से आहें भरना भी वह सुन रहा है।

गड्ढा भर गया। लोग फावड़े और पैरों से मिट्टी दबा रहे हैं।

मुनीर इस संसार से चला गया। मुनीर अब संसार में दिखायी नहीं देगा। मुनीर ने उसके स्कूल की बेंचें बनायी थीं, ब्लैक बोर्ड बनाया था। मुनीर हँसता था, बोलता था, चलता-फिरता था, काम करता था। थोड़ी देर पहले तक उसका शुमार ‘है’ में किया जाता था, अब ‘था’ में किया जायेगा। एक कहानी बन गया। कालिदास था, शेक्सपियर था, अकबर, सीज़र, चन्द्रगुप्त था। मुहम्मद था, ईसा था, बुद्ध था, राम, कृष्ण—मुनीर था, पांचू था। यह अकाल इस देश को कहानी ही बनाकर छोड़ेगा। लोग कहेंगे, एक सूबा था, जिसका नाम बंगाल था।

...

अपनी बुद्धि पर पांचू मन ही मन सदा से अभिमान करता आया है, पर इस समय उसे अपनी महामूढ़ता पर तनिक भी अविश्वास न था। वह खुद अपने से चिढ़ा हुआ था।

मुनीर की पितृहीना लड़कियों का करुण विलाप सुनकर अपनी असमर्थता पर मन ही मन आँसू बहाकर उसने सन्तोष कर लिया था। नूरुद्दीन तथा तीन-चार अन्य लोगों से अपनी उदार प्रकृति, दरियादिली और दान के मोहक बखान सुनकर भी उसे अपने भूखे परिवार का ध्यान रहा था। जिस समय नूरुद्दीन कह रहा था—"आप राजा आदमी हैं, मास्टर बाबू! दो मुट्ठी इसमें से निकालकर दे देंगे, तो आपको ज़रा भी न अखरेगा और इन बेचारियों का गम गलत हो जायेगा!" उस समय तक पांचू का स्वार्थ उसे इतना कस चुका था कि उसे अपनी गठरी में से एक दाना देना भी असम्भव-सा प्रतीत होता था।

लोगों ने जब यह कहा कि तुम्हारे यहाँ तो मनों अनाज होगा; तुम गाँव में इतने बड़े आदमी हो; तुम यह हो और तुम वह हो, उस समय पांचू मन ही मन (संस्कारवश) यह सोचकर प्रसन्न हो रहा था कि गाँववाले उसे बहुत अमीर आदमी समझते हैं।

वह प्रसन्नता पांचू की सहृदयता का पोषण कर रही थी। वह अपने मुँह से यह नहीं कह सकता था कि वह भी अपने पूरे परिवार के साथ-साथ चार दिन से भूखा है; और बड़ी मुश्किलों से उसे यह पाँच सेर चावल मिले हैं। उसे बड़ा आदमी समझने वाले गाँव के लोग अगर उसकी असलियत जान जायेंगे तो आबरू चली जायेगी। पर उसने सोचा, चावल न देने से भी तो बदनामी होगी। होने दो। ये लोग ज़्यादा से ज़्यादा यही तो कहेंगे कि दयाल और मोनाई की तरह मास्टर बाबू भी कठोर हैं। इस हालत में भी उसका दर्जा दयाल और मोनाई के बराबर ही रहेगा।

तभी नूरुद्दीन की एक बात ने सहसा उसकी बुद्धि को झटक दिया—"मुर्दे से छुआ हुआ अनाज ब्राह्मन होके घर कैसे ले जाओगे मास्टर बाबू, और वह भी मुसलमान का मुर्दा! तुम्हारे तो किसी काम का नहीं रहा। इन लड़कियों का पेट भर जायेगा।"

तर्क अकाट्य था। पांचू जैसा प्रतिष्ठित कुल का ब्राह्मण मुसलमान मुर्दे के स्पर्श से अपवित्र चावल चार लोगों की जानकारी में कैसे ले जा सकता है। धर्म और जाति जायेगी, आबरू जायेगी।

पांचू के मन का विद्रोह स्वयं उसे ही खाये जा रहा था। उसने चावल दिया ही क्यों? उसे शर्म क्यों आयी? क्या यह शर्म, यह आबरू और धर्म का यह भय, उसे और उसके परिवार को इस अकाल की मौत से बचा लेंगे।

पांचू खाली हाथों घर की तरफ़ जा रहा था। अँधेरा हो चुका था। कहीं-कहीं एकाध घर में दीये की टिमटिमाती हुई रोशनी झलक जाती थी। इन घरों में आबरू अभी भी पूरी तरह

सुरक्षित थी। पांचू ने अपने घर में भी रोशनी देखी। उसके विचार ठिठके, पैर ठिठके। वह खाली हाथों घर जायेगा। सब लोग आस लगाये बैठे होंगे। कनक बेजान-सी पड़ी होगी। दीनू-परेश भूख के मारे बिलख रहे होंगे। सारा घर भूख से व्याकुल होगा।

पांचू की कल्पना प्रखर होने लगी, वह खाली हाथों घर पहुँचेगा। सारा घर एक बार तो उसका स्वागत करेगा, पर दूसरे ही क्षण...?

पांचू लौट पड़ा। घर जाने की हिम्मत नहीं हो रही थी। वह अपने आत्मीयों को भूख से तड़पते हुए नहीं देख सकता; और जबकि वह स्वयं उनके इस दुःख का कारण हो। उसकी मूर्खता के कारण ही उसके सारे परिवार को तड़पकर मरना होगा।

पीड़ा और क्रोध से उसके पैरों की निरुद्देश्य गति और भी अधिक शिथिल हो गयी। पाँच सेर चावलों की गठरी लेकर आते वक्त उसमें उत्साह था। पाँच सेर चावलों की गठरी के वजन ने मुनीर की लाश को उसके घर तक पहुँचाने के लिए उसे जो शक्ति प्रदान की थी, वह इस समय छिन चुकी थी। चार दिन की भूख, निराशा और कमज़ोरी के साथ ही साथ लाश उठाने और ले जाने की थकान उसे इस समय तक अत्यधिक अशक्त कर चुकी थी। और उसके ऊपर से ताज़ी चोट, यह आत्मग्लानि और निराशा...उसे चक्कर आ गया, उसके पैर लड़खड़ाये—बड़ी मुश्किल से उसने अपने को गिरने से बचाया।

पांचू के आस-पास, कुछ दूर पर उसी की तरह जीवित कंकाल डोल रहे थे। उसे उनसे घृणा हो गयी। उसे अपने से घृणा हो गयी। उसे तमाम अकाल-पीड़ितों से घृणा हो गयी। उसे मरे हुए मुनीर से भी घृणा हो गयी। कम्बख्त को उसके ही रास्ते में आकर मरना था! और अगर मरना ही था तो किसी दूसरे वक्त न मरा—जब वह चावल लेकर आ रहा था, तभी साले को मौत आयी!

पांचू को मुनीर की लड़की पर क्रोध आ रहा था, नूरुद्दीन पर क्रोध आ रहा था, उन शास्त्रकारों पर क्रोध आ रहा था जिन्होंने शव को छूने से उसकी पाँच सेर चावलों की गठरी के अपवित्र हो जाने का विधान बनाया। उसे अपने ब्राह्मण और आबरूदार होने पर क्रोध आ रहा था। नपुंसक क्रोध के कारण पांचू की आँखों से आँसू बहने लगे। पर इस बार उसे अपने आँसुओं पर क्रोध न आया। उसे इस समय रोने में ही शान्ति मिल रही थी।

आँसू ज़ोर पकड़ते गये। अपनी हीन और असहाय अवस्था के ध्यान से रह-रहकर पांचू के अहं को चोट लगती। रह-रहकर पीड़ा के दौरे-से उठते, जिससे उसका मानव तूफानी समुद्र की तरह उमड़ने लगता। आँसू हुमड़-हुमड़कर आँखों से बहने लगे।

पांचू फूट-फूटकर रो रहा था। सुबकियाँ साँस खींच-खींचकर उठने लगीं।

पांचू के पैरों में दम न था। वह वहीं, खेतों के पास ही ज़मीन पर धम्म से बैठ गया। मन में राम-राम की रटन थी। निःसहाय अवस्था में वह 'निर्बल के बल राम' से सहारे की प्रार्थना कर रहा था। अज्ञात शक्ति के नाम का सहारा पांचू को धैर्य धारण करने में सहायता देने लगा। आँसू रुके, सुबकियाँ खत्म हुईं, आँखें खुश्क हुईं, दो-एक सर्द आहें दिल से निकलीं।

मगर फिर चिन्ता—"आखिर इस तरह से बाहर भी कब तक रहा जा सकता है। मुनीर के यहाँ चावल दे आने की बात भी शायद घर में सबको मालूम हो चुकी होगी। मैं अब तक नहीं पहुँचा, इससे और भी चिन्ता होती होगी। लेकिन खाली हाथों—घर में अँधेरा और मस्जिद में दीया बालकर..."

तभी, अचानक ही उसे खयाल आया, स्कूल का कुछ फर्नीचर मोनाई के हाथ बेचकर वह उससे चावल खरीद सकता है।

विचार ने उसे एकदम स्फूर्ति दी। नया उत्साह आया, नया बल आया। पांचू एकदम से उठ खड़ा हुआ। मोनाई के घर की तरफ़ चला।

रास्ते में वह सोच रहा था, स्कूल की चीज़ें बेच देने का उसे हक ही क्या है? वह उसकी निजी सम्पत्ति तो है नहीं। लेकिन कौन पूछता है? और फिर उससे? अगर वह चाहे तो सारा स्कूल ही उठा के बेच दे। उसने ही तो इस स्कूल को बनाया है। इसकी एक-एक ईंट में उसके जीवन का त्याग छिपा है। दिन और रात एक करके उसने ही ये चीजें इकट्ठा कीं। और वही इसे बेच भी देगा।

आत्मा कह रही थी, "यह चोरी है।" पर आत्मा के इस उपदेश पर इस समय उसे झुंझलाहट आ गयी। वह खायेगा क्या? उसका परिवार भूखा रहेगा? ये आदर्श, धर्म, पाप-पुण्य, सब पेट-भरे की लीला है। अकाल पड़ने पर विश्वामित्र ने भी डोम के घर माँस चुराकर खाया था। उन्होंने तो बाहर चोरी की थी, वह तो अपने ही स्कूल में चोरी करेगा। दरअसल यह चोरी है ही नहीं। दीमकें लग गयी हैं। अगर ये डेस्कें वगैरह ज़्यादा दिन तक स्कूल में रहीं तो तमाम स्कूल को खा जायेंगी। इन डेस्कों को न बेचने से सैकड़ों रुपयों की स्कूल-बिल्डिंग नष्ट हो जायेगी।

डेस्कें बेचने के पक्ष में यह दलील पांचू को मन ही मन और भी अधिक उत्साहित कर रही थीं। अपने-आपको इस सफ़ाई से धोखा देने के कारण उसे इस समय अपनी बुद्धि पर घमंड हो रहा था। सारा घर भूख के भूत से छुटकारा पा जायेगा। और इस बहाने तो ज़रूरत पड़ने पर एक-एक, दो-दो करके स्कूल की बहुत-सी चीज़ें बेची जा सकती हैं। इस तरह वह अपने परिवार के साथ बहुत दिनों तक अकाल से लड़ सकता है।

मोनाई का घर दस कदम पर सामने था। पांचू ठिठका—स्कूल की डेस्कें बेचने की बात वह मोनाई से कैसे कहेगा? मोनाई उसके बारे में क्या सोचेगा? मोनाई उसका बड़ा अदब करता है। आज उसकी आँखें सदा के लिए मोनाई के सामने नीची हो जायेंगी। घर की बात खुल जायेगी, उसकी चोरी खुल जायेगी। हाँ, चोरी तो यह है ही। पब्लिक के पैसे का अपने लिए उपयोग करना। मोनाई अगर यह सवाल कर बैठा तो?

सारा जोश ठंडा पड़ गया। निराशा सिर में चक्कर बनकर छाने लगी। लेकिन वह लड़खड़ाया नहीं, हिला-डुला तक नहीं, पत्थर की मूर्ति की तरह निश्चल-स्तब्ध खड़ा रहा। उसकी आँखों के आगे तारे छूट रहे थे, और कुछ भी नहीं सूझ रहा था—कुछ भी नहीं। उस

क्षण वह चेतना-शून्य हो गया था।

"अहा! मास्टर बाबू हैं?"

पांचू के कानों में मोनाई की आवाज़ पड़ी। जोश ने फिर से उसे अपने कब्जे में लिया। पांचू चौंका। देखा, मोनाई अपने घर के दरवाज़े पर खड़ा था।

"कहो, इस बखत यहाँ कैसे?"

"कुछ नहीं। अरे...यों ही चला आया।"

मोनाई पास आया। बोला—"मुनीर बेचारे की मिट्टी ठिकाने से लगा दी तुमने। दूसरा कोई होता तो नज़र भी न डालता।"

पांचू चुप। वह सोच रहा था, अपनी बात मोनाई से कहे कि न कहे।

मोनाई उसे चुप देखकर आगे बढ़ा—"सुना, बेचारे की लड़कियों को चावल भी दिया है तुमने? नूरू जस गा रहा था तुम्हारा। बड़ा धरम करते हो मास्टर बाबू! नहीं तो आजकल का ज़माना! गोपीकृष्ण, कोई किसी का नहीं। भगवान जी ने क्या ज़माना दिखाया है! राधे-राधे, कैसे नैया पार लगेगी!"

मोनाई ने एक निःश्वास छोड़ी। पांचू ने भी एक निःश्वास छोड़ी—वह मोनाई से अपनी बात कहने का विचार त्याग रहा था। कैसे कहेगा, यही सबसे बड़ी उलझन थी, यही उसके त्याग का कारण था। लेकिन घर-भर भूखा मरेगा। तो फिर...

मोनाई की व्यावहारिक बुद्धि भाँपने लगी। चेहरे का भाव पढ़ना चाहता था, अँधेरे में दिखायी नहीं पड़ रहा था। हाथ जोड़कर बोला—"जब यहाँ तक आये हो तो मेरे घर में भी अपने पैरों की धूलि डालते जाओ। आओ न।"

मोनाई के पीछे-पीछे पांचू चला। दहलीज़ में चारपाई पर बैठाकर, लालटेन की रोशनी में, मोनाई बातें करने लगा। आप नीचे ज़मीन पर बैठा, पांचू को मान दिया। मास्टर बाबू आये किसी पेच से हैं, मोनाई ताड़ने लगा, लेकिन मौका साधकर पांचू से ही दिल की बात निकलवानी है। दम देने लगा—"और इखबार में आज क्या खबरें हैं, मास्टर बाबू? लड़ाई की क्या खबर है? भाव कुछ और चढ़ेगा?"

पांचू को मोनाई से घृणा हुई। स्वार्थी अभी और भी लूटना चाहता है। गाँववालों की लाशें भी खा जायेगा क्या? घृणा व्यंग्य बनकर फूटी—"खबरें क्या, चाँदी है तुम्हारी।"

बुद्धू की तरह मोनाई ने हाथ मलते हुए खीसें निपोरी—'हें: हें: हें:! चाँदी क्या मास्टर बाबू, मेरा तो जी कलपता है। गीता जी में जो अरजुन जी ने भगवान जी से कहा था कि अब अपने ही न रहेंगे तो तीन-तिलोक का राजपाट लेके मैं क्या करूँगा, सो ही गत अपनी है मास्टर बाबू! कंठी की कसम, दीये तले बैठा हूँ, झूठ नहीं कहूँगा। मुँह में कौर नहीं दिया जाता। पर भगवान जी ने कहा है कि करम करो, अपना मरना-जीना सिंसार का धंधा ही है। बस, यही सोचके...(आह भरी) राधे-राधे!"

देखा, पांचू अब भी चुप है, खोया हुआ है। बोला—"आज बहुत उदास हो मास्टर बाबू!

अरे, मुनीर का गम न करो ज़्यादा। आया था, चला गया। देखो परभू जी की लीला! मुझसे आठ आने का चावल खरीदा, मैंने उसे ज़्यादा तौलकर दिया। मेरी आदत गुप्त दान करने की है, मास्टर बाबू। पर सो भी उसके भाग में नहीं था। कौड़ी-कौड़ी पर मोहर है, भगवान जी ने सच कहा है।...लेकिन वो तुमने, मास्टर बाबू, चावल कहाँ से खरीदा था?"

"दयाल बाबू के यहाँ से।"

"हाँ!" मोनाई ने गम्भीर होकर एक पल के लिए सिर झुकाया। फिर पूछा—"क्या भाव दिया?"

गये हुए की बात पूछ रहा है कम्बख्त! जले पर नमक छिड़क रहा है। पांचू बेरुखी से बोला—"क्या करोगे भाव पूछकर? तुम सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे तो हो।"

"नहीं बाबू, फरक है," मोनाई ज़ोर देकर बोला—"ज़मींदार बाबू से दो पैसे कम कर दूँगा। तुम घर के आदमी हो, जितना कहो उठाकर दे दूँ।"

पांचू खुश हुआ। उसे लगा जैसे मोनाई ने सचमुच ही उसके आगे चावल की बोरियाँ लाकर ढेर कर दी हों।

मोनाई अपनी धुन में कहे जा रहा था—"ये ज़मींदार बाबू अब हमसे काट करने लगे हैं। इन्हें अब यह डर लगता है कि मोनाई अब आधे का साझीदार बन गया है। अरे, इन्होंने सिरकार का यूनन बोट बुलवाया है यहाँ अपना धान सीधा सिरकार में ही बेचा। अढ़तिये को एक पैसा लिया-दिया नहीं। और अब इस काट में हैं कि यूनन बोट से दस रुपये मन के भाव से बिकवायेंगे, जिसमें मैं चौपट हो जाऊँ। पर इन्हें यह पता नहीं है कि मैं भी केवट का बच्चा हूँ। वो फाँस मारूँगा कि ज़मींदार बाबू देखते ही रह जायेंगे। हाँ!"

मोनाई ने दंभ के साथ पलथी बदली और अन्दर के दरवाज़े की तरफ़ मुँह करके आवाज़ लगायी—"अरे न्याड़ा रे, ज़रा चिलम तो ले आ बेटा।"

पांचू के मन में फिर आशा जगी। तिकड़म और दाँव-पेंच के अखाड़े में खुद भी कुछ कर दिखाने की तबियत हुई—"अरे, मैं जानता हूँ मोनाई। दयाल बाबू क्या खा के तुम्हारा मुकाबला करेंगे। और मुझे क्या मालूम नहीं है, कि इस वक्त तुम्हारी हैसियत उनसे ज़्यादा है।"

मोनाई के मक्खन लगा। गद्गद होकर पांचू के पैर छुये और बोला—"सब भगवानजी की दया है, मास्टर बाबू। मोनाई केवट ने जब से कंठी ली तब से किसी बामन, साधू और गोमाता का बुरा नहीं चेता, मास्टर बाबू। सत् कहता हूँ तुमसे! फिर मेरा बुरा कौन चेत सकता है?"

"ठीक है। ठीक कहते हो।" पांचू ज़रा उत्साह में था—"बड़ा दया-धर्म है तुम्हारे मन में। मैं क्या जानता नहीं हूँ।"

मोनाई का हुक्का लेकर न्याड़ा आया। देखा, मास्टर मोशाय बैठे हैं। हड़बड़ाकर हुक्का रखा, और पांचू के पैर छुये।

शिक्षक का अभिमान जागा। रौब से पूछा—"क्यों रे, आज स्कूल नहीं आया तू?"

न्याड़ा सकपका गया। बाप बोला—"मैंने ही नहीं भेजा था इसे। आज दो दिन से इसकी माँ ज़रा बीमार है। हें: हें; कुछ भगवान जी की दया होने वाली है घर में—हें: हें:।"

खुशामदाना तौर पर उल्लसित होकर पांचू बोला—"अच्छा, कब?"

"अभी तो दिन हैं! छठा महीना है। बाकी सिर भारी रहता है, आजकल उसका—सो लड़के से बढ़कर माँ की सेवा और कौन कर सकता है, मैंने सोचा।"

यह मोनाई की तीसरी पत्नी है। न्याड़ा दूसरी का है। सौतेली माँ ठहरी, बूढ़े की जवान बीवी। बेटे से डटकर सेवा कराती है।

मोनाई न्याड़ा की तरफ़ देखकर बोला—"जा रे, माँ के पास जाकर बैठ। और वहीं बैठकर पढ़।"

न्याड़ा सिर झुकाये चला गया। कश खींचते हुए मोनाई बोला—"ये न्याड़ा एक बार बी.ए. पास हो जाये, बस! भगवान जी!...अब तो तुम्हारा स्कूल बन्द ही हो गया समझो। आहा! तुमने भी क्या चमत्कार कर दिखाया मास्टर बाबू! गाँव की सात पीढ़ी में तुम्हारे जैसा कोई नहीं हुआ। सत् कहता हूँ।"

पांचू ने एक निःश्वास छोड़ी, बोला—"हाँ, पर अब दीमकें सारी डेस्कें चाटें डालती हैं।"

"राधे, राधे!...मेरी मानो तो कुछ कहूँ।"

पांचू चौंका। शायद अब बात बन जाये। उत्साहित होकर बोला—"कहो, कहो!"

"मेरे हाथ बेच डालो न लकड़ी का सामान! दीमकें चाट डालें, उससे फैदा? अरे, अकाल के बाद तुम्हें बिंचें यों ही बनवानी पड़ेंगी यों स्कूल के खाते में पचीस-पचास दिखा तो सकोगे।"

बिल्ली के भागों छींका टूट रहा था, पर अभी एक मंज़िल और थी—आज का चावल। पांचू अब तो गंगा के किनारे आ ही गया था। प्यासा हरगिज़ नहीं लौटेगा—"कहते तो ठीक हो। पर..."

"पर," मोनाई ने पर निकाले, बोला—"मैंने तो स्कूल के भले की बात कही थी, बाकी मैं ज़ोर नहीं देता। मुझे गरज नहीं है। सत् कहता हूँ।" मोनाई सत्य कहकर हुक्के में लवलीन हो गया।

पांचू का नशा उतरा। बात बनते-बनते बिगड़ न जाये। हड़बड़ाकर खुल पड़ा—"नहीं, मुझे इनकार नहीं। लेकिन बात ये थी कि...तुम तो जानते ही हो, लूट-मार का ज़माना है, इसलिए घर में पैसा-कौड़ी नहीं रखते। ढाका के बैंक में जमा है। और इस वक्त...अ...हाथ ज़रा तंगी में आ गया है। तुम तो समझते ही हो, यह स्कूल बन्द हो गया और..."

मोनाई ने हुक्का गुड़गुड़ाते हुए समझदारी के पूरे बोझ से गर्दन हिलाते हुए कहा—"सब समझता हूँ मास्टर बाबू! मोनाई केवट ने भी अँधेरे-उजाले दिन देखे हैं। मैं चावल देने को भी तैयार हूँ।"

पांचू ने देखा, मोनाई ने नस पकड़ ली। बड़ी झेंप मालूम हुई। बात बनाने के लिए रौब

जमाया—"हाँ, अभी तो ले ही लूँगा। पर यह रकम तुम उधार ही समझो। जो तुमसे फर्नीचर बेचकर पाऊँगा, उतनी रकम बैंक से लाकर खाते में जमा कर दूँगा।"

बात कहते-कहते पांचू ने खुद ही महसूस किया कि वह बगैर ज़रूरत के सफ़ाई दे रहा है। मोनाई ने एक बार गौर से पांचू के मुँह की तरफ़ देखा, फिर गर्दन झुकाकर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। उसने थाह का अनुमान किया। अनुमान पक्का करने की गरज़ से बोला —"अच्छी बात है, तो फिर दो-तीन दिन में कभी चलकर लकड़ी देख लूँगा। सौदा हो जायेगा।"

पांचू ने देखा, हाथ आये चावल फिर दूर खिसके जा रहे हैं। वह एकदम से अधीर हो उठा। मन का सत्य उबल पड़ा। घबराकर दीनता-भरे स्वर में बोल उठा—"आज ही सौदा कर लो न मोनाई। घर में चावल की एक कनी भी नहीं है। पाँच सेर की गठरी मुसलमान मुर्दा छूकर बर्बाद कर दी। मैं धर्म-संकट में पड़ा हूँ।"

मोनाई चुप हुक्का गुड़गुड़ा रहा है। पांचू की आँखें भिखारी बनकर एकटक मोनाई के चेहरे पर ही अड़ी हुई हैं। अपनी आबरू मोनाई के हाथों समर्पित कर वह उससे संरक्षण की भीख माँग रहा है। पांचू अनुभव कर रहा है, वह गिर गया। सदा से पोषित उसका स्वाभिमान इस समय मिट्टी के खिलौने की तरह गिरकर चूर-चूर हो गया। इतना महान त्याग करने के बाद भी अगर मोनाई ने ना कह दी तो? नहीं-नहीं, वह ऐसा न होने देगा। ऐसी नौबत आने पर मोनाई केवट के पैरों पर अपना सिर झुका देगा। भूखे घर में चावल की गठरी के साथ प्रवेश करने के लिए वह आज हर तरह का अपमान सहने के लिए तैयार है।

तभी मोनाई हुक्का सरकाते हुए बोला—"मैं अभी ही तुम्हें दस-पाँच सेर दिये देता हूँ। इस बखत का काम चलने दो, फिर पीछे हिसाब-किताब कर ले-दे लिया जायेगा। कोई फिकर मत करो।" यह कहकर मोनाई उठा। अन्दर जाते-जाते दरवाज़े पर ही ठिठककर बोला—"स्कूल की कुंजी न हो, मुझे ही दे दो मास्टर बाबू। रातोरात बेंचें निकलवानी होंगी, जिसमें तुम्हारी इज़्ज़त पर कोई आँच न आने पाये।"

मोनाई की आत्मीयता ने तो पांचू का हृदय जीत लिया। फौरन ही तालियों का गुच्छा निकालकर मोनाई को दे दिया—"मेज़ों में जो कागज़-पत्तर और रजिस्टर वगैरह हैं, उन्हें तुम मेहरबानी करके अपने सामने ही करीने से अलग रखवा देना। समझे!"

पांचू के स्वर में अत्यधिक दीनता थी।

मोनाई तालियों का गुच्छा लेते हुए बोला—"तुम निसाखातिर रहो। मैं अभी दस सेर चावल लाये देता हूँ।"

मोनाई अन्दर चला गया। वह खुश था, भगवान जी ने बैठे-बैठे ही ये पचास-साठ रुपये का फायदा करा दिया। दस सेर चावल दे के सारी बेंचें अपनी। फिर कौन देता है, कौन लेता है? मास्टर बाबू की नज़र तो उठेगी नहीं उसके सामने—"भगवान जी, तुम धन्न हो! राधे, राधे!"

और पांचू सोच रहा था—"भगवान बड़ा दयालु है। पाँच सेर दिये, दस सेर पाये। और भी आगे मिलेगा। दो मन तो मिल ही जायेगा, कम से कम मोनाई देवता है। बड़े आड़े वक्त काम आया!"

4

बड़ी किफायत के साथ, आधा-चौथाई पेट खाने पर भी, छः सेर चावल चार दिन में निबट गये। पांचू मोनाई से दस सेर लाया था। मोनाई ने अब तक शायद स्कूल का फर्नीचर औने-पौने कर दिया होगा। पांचू ने सोचा—"चलकर मोनाई से हिसाब समझ लिया जाये। वैसे है तो नम्बरी काइयाँ, दस के दो टिकायेगा। पर जो कुछ भी इस वक्त मिल जाये उसे ही बड़ी रकम समझो। अड़तालीस बेंचें और उतनी ही डेस्कें हैं। कम से कम पचास तो देगा ही। न सही पचास, चालीस ही दे। इतने में एक मन चावल आ जायेगा। एक महीना तो आनन्द से पार हो ही जायेगा। वैसे माल तो ज़्यादा का है। दो मन न सही, डेढ़ मन चावल तो इतने फर्नीचर में मिलना ही चाहिए। यों तो आज कंट्रोल का ढिंढोरा भी पिट गया है। उसके हिसाब से तो उसे दस रुपये मन बेचना पड़ेगा। पर शायद इस सरकारी हुक्म में भी वह कोई पख लगा दे। पक्का 'चार सौ बीस' है यह मोनाई। खैर! मैं उससे नकद रुपये ले लूँगा। मोनाई कहता ही था—दो-एक रोज़ में यूनियन बोर्ड का चावल आने वाला होगा। तब तो चालीस रुपये में चार मन चावल मिलेंगे। ठाठ से चार-पाँच महीने तक मूँछों पर ताव देकर डकार लेंगे। आगे फिर राम मालिक है। अरे हाँ, जिसने मुँह चीरा है, वही खाने को भी देगा।"

दूसरे ही क्षण पांचू को यह कहावत निस्सार जँचने लगी। इतने मर गये, और भूखों ही मरे। लोगों ने व्यर्थ ही ईश्वर को इतना दयालु समझ रखा है। ईश्वर कहाँ है? क्या वह घट-घट व्यापी, अन्तर्यामी, अपनी आँखों से इन भूखों मरते हुए लाखों निर्दोष जीवों को नहीं देख पाता? अगर वो है तो उसने ही इन सबों के मुँह भी चीरे हैं, लेकिन इन्हें खाने को नहीं देता?
पांचू की आँखों के सामने जीवित कंकाल—मर्द, औरतें, बच्चे अपने कमज़ोर तन की सारी स्फूर्ति को बटोरकर दौड़ते हुए चले जा रहे थे। उनकी गड्ढों में धँसी हुई आँखों में आज खुशी की चमक थी; सूखी हुई हड्डियों में आज उत्साह नज़र आ रहा था। किसी के हाथ में फटे चिथड़े हैं, कोई एलुमिनियम या पीतल-ताँबे के घिसे-घिसाये बर्तन लिये हुए मोनाई की दुकान

की तरफ़ भागा जा रहा है। चारपाई के पाये, हल के फाल, मछली पकड़ने के जाल और काँटे, बढ़ई और लुहारों के औज़ार—जिसके घर में जो कुछ भी बचा था उसे लिये वह दौड़ा चला जा रहा था।

आज गाँव में कंट्रोल का ढिंढोरा पिटा था। दुअन्नी-चवन्नियाँ भी आज अरसे बाद चावल खरीदने में समर्थ हुई हैं। अब अकाल के पाँव उखड़े। सरकार में सुनवाई हो गयी। सुना है, कुछ दिनों बाद अनाज मुफ्त में बाँटा जायेगा। अब फिर से अच्छे दिन बहुरेंगे। इस बार ईश्वर ने चाहा तो फसल पहले से भी अच्छी होगी। जब कटेगी तो सारा देश फिर से स्वर्ग बन जायेगा।

कंट्रोल का ऑर्डर मौत से लड़ती हुई इन ज़िन्दा लाशों में फिर से ताज़गी ले आया है। पांचू सोच रहा था—"हमारे देश के निवासी कितने सरल हृदय के हैं! उन्हें खुश करने के लिए सिर्फ़ बहाना ही काफ़ी होता है। एक लंगोटी और मुट्ठी-भर अन्न तक ही उन्हें स्वर्ग के सुखों की चाह है। उन्हें न मोटरें चाहिए और न महल। पांचू को याद आया, एक दिन दयाल बाबू ने स्कॉच ह्विस्की की एक दर्जन बोतलें मँगवाने के लिए एक आदमी को खास तौर पर कलकत्ते भेजा था। मगर अस्सी रुपये फी बोतल तक खर्च करने के लिए तैयार होने पर भी ब्लैक मार्केट में न मिलीं। दयाल बाबू कितने परेशान नज़र आते थे! कितने दर्द के साथ कहा था कि देखिये मास्टर, बाबू, क्या ज़माना आ लगा है! अस्सी रुपये खर्च करने पर भी स्कॉच नहीं मिल रही!"

"दयाल ज़मींदार को शराब की एक बूँद तड़पा रही थी, और दयाल की प्रजा को चावल की एक कनी। कैसा विचित्र साम्य था! उसके कुछ दिनों बाद जब कंट्रोल से तीन रुपये पर स्कॉच मिलने की खबर दयाल बाबू को मिली थी, तब वे कितने उत्साह में आये थे! आज चावल पर कंट्रोल हुआ है। प्रजा का उत्साह देखो। मोनाई का उत्साह देखो!"

मोनाई की दुकान के आगे भीड़ लगी हुई थी। कान पड़ी बात न सुनायी देती थी। नाक पर चाँदी की कमानी का चश्मा चढ़ाये मोनाई एक-एक चिथड़े-गुदड़े को उपेक्षा के साथ देखते हुए उनकी परीक्षा में व्यस्त था। अज़ीम पास ही बैठा हुआ इस कबाड़खाने की प्रदर्शनी का हिसाब मोनाई के आदेशानुसार खाते पर टाँकता जाता था।

मोनाई की दुकान से दस कदम दूर, बायें मोड़ पर एक पेड़ था, जिसकी पत्तियाँ इन्सान के पेट की आग को बुझाने में काम आ चुकी थीं; जिसकी कई डालें इन्सान की भूख से उलझकर टूट चुकी थीं; और जिसका नंगा कंकाल भूखे बंगाल का प्रतिनिधि बनकर मोनाई की दुकान के सामने गूँगे गवाह की तरह खड़ा था। पांचू उसके नीचे खड़ा-खड़ा मोनाई की दुकान के सामने का तमाशा देखने लगा।

"दो कटोरे और एक धोती। ये धोती? हिः, ससरी फोकट में भी महँगी है। लिख ले, लिख ले, 6 पैसे के नाम। साला कंट्रोल का भात खायेगा।" कटोरे-बर्तनों और धोती-कपड़ों के ढेर पर फेंकते हुए मोनाई ने अज़ीम से कहा।

अज़ीम की न रुकनेवाली कलम आगे बढ़ी। सिर झुकाये हुए, लिखते-लिखते वह बोलता भी जाता था—"भोलू—6 पैसे।"

भोलू नाम के नर-कंकाल की काँपती हुई धीमी आवाज़ गिड़गिड़ायी—"पेट न भरेगा मोनाई। चार आने...चार आने तो लिख लो। दस दिन के भूखे हैं।"

मोनाई डपट पड़ा—"अबे तू भूखा है तो यहाँ कौन पेट भरके खाता है? तुम लोगों की दशा देख-देख के साँस तक तो समाती नहीं पेट में। 6 पैसे कम हैं बे? सालों को जित्ता जादा दो उत्ता ही हाथ पसारेंगे। भगवान जी ने गीता जी में कहा है कि संतोख से काम लो, सो नहीं होता। हुँ:! ये अलमुनिया का कटोरा और थाली...चार डबल पटल के नाम।"

बेचने वाले को सौदा करने का हक न था। खरीदने वाला मनमाने दाम लगा रहा था। लोग जल्द से जल्द अपनी चीज़ें बेचकर चावल पाना चाहते थे। सत्तर-अस्सी आदमी खड़े थे। मोनाई की दुकान में कपड़ों का ढेर था, टूटे-पुराने बर्तनों का ढेर था, लोहा-लंगड़, मछुओं के जाल, चारपाई के पाये वगैरह जमा हो रहे थे। चावल कहीं भी नहीं दिखायी देता था। मोनाई का कैश-बॉक्स भी वहाँ नहीं था। मोनाई बकता था, गालियाँ देता था, माल रखता था, और अज़ीम से चिट्ठे में दाम टँकवाता चलता था। सबके नाम लिखकर बाद में पैसे वगैरह बाँटे जायेंगे, यह सबसे कह दिया गया था।

हर शख्स जल्दी में था। हर शख्स यह चाहता था कि उसकी चीज़ें पहले खरीद ली जायें। चिट्ठे पर अपना नाम और दाम टँक जाने के बाद हर आदमी अपने चावल पाने के अधिकार को सुरक्षित समझता था। भूख की बेचैनी ज़रा देर के लिए बुझ-सी जाती थी। चिट्ठे पर नाम लिख जाने के बाद लोग दुकान से हटकर, आसपास ही धरती पर या तो लेट जाते थे, या दो-चार की टोली में बैठकर बातें मठारते थे। कोई आठ, कोई दस, कोई बारह दिनों से भूख के शिकंजे में अपने परिवार के साथ जकड़ा भयानक, पास आती हुई मृत्यु को भयानक, भयानकतर, भयानकतम रूप से देख-देखकर, भय और चिन्ता के जड़ स्वरूप को अनुभव करते हुए शून्य से लड़ रहा था। पैरों तले दबी हुई चींटी की तरह, सत्ता के भार से दबा हुआ गुलाम इन्सान बड़ी ही मुश्किल से जीवन का मोह तोड़कर, अन्तिम क्षण की प्रतीक्षा में अपनी सारी मनोवृत्तियों को बड़ी लाचारी के साथ मृत्यु में एकाग्र कर रहा था। कंट्रोल की शह पाते ही वह मृत्यु के पंजे से जान छुड़ाकर भाग निकला। जीने के लिए अगर प्राणी को एक पल भी और मिल जाये तो इससे बढ़कर खुशी की दूसरी बात ही क्या हो सकती है?

पेड़ के सहारे टिककर खड़ा हुआ पांचू यह तमाशा देख रहा था। अपनेपन को इन तमाम लड़ती हुईं जानों में लीन कर, एकात्म भाव से, अपनी चेतना और बुद्धि को वह इस तस्वीर में एकाग्र कर चुका था। हर आती-जाती शह के साथ उसकी निगाहें दौड़तीं, दिमाग दौड़ता। शहर के राजनीतिक समाज में पनपा हुआ बंगाली दिमाग मजबूरी की ज़ंजीरों में गले-गले तक जकड़े हुए, भूखे-नंगे गुलाम (मगर इन्सान) की हालत पर गौर कर रहा था—"इसे

अहिंसा का आदर्श भी तो नहीं कह सकते। इसे योगी का मोह-त्याग भी नहीं कहा जा सकता। कुत्ते-बिल्ली की मौत!" फिर सोचा—"कुत्ते-बिल्ली भी आसानी के साथ अपने पेट के हक से हटाये नहीं जा सकते। वे मरते-मरते भी अपनी पूरी ताकत और आवाज़ के साथ मौत बनकर सामने आनेवाले हर जुल्म से डटकर मोर्चा लेंगे। मगर हम तो भुनगों की मौत मर रहे हैं, न आवाज़ का ज़ोर!"

पांचू सोच रहा था—"क्या दुनिया के किसी देश, किसी कौम का आदमी अपने लिए यह मौत पसन्द करेगा। फिर क्यों नहीं उसे अंजाम का खयाल आता! वह क्यों यह भूल जाता है कि जो अत्याचार मनुष्य अपनी सत्ता के ज़ोर में किसी दूसरे पर करता है, वे ही उलटकर कभी उसके ऊपर भी हो सकते हैं?"

पांचू तस्वीर को उलटकर देखने लगा। मोनाई की दुकान पर, समझो कि उसकी जगह पर भोलू, लपट, तिनकौड़ी या कोई भूख का सताया हुआ आदमी ज़बर्दस्ती चढ़कर बैठ गया हो, और मोनाई को वह अपनी ही तरह दस-बारह रोज़ तक भूखा रखने के बाद चावल की आस दिला-दिलाकर ललचा रहा हो, उस हालत में कंकाल मात्र मोनाई किस तरह गिड़गिड़ाया, परेशान होगा—इसकी कल्पना करने से पांचू को एक तरह की खुशी हुई। उसकी इच्छा होने लगी कि एक बार भूखा रखने वालों को भूखा रखकर उनका तमाशा देखा जाये।

दयाल बाबू, राय भुवनमोहन सरकार, मिस्टर जॉर्डन, लेडी चटर्जी, लार्ड—पांचू की कल्पना हर एक 'बड़े आदमी' की भूख से तड़पते हुए चित्र देख-देखकर हिंसक आनन्द लूटने लगी। व्यक्तिगत सत्ता के लिए लड़ने वाले एक बार भूख से भी तो लड़कर देखें। दुनिया को राहत की नेमत बख्शने का दावा रखने वाले ये बने हुए मसीहा खुद अपने पेट से भी तो एक सवाल पूछकर देखें—क्या वे पेट की गाली बर्दाश्त कर सकेंगे? कोई कर सका है? तब फिर वे किसी दूसरे को क्यों देना चाहते हैं, क्यों दे रहे हैं?

थाली के पानी में चाँद को छूकर बहले हुए बच्चे की तरह घमंड को उभारती हुई खुशी की चमक पांचू के चेहरे पर छा गयी। अपने सामने अपने ही बड़प्पन को ढील दे-देकर बढ़ाते हुए, अपनी ही आवाज़ को वह एक आत्मा की वाणी की तरह सुन रहा था।

उस वक्त पांचू मास्टर का पेट भरा हुआ था। मोनाई से बेंचों का हिसाब-किताब समझने के लिए आया था, सो यह भुखमरों का हिसाब सामने आ गया। उसके आस-पास, चारों तरफ़, टोलियों में जगह-जगह फैलकर बैठा हुआ जन-समूह चावल की आस में, सन्तोष-सुख का स्पर्श पाकर बहक रहा था। यों तो, आजकल हर वक्त, हर रोज़ आदमी बहकता ही रहता है, मगर आज अरसे के बाद ज़रा खुशी में बहका।

बीच-बीच में चारों तरफ़ निगाह दौड़ाकर पांचू लोगों के चेहरों पर खुशी का अन्दाज़ा लगा रहा था। उसकी पीठ पीछे ही, पेड़ की दूसरी तरफ़ केष्टो नन्दी अपने फटे हुए स्वर को अपनी पूरी ताकत खर्च करके, पुराने ज़माने की खुद अपनी ही बुलन्द आवाज़ के स्टैंडर्ड तक

ऊँचा उठाने की कोशिश कर रहा था। कहावत थी कि केष्टो नन्दी बोले तो मीर घाट तक आवाज़ जाये। अपनी पूरी आवाज़ के साथ बोलने की कोशिश में जल्दी-जल्दी हाँफता हुआ केष्टो कह रहा था—"उसने मेरी बहन को घर से निकाल दिया। कह दिया, 'हमारे घर में तेरे खाने को नहीं है।' कहा, 'भाई के जा, जब अकाल खत्म हो जाये तो लौट आइयो।' अरे पूछोऽऽऽ, मैं भाई हूँ तो क्या तू उसका कोई नहीं? ऐं! धरम की मानो तो तू तो उसका पति है—स्वामी। तूने उसका हाथ पकड़कर जीवन-मरण की गाँठ बाँधी। और जब बिपदा पड़ी तो वही हाथ पकड़कर उसे घर से बाहर निकाल दिया। ऐं! इससे बढ़कर नीचता और क्या हो सकती है? उस बखत, सच्ची मानो निमाई, इत्ती घिरना हुई कि देखो, आदमी कित्ता नीचे गिर गया है! मन में बड़ा बैराग उपजा, तुमारी कसम। इस सनसार से चित्त फट गया मेरा। मगर, समझे, निमाई उत्ती बेला अपना धरम करने से भी नहीं चूका। चट-से मैंने भी उसी दम कुमू नोनी की माँ को हाथ पकड़कर घर से बाहर निकाल दिया। वो साला समझता होगा कि उसके निकाल देने से मेरी बहन का कोई ठिकाना न रहेगा। अरे, केष्टो नन्दी अपनी जान देके भी अपनी बहन को बचायेगा। मैंने गिन्नी से सफा कह दिया कि बिन्दो अपने भाई के आयी है, तू अपने भाई के जा। चल निकल। मेरा बेटा समझता होगा कि वही अकेला अपनी गिन्नी को निकाल सकता है। अरे मैं उससे भी बढ़कर साढ़े सात हाथ का कलेजा रखता हूँ। केष्टो नन्दी अपनी आन का पक्का है—हाँऽऽऽ!"

पांचू ने अनुभव किया कि अन्तिम वाक्य कहते हुए केष्टो नन्दी ने अपनी आवाज़ को खींच-खींचकर, किसी तरह अपनी बुलन्दी का फिर से नया रिकॉर्ड स्थापित कर ही दिया। वह सोचने लगा—"शर्म जब अपनी हद से गुज़रकर बेशर्मी बनती है, तब उसकी चेतना से बचने के लिए आदमी अपनी असलियत का ज़ोर-शोर से ढिंढोरा पीटकर उसे न्याययुक्त सिद्ध करता है। चेतना बेशर्मी का बाना छोड़, न्याय और सत्य का अभिमान बनकर, इन्सान को हीन भावना की नज़रों से बचाती है। इस बात को वह अपने गाँव के आदमियों में इधर बराबर नोट कर रहा है। हर आदमी जिसके शरीर में ज़रा भी ताकत है—और आबरूदार तो करीब-करीब सभी, एक किस्म की झूठी अकड़ की आड़ में दर्द को छिपाये हुए मन ही मन में मचल रहे हैं। खाने को मिलता नहीं। परिवार के पुरुष अपनी ज़िम्मेदारी को महसूस करते-करते, अपनी मजबूरियों का ध्यान करते-करते पागल हुए जा रहे हैं। आँखों के सामने देख रहे हैं—बच्चों की हड्डियाँ दिन-ब-दिन चमकती जा रही हैं और माँस सूखता जाता है। पसलियों के उभार में पेट दबा चला जाता है। आँखें घनी अँधेरी कोठरी में टिमटिमाते हुए दीये की तरह गड्ढों में दिखायी देती हैं। हाथ-पैर सूखकर लकड़ी हो गये हैं। खाने की आस मरती जा रही है—और बच्चे भी। यह देखकर कौन ऐसा बाप होगा जिसकी मर्दानगी पर लानत न बरस जाती होगी। अपना और अपने आश्रितों का पेट न भर सकने की मजबूरी जिसका कलेजा पकड़कर न मसोस देती होगी? वह अपने बच्चों का पेट नहीं भर सकता, अपने, बूढ़े माँ-बाप, आश्रित भाई-बहनों को खाना नहीं दे सकता, वह खुद अपने को भी नहीं खिला

सकता। और फिर भी वह जी रहा है। यही उसे खल रहा है।

जीवन की सबसे बड़ी असफलता का तमाचा खाकर इन्सान तिलमिला उठा है। ईश्वर से लेकर अपने तक, वह हर एक के प्रति विद्रोह का भाव रखता है। जीवन की टूटती हुई डोर और जीवन के मोह में बराबर खींच-तान चल रही है। सुबह होती है, हर रोज़ आदमी अपने खयालों में ताज़गी लेकर उठता है कि आज खाना मिलेगा—कहीं से अचानक कुछ करिश्मा हो जायेगा और सबके सामने खाने की थालियाँ आ जायेंगी। जो कहीं ऐसा हो जाये तो चारों तरफ़ खुशी की लहर दौड़ जाये। गाँव का चेहरा पलट जाये। मोनाई का मूं इत्ता-सा होके रह जाये कि अरे, अब मेरा माल कौन खरीदेगा?

आदमी दिन-भर अपने को आस दिला-दिलाकर बहलाता रहता है। ज्यों-ज्यों दिन ढलता है, रात आती है, उसकी उम्मीदों पर भी अँधेरा मँडराने लगता है। वह गम्भीर और फिर चिड़चिड़ा होने लगता है। मौत के आलम में तारों को भूखी निगाहों से देखते हुए किसी दर्द-भरे की चीख बेसाख्ता कराह उठती है। अँधेरी रात में दूर-दूर तक चीखने और कराहने की आवाजें आती हैं। हिस्टीरिया के दौरे में रोते-चीखते और इधर-उधर भागते हुए इन्सानों के साथ कुत्तों का शोर मौत की दहशत से लोगों का दिल हिला देता है। रात आँखों में कटती है, और धीरे-धीरे चमत्कार की तरह आनेवाले रुपहले उजाले की शह पाकर सूनी आँखों पर चिड़ियाँ चहचहा उठती हैं।

आस को टूटता हुआ देखकर आदमी चिड़चिड़ा रहा था। भूख बेआसरा, बेसहारा हो गयी थी। भूख का ध्यान छोड़कर लोग किसी और तरफ़ अपना ध्यान लगाना चाहते थे, मगर उसके लिए भी कोई चारा न था। स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध शारीरिक बल के साथ-साथ टूटता जा रहा था। बहुत उत्तेजना होने पर एक-दूसरे के शरीर से नोचा-खसोटी करके हाँफ जाते थे। यह पस्ती भूख की पस्ती के साथ-साथ दिल की आग को दुबाला करके भड़काती थी। मन के किसी पर्दे में शारीरिक सुख का मोह होने पर भी, अपनी पूरी चेतना के साथ, मनुष्य स्त्री-पुरुष के शारीरिक योग से नफ़रत करने लगा था। कितने ही घरों में पत्नियाँ निकाली गयीं और कितनी ही पत्नियाँ अपने पतियों को छोड़कर चली गयीं। औरतों और छोटे बच्चों से रिश्ते टूटने लगे। माँ-बाप, बहन-भाई भी खलने लगे। एक-दूसरे की सूरत देखते ही आँखों में खून उतर आता। हर आदमी यह सोचने लगा कि अगर दुनिया में वही अकेला होता तो कभी भूखों न मरता। आदमी आदमी को अपना जानी दुश्मन समझने लगा। पड़ोसी और नाते-गोते के लोग तीन-तीन पीढ़ियों की छोटी-से-छोटी बातों को याद कर एक-दूसरे से लड़ने के मौके खोजने लगे।

मध्यवर्गीय आबरूदार अपने दिल के गुबारों को आबरू की फटी चादर में बाँधकर, गाँव-भर में उसे बिखेरते हुए चलते। इनकी दशा और भी बुरी थी। नंगे घूमने पर शान्तिपुरी धोती-जोड़ों की बातें करना, बाबाराज के छत्तीस पकवानों की चर्चा। हर एक आबरूदार के दादा या परदादा के यहाँ दयाल ज़मींदार का दादा या परदादा गुमाश्ता रह चुका था—भूख से

तड़पते हुए पेट को बड़ी-बड़ी बातों से बहलाकर अपने दर्द को दिल ही दिल में कसे रखने की हर कोशिश पानी की तरह बह जाती थी।

पांचू अपने ही घर में देखता है, पास-पड़ोस में भी देखता है, आदमी भूख से ज़्यादा अपनी आबरू की रक्षा करने के लिए परेशान है। तरह-तरह के उपाय सोचता है; और उसके सारे उपायों, मनसूबों पर पानी फिर जाता है।

हारान भट्टाचार्य के घर में तीन दिनों से फाके हो रहे थे। अपने घर के दरवाज़े बन्द रखने पर भी उसे बराबर यही शक बना रहा कि दुनियावालों को उसके यहाँ अकाल आने की खबर लग गयी है। यह चीज़ उसे बराबर परेशान करती रही। तीसरे दिन एक उपाय सूझा। घर से बाहर निकला और लोगों से बात निकाल-निकालकर यह ज़ाहिर किया कि उसे बदहजमी हो गयी है और वह बांडुज्ये मोशाय के यहाँ चूरन लेने जा रहा है।

रिश्ते बेहद खल रहे थे। परेश घोषाल ने एक दिन अचानक ही अपने छोटे भाई की विधवा बहन पर अनैतिक सम्बन्ध का दोषारोपण कर दोनों को घर से निकाल दिया।

कानाई घटक के बाप मर गये थे। आबरू की रक्षा के लिए श्राद्ध करना ज़रूरी था। कानाई ने दयाल के एक समृद्ध गुमाश्ते परान हालदार से सौदा तय किया; अपनी पत्नी को ज़बर्दस्ती वेश्या बनने पर मजबूर किया। और जब परान बगैर पैसा-कौड़ी दिये हुए ही जाने लगा तो वह गुस्से से पागल हो गया। दोनों की गाली-गलौज और चीख-गुहार सुनकर मकान में आसपास के लोगों की भीड़ जमा हो गयी। जिस आबरू को बचाने के लिए उसने अपने ही हाथों अपनी पत्नी की आबरू गँवाई थी वह देखते-देखते ही लुट गयी। कानाई की भुखमरी पत्नी भीड़ से घिरी हुई अपनी लाज की लाश को यों सड़ते हुए देख रही थी। कानाई घटक को धक्का देकर ज़मींदार का गुमाश्ता परान हालदार भीड़ चीरकर चलता बना। कानाई आज पागल होकर घूमता है। पागलपन में वह किसी को नुकसान नहीं पहुँचाता, सिर्फ़ अपनी आबरू की शेखी बघारता है।

हर एक के घर की कहानी हर एक को मालूम है। फिर भी आबरू की टूटी ढाल का सहारा नहीं छोड़ जाता।

अस्सी प्रतिशत भले घरों की बहू-बेटियाँ मजबूर किये जाने पर, पैसों या खाने के लालच से, अथवा भूख और चिन्ताओं की उलझन से छूटकर दो घड़ी गम गलत करने की नीयत से वेश्याएँ हो चुकी हैं।

जातियाँ सिर्फ़ नाम लेने के लिए ही रह गयी हैं। वर्ण-भेद को कोई टके सेर भी नहीं पूछता। हिन्दू-मुसलमान का भेद मिट चुका है। सभी भूखे हैं, सबकी एक-सी ही हालत है। सब लोग दुनिया से परेशान नज़र आते हुए भी दरअसल खुद अपने से ही परेशान हैं।

पांचू सोच रहा था, "अगर उसके घर में भी कभी बहुत दिनों तक अकाल पड़ने की नौबत आयी तो क्या रिश्ते, आबरू अपने-पराये का ममता-मोह, शील, विनय—क्या यह सब कुछ उसके घर में टिक सकेंगे?"

इस प्रश्न ने पांचू को मन ही मन चौंका दिया, दहला दिया। मन में एक बार यह बात उठ आने पर इससे बचना भी पांचू को मुश्किल मालूम हो रहा था। इस नग्न सत्य के तेज को वह बर्दाश्त नहीं कर पाता था। वह अपने घर के हर आदमी को, दुनिया की रफ़्तार देखते हुए, आने वाले समय की तराजू पर तौलने लगा।

सबसे पहले उसका ध्यान शिबू की ओर ही गया। घर में जो कुछ भी बुराइयाँ आयेंगी तो वह दादा के ही कारण। माँ तो ऐसी दशा होने से पहले ही मर जायेगी—ज़रूर मर जायेगी। उसे मर ही जाना चाहिए। भावज को दादा वेश्या बनने पर मजबूर कर सकते हैं—हालाँकि बौदी ऐसी हैं नहीं। वह बड़े ही दृढ़ चरित्रा की हैं। तुलसी के आसार यों भी अच्छे नज़र नहीं आ रहे हैं। मंगला बतलाती थी कि वह काकी नम्बर आठ के भाई से कुछ गड़बड़ कर आयी है। और मंगला? नहीं, नहीं, न...न...

इस दिशा में कल्पना की ढील पाकर पांचू का मन एकदम से अस्थिर हो उठा। उसके सिर की नसें तन गयीं। दिमाग पर ज़रूरत से ज़्यादा बोझ पड़ गया। मन की बेचैनी ने पागल-खूनी की तरह हिंसक रूप से उत्तेजित होकर उसे बुरी तरह से अस्थिर कर दिया। उसकी आँखों में खून उतर आया, मुट्ठियाँ तन गयीं, जबड़े भिंच गये—उसका सारा शरीर आन्तरिक उत्तेजना के वेग से काँप उठा। उसकी चेतना और विचार-शक्ति कुछ क्षणों के लिए लुप्त हो गयी। तभी सहसा उसका ध्यान बाहर की एक घटना की तरफ़ बरबस खिंच गया। और वह बच गया।

उसके पास ही, थोड़ी दूर पर हंगामा मचा हुआ था। तुलसी बोष्टम अपनी पत्नी की फटी हुई धोती खींच रहा था। और वह अपनी शक्तिभर चीख-चीखकर रोती हुई, उस हज़ार जगह से फटी हुई मैली धोती को अपने तन से चिपकाये रखना चाहती थी।

तुलसी कहता था—"अपनी धोती दे दे। मोनाई से चावल लूँगा।"

उसकी पत्नी कहती थी कि तुम अपनी धोती क्यों नहीं बेच देते?

तुलसी का कहना था कि मैं मर्द हूँ; दस बार बाहर-भीतर दौड़-धूप करूँगा तो खाना मिल भी सकेगा। तू औरतबानी, तेरा क्या, दरवाज़ा बन्द करके कोठरी में पड़ी भी रह सकती है।

तमाशाई दोनों तरह के थे। तुलसी के पक्ष वाले ही ज़्यादा थे। नजीरें पेश की जा रही थीं—कइयों के घरों में औरतें इस तरह नंगी बैठी हैं।

पुरुष-शक्ति के आगे अन्त में स्त्री को झुकना ही पड़ा। गहरी चोट खाकर अशक्त नागिन की तरह तुलसी की पत्नी अपनी लाचारगी पर फुफकार उठी। कुचला जाने पर अहं उत्तेजित होकर उसके भूखे शरीर में फुर्ती ले आया था। आँसुओं ने बहुत दिनों से आँखों में आना छोड़ दिया था, मगर लाज से विदा लेते हुए आज उसका दिल पानी-पानी होकर बहने लगा। जाते-जाते कह गयी—"औरतों की लाज भी बेचकर खा लो! कै दिन पेट भर लोगे।"

तिनकौड़ी अच्छे दिनों में नम्बरी पियक्कड़ों में गिना जाता था। आज भी उसी रिन्दी फिलासफी में अपने दिल के दर्द को छिपाये रखता है। तुलसी की घरवाली के फिकरे पर

उसने आखिरी चुटकी छोड़ी—'-लाज ही नहीं लक्खी, औरतें भी बिकेंगी। बाकी रहा पेट—हें:ऽ हें:ऽ हें:ऽ!"

गले से बनावटी हँसी निकालकर तिनकौड़ी ने सच्चाई को मनहूसियत का जामा पहना दिया।

कोलाहल! गला घुटते हुए कमज़ोर, मजबूर जंगली जानवरों का बेबस गुस्से से भरा हुआ करुण आर्तनाद!

अपने खयालों से चौंककर पांचू ने मोनाई की दूकान की तरफ़ देखा। लोग आपे में न थे। दूकान पर चढ़े दौड़ते थे। जोश में अपनों को भी कुचलते हुए बढ़ रहे थे। अपनी मर्मान्तक पीड़ा और क्रोध को जताने के लिए उन्हें अपनी हज़ारों बरस की भाषा में ढूँढे दो अक्षर भी न मिले; आदिम युग के मनुष्य की तरह, अपने प्राकृतिक रूप में, व्यक्ति की पीड़ा समाज बनकर चीख उठी।

ठठरीनुमा पेड़ के नीचे बैठे हुए पांचू के कानों से लेकर आत्मा तक, उस चीख की दिल पर आरा-सा चलाती हुई गूँज से बिंध गयी।

हज़ारों साल की अनुभवी संस्कृति के नीचे दबी हुई भाषा को मानव ने ढूँढ लिया—चारों तरफ़ से मोनाई को घेरकर गालियाँ और सख्त बातें सुनायी जाने लगीं।

दूर से कुछ भी समझ में नहीं आता था। पांचू सोचने लगा, "ये माज़रा क्या है? जान पड़ता है, मोनाई ने कोई नया टारपीडो चलाया है।" वह उठकर दूकान के पास गया। आसपास के दूसरे तमाम लोग भी दुकान की तरफ़ भागे।

मोनाई कहता था, "चावल तो सरकार के पास हैं। पैसे ले जाओ।"

लेकिन पैसों का होगा क्या? पैसे खाये नहीं जा सकते। उन्हें देख-देखकर अपना जी भले ही भर लो। सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात—ये सब पेट भरे का ढकोसला हैं। भूखे के लिए इनका कोई मोल नहीं। लाखों-अरबों का हीरा अगर खा लिया जाये तो वह जान का दुश्मन बन जाता है। ज़हर को आदमी ने कोहेनूर का रुतबा दिया है। खुदी के प्यार में आदमी इतना चालाक बना कि खुद को ही अपना दुश्मन मान बैठा। चमकते हुए पत्थरों और धातुओं से आदमी अपनी खुदी की कीमत आँकने लगा। स्वार्थी व्यक्ति मुर्दा चमड़े की थैलियों में सोने-चाँदी की चमक को भरकर अपने कलेजे को ठंडा करता है; जबकि ज़िन्दगी समाज के लाखों प्राणियों के पेट की खाली थैलियों से अपना हक पाने के लिए ज़िद करती है—जोश में तड़पती है। और वह अपना हक ले के छोड़ेगी।

खाज के कारण खड़िया की तरह निकल आने वाली खुरदरी चमड़ी में पसलियों की लकीरें चमकती थीं। कइयों के हाथ-पैरों में सूजन आ गयी थी। शरीर में जगह-जगह से पानी रिसता था। गर्मी, सूजाक और खून की बीमारियों से सड़े हुए शरीर एक-दूसरे से रगड़ते,

धक्कम-धक्का करते, मोनाई पर अपना अपार, अकर्मण्य रोष प्रकट करने के लिए उसकी दुकान पर चढ़े जा रहे थे। इतनी दुर्गन्धपूर्ण देहों से घिरे हुए मोनाई का दम घुटने लगा। शिकायतें चारों तरफ़ से उसके ईमान को घेरकर उसका नाकों दम कर रही थीं—"तुमने हमें पहले क्यों नहीं बताया कि चावल नहीं है। तुमने हमारा सामान क्यों खरीदा? हमें धोखे में क्यों रखा? मोनाई, हज़ारों की आत्मा को तड़पाकर तुम सुखी नहीं हो सकते। तुम्हारे रोम-रोम में कीड़े पड़ेंगे। हमारे पेट की ज्वाला में तुम्हारी लाखों की दौलत जलकर राख हो जायेगी। तुम कुत्ते-बिल्ली की मौत मरोगे। सड़-सड़कर मरोगे..."

मोनाई उठकर गरज उठा—"अभी तो तुम लोग ही सड़-सड़कर मर रहे हो। मेरा क्या दोस है? मैं किसी का गला नहीं काटता; किसी के घर डाका नहीं डालता। जो रूखी-सूखी भगवान जी मुझे इस बैपार में दे देते हैं उसी से संतोख कर लेता हूँ। सरकार से क्यों नहीं माँगते, जिसने कंट्रोल किया है? चलो, जाओ। भीड़ हटाओ मेरी दुकान से। अपने-अपने पैसे लो और चल दो।"

पल-भर के लिए मोनाई का रौब जमा। उसके तमककर खड़े होते ही लोग एक कदम पीछे हट गये थे; मगर ठगे जाने की खीझ लोगों में मोनाई के रौब से भी ज़्यादा तेज़ थी। भूखे भेड़ियों की तरह लोग उसके ऊपर टूट पड़े। बुरी तरह से उसकी गत बनाने लगे। हर चीज़ फेंकनी शुरू कर दी। कुछ लोग उसके घर के दरवाज़े तोड़ने लगे। अज़ीम अपनी जान बचाकर भाग निकला।

बदले में जोश में भीड़ मोनाई के घर के अन्दर भी जा घुसी। घर की हर चीज़ तोड़ी-फोड़ी जाने लगी। मोनाई की पत्नी छाती कूट-कूटकर लोगों को कोसने लगी। उस पर भी मार पड़ी। न्याड़ा पिटा। मोनाई पर तो लोगों ने थूका, उसके बाल नोचे, उसे बुरी तरह से मारा। घर में लूट-पाट मचा दी। जो चीज़ सामने आयी उसी पर गुस्सा उतारा जाने लगा। कुछ लोग रसोईघर में घुस गये। तैयार रसोई को खाने के लिए आपस में भी चल गयी। सारा अन्न इधर-उधर बिखर गया। घर की एक-एक कोठरी उलटकर रख दी गयी। कुछ लोगों ने तहखाने का पता पा लिया। भूख की सम्मिलित शक्ति ने दरवाज़े तोड़ दिये।

गोदाम में बोरियों पर बोरियाँ चुनी हुई थीं। सारा गाँव महीनों खाये और अन्न न चुके—इतनी! उन्हें देखकर जनता खुशी से पागल हो उठी। चारों ओर कोलाहल और भयानक अट्टहास गूँज उठा।

मोनाई की पत्नी और न्याड़ा चीख-चिल्ला रहे थे। मोनाई पिट-पिटाकर, चुपचाप निर्विकार मुद्रा से खड़ा-खड़ा अपने घर की लूटपाट को देखता रहा। चावलों की बोरियाँ चीरी जा रही थीं। चावल गोदाम में बिखर रहा था। जनता हँस रही थी।

अचानक हँसी की गूँज में गोलियों की आवाज़ गूँज उठी। कई लोगों के लगी। लोगों ने देखा, दयाल के सिपाही गोलियाँ दाग रहे थे, डंडे बरसा रहे थे।

खुशी मौत की चीखों-कराहों में बदल गयी।

अज़ीम दयाल ज़मींदार के लट्ठ और बन्दूकधारी सिपाहियों को लेकर लौटा था। वह बड़े जोश से सिपाहियों को लोगों पर डंडे और गोलियाँ बरसाने की ताकीद कर रहा था।

चारों तरफ़ छटपटाहट, चारों तरफ़ चीख-पुकार। खून के दागों से मोनाई का घर रंग गया। मरभुखों की लाशों से मोनाई का घर श्मशान बन गया। सत्तर-अस्सी आदमियों में से बीस-पच्चीस भूख से शहीद हो गये।

मोनाई बचा लिया गया। न्याड़ा बच गया। मोनाई की पत्नी रो-रोकर कोसने लगी। भीड़ तितर-बितर होने लगी। जान बचाने के लिए इधर-उधर भागने लगी। हिम्मत छूट गयी। जनता के हाथ में एक बार चावल आकर फिर चला गया। इतनी जानें चली गयीं। हार का गुस्सा आँखों की लाली में दफन हो गया। भीड़ प्रलाप करती हुई, डगमगाते हुए पैरों पर अपनी हार का बोझ डालकर घर से बाहर भागने लगी।

पांचू दूर एक कोने में खड़ा हुआ यह सारा कांड देख रहा था। जनता का भीषण विद्रोह भी देखा और उसका अमानुषिक दमन भी। आबरू और स्वार्थ ने उसे कायर बनाया था। मध्यवर्ग का, कुलीन, सद्गृहस्थ, अंग्रेज़ी पढ़ा-लिखा हेडमास्टर भला इन छोटे लोगों का साथ कैसे दे सकता है? जब लोग न्याय के लिए लड़ रहे थे, तब भी वह दुबका खड़ा रहा, और जब लोगों पर अन्याय की मार पड़ने लगी तब भी वह वैसे ही दुबका रहा। हाँ, दिमागी ज़ोर बराबर दिखाता रहा। जब लोग मोनाई के यहाँ लूट-पाट मचा रहे थे तब पांचू जोश के साथ खुश था; और जब उन पर लाठियाँ, गोलियाँ बरसने लगीं तो वह जोश के साथ मोनाई, अज़ीम और दयाल के साथियों का गला घोंटने की बात सोच-सोचकर अपने मन को मसोसकर खड़ा रहा। वह 'बुद्धिमान' आदमी है। उसके दिल में आबरू का डर है। अपने घरवालों से और खुद अपने से उसे प्यार है। बेचारा जनपक्ष का साथ कैसे दे सकता है? मोनाई से तो उसे चावल लेना है। जनपक्ष का साथ देने से उसे और उसके परिवार को भूखों मरना पड़ेगा। लिहाजा वह अपना स्वार्थ और आबरू सँभाले हुए, दुबककर खड़ा रहा। हाँ, तमाशा देखने के शौक में वह अब तक यहाँ खड़ा रहा, यह क्या कुछ कम वीरता है? अपनी कायरता के प्रति अचेतन, पूँजीपतियों के अत्याचार और श्रमजीवी किसानों की दीन दशा के लिए उसके मन में ग्लानि और दुःख की लहरें उठ रही थीं।

मोनाई अब परिस्थिति का राजा बन गया था। उसके गोदाम में, उसके आँगन और दालान में खून से सनी हुई लाशें पड़ी थीं। उसका सारा घर अस्त-व्यस्त हो गया था, चीज़ें टूटी-फूटी और लुटी हुई पड़ी थीं। उसके घर में कई जख्मी पड़े थे। खून बह रहा था। कइयों के जीव निकलने से पहले तड़प रहे थे; प्राण छोड़ने की पीड़ा कराह-कराहकर दीवारों में भी दर्द पैदा कर रही थी।

अपने चारों ओर का वातावरण देखकर मोनाई मन ही मन काँप उठा। इन जख्मियों और मुर्दों को देख-देखकर उसका दिल दहल रहा था। मन ही मन वह प्रार्थी था—"भगवान जी! मेरा कुछ भी दोष नहीं है। तुम तो घट-घट-वासी, सब कुछ देखनहार हो, अन्तरज़ामी हो,

दीन-दयाला!"

अज़ीम अपनी शेखी बघार रहा था कि किस तरह उसने दयाल ज़मींदार से जाकर मदद माँगी, और इन सिपाहियों को लेकर यहाँ आया।

दयाल के सिपाही अपनी बहादुरी की डींग हाँककर मूँछों पर ताव दे रहे थे। लाशों को गालियाँ दे रहे थे और मोनाई से अपनी बहादुरी के लिए इनाम माँग रहे थे। मोनाई ने चारों सिपाहियों को पाँच-पाँच रुपये दिये। सिपाही उस पर रौब जमाकर पाँच-पाँच और माँगने लगे। मोनाई अपने नुकसान की दुहाई देने लगा; गाँववालों को, अपने घर में पड़े हुए जख्मियों को, लाशों को गालियाँ देने लगा, गिड़गिड़ाने लगा—मगर उसे पाँच-पाँच रुपये और देने ही पड़े।

मोनाई पांचू की तरफ़ देखकर कहने लगा—"देख लिया मास्टर बाबू, ये है ऐसान का ज़माना! होम करते हाथ जल गये। मेरे मन में तो धरम उपजा कि लाओ, चार डबल का नुकसान ही सही, इनके चिथड़े-गुदड़े खरीद लूँ; बिचारे कहीं से कंट्रोल का चावल ला के अपना पेट भर लेंगे। मैं तो मन में बिचारे-बिचारे कहूँ और ये सुसरे ऐसे पापी निकले कि उपकार का बदला मुझे यों दिया।"

पांचू चुपचाप खड़ा रहा।

अपनी पीठ सहलाते हुए मोनाई बोला—"धरम का ज़माना नहीं रहा बाबू। सत् कहता हूँ। सालों ने ऐसी मार मारी है कि हड्डियाँ कड़कड़ाय के धर दीं। कमीने, सुसरे, ज़माने-भर के पापी—ससुरे, घर की औरतों की इज़्ज़त तक तो बेच के खा गये। इत्ता पापाचार फैलाया कि भगवान जी भी तिराह-तिराह करने लगे। सत् कहता हूँ। भला बताओ, कित्ती नीचता है कि मेरी घरवाली बिचारी पर भी हाथ उठा दिया! दुरदसा कर डाली बिचारी अबला की। मेरे न्याड़ा को पीटा। राच्छस कहीं के!"

"क्या हुआ मोनाई?" दरवाज़े से एक रौबदार आवाज़ आयी।

मोनाई, अज़ीम, पांचू और वे सब गोलीमार, लट्ठमार सिपाही चौंककर दरवाज़े की ओर देखने लगे; अदब से खड़े हो गये। मोनाई हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए आगे बढ़ा। दयाल ज़मींदार आये थे।

मलमल का चुना हुआ कुर्ता, कलाबत्तू किनार की चुनी हुई बारीक धोती, गले में बिना शिकन पड़ा हुआ रेशमी दुपट्टा, बायीं कलाई में सोने की घड़ी, दोनों हाथों की उँगलियों में चार नगीने जड़ी हुई अंगूठियाँ दमक रही थीं। दाहिने हाथ में हाथीदाँत की मूठवाली खुशनुमा छड़ी, पैरों में पम्प शू, कानों में इत्र की फुरहरी, मुँह में पान, आँखों में रात की पी हुई मद का खुमार, साथ में चार हाली-मुहाली—दयाल ज़मींदार ने अपनी चरणरज से मोनाई केवट का घर पवित्र किया था। दालान, तहखाने और आँगन में पड़ी हुईं लाशों और घर की टूटी-फूटी चीज़ों का उन्होंने निरीक्षण किया। मोनाई बराबर हाथ जोड़े हुए उनके पीछे-पीछे घूमता और बीच-बीच में रोकर कहता जाता—"मैं तो लुट गया अन्नदाता!"

दयाल ज़मींदार ने तहकीकात की। सारा हाल सुना। बदमाश गाँववालों को गालियाँ दीं और यह भी बताया कि दारोगा साहब को खबर भेज दी गयी है। दारोगा के आने से पहले, दयाल ने मोनाई को सलाह दी, कि तहखाने से लाशों को हटवाकर चावल के गोदाम में छिपा दिया जाये।

फौरन ही दयाल बाबू के लिए एक चौकी पर ऊँची गद्दी लगा दी गयी। वे उस पर बैठ गये। दयाल का छतरीबरदार छतरी को बगल में दबाकर उनको पंखा झलने लगा। एक नौकर ने पान का डिब्बा पेश किया, दूसरा उगालदान लेकर आगे बढ़ा। दयाल बाबू ने मुँह में दबी हुई गिलौरी उगालदान में थूकी, दो नये पान जमाये, चुटकी-भर जर्दा खाया। नौकर ने रेशमी रूमाल पेश किया, दयाल बाबू ने हाथ पोंछ लिये। फिर पांचू मास्टर को इज़्ज़त बख्शी, अपने पास बुलाकर बिठाया, दो पान खिलाये और सख्त गर्मी की शिकायत करने लगे। पंखेवाले ने ज़ोर से पंखा झलना शुरू किया।

दयाल ज़मींदार से आदर पाकर पांचू के दबे हुए बड़प्पन को बढ़ावा मिला। वह सोचने लगा कि एक लक्ष्मी का पुत्र है और दूसरा सरस्वती का पुत्र—दोनों एक ही आसन पर बैठने के योग्य हैं।

लक्ष्मी के पुत्र की गंगा-जमुनी पनडुब्बी से केवड़े में बसाये गये पान के बीड़े खाकर सरस्वती के पुत्र ने अभिमान से मस्तक उठाकर अपने चारों ओर देखा। मोनाई दयाल ज़मींदार के पैरों के पास ज़मीन पर बैठा हुआ था। उसकी मुद्रा बड़ी ही दयनीय थी और वह ज़मींदार को हाथ जोड़ रहा था। पल-भर के लिए बड़ी ही हिकारत के साथ पांचू की नज़रें मोनाई पर ठहरीं, फिर उसे अपनी चोरी की याद आ गयी। मोनाई जैसा नीच उसके चोरी से स्कूल की बेंचें बेचने के राज को जानता है। आबरू के भय ने पांडित्य के अभिमान को ताक पर रख दिया।

गद्दी पर बैठा पांचू सिहर उठा। नज़रें फिरा लीं। सामने, धूप-भर आँगन में मरभुखों की लाशें ज़मीन को अपने खून का तर्पण देकर दयाल ज़मींदार की आँखों के सामने पड़ी थीं—उसकी आँखों के सामने भी थीं। वह दयाल ज़मींदार के साथ बैठा था।

पांचू का बदन काँप उठा। अपनी कमीज़ की बाँहों को छूती हुई दयाल ज़मींदार के कुर्ते की चुन्नट उसे इतना बड़ा बंधन मालूम पड़ने लगी कि वह उससे मुक्त होने के लिए अधीर हो उठा। मगर सरकार वह जायेगा कहाँ? दयाल ज़मींदार तो बैठे हैं पूरी चौकी पर टाँगें फैलाकर और पांचू बैठा है चौकी के 1/8वें हिस्से में, कोने में, दुबककर।

पांचू अब महसूस करने लगा कि उसका दर्जा समाज में दयाल ज़मींदार के बराबर नहीं है। दयाल ज़मींदार की कृपा से ही वह इस चौकी पर बैठकर पान के दो बीड़े पाने का सौभाग्य प्राप्त कर सका है।

पांचू की नज़र मोनाई की तरफ़ गयी। और उसने सोचा कि उसका स्थान मोनाई के बराबर भी नहीं है। मोनाई उस पर एहसान कर सकता है; लेकिन ऊँच जाति और नीच जाति

की ज़बर्दस्ती गाँठ में बँधे होने के कारण मोनाई उसका आदर करने को बाध्य भी है। पांचू मोनाई के मखमल में लपेटे हुए चमरौधे जूतों से बहुत डरता है। उसके पांडित्य को आघात लगता है। उसके शहरी कल्चर को चोट लगती है। उसके कर्मठ जीवन को चोट लगती है; और उसकी कुलीनता को बड़ा दुःख होता है। फौरन ही घृणा उपजी। उसने सोचा—"नफ़रत के साथ सोचा, लाख भी हो लेकिन वह मोनाई की तरह किसी के सामने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाता हुआ हरगिज़ नहीं बैठेगा।"

अपनी चारित्रिक उच्चता से पांचू के अहं को सहारा मिला। उसने नज़रें फिरा लीं। नहीं, उसका स्थान मोनाई के बराबर हरगिज़ नहीं।

सामने आँगन में अधनंगी, जख्मों से भरी हुई लाशों की ओर पांचू ने देखा; हठपूर्वक देखता रहा। इन्हें दयाल ज़मींदार के लिए आज अदब का होश नहीं। इनके ऊपर आज मोनाई के कोई एहसान नहीं। इन्हें भूख का होश नहीं, अपना होश नहीं। ये लाशें उन मनुष्यों की हैं जो ईश्वर से मिला हुआ अपना अधिकार वापस पाने के लिए लड़ते-लड़ते मरे। कर्मवीरों से बढ़कर जग में कोई ऊँचा नहीं। इसलिए आज ये लाशें मोनाई से ऊँची हैं; दयाल ज़मींदार से ऊँची हैं; शाही-सम्राटों से भी ऊँची हैं; दुनिया की हर चीज़ से ऊँची उठ गयी हैं। इनके ऊपर आज किसी का ज़ोर नहीं रहा है। ये आज आज़ाद हो गयी हैं।

काश कि हक को पहचानने की समझ कुछ और पहले आ गयी होती। इन्हें ही नहीं, सारे देश को अगर यह समझ आ गयी होती तो आज यह दुर्दशा भी न होती। गुलामी का तौक पहनकर मरना मानवता के नियम के विरुद्ध है। हम अगर प्राण नहीं ले सकते तो कोई हर्ज नहीं। लेकिन हममें प्राण देने की तो शक्ति है। और यह शक्ति बहुत बड़ी शक्ति है। प्राण लेनेवाला उस पीड़ा को सपने में भी नहीं जान पाता, जिसको प्राण देनेवाला अनुभव करता है। प्राण देनेवाला एक अनुभव लेकर मरता है, जिससे उसे सन्तोष होता है। और प्राण हरनेवाला? वह बहुत बड़ा कायर है। वह अपनी कायरता को बार-बार हत्याएँ करके छिपाता है, इसलिए चिन्ता कभी उसका साथ नहीं छोड़ती। दिन-रात एकाग्र होकर सिर्फ़ अपने थोथे रौब को ही संभालते रहना—भला यह भी कोई जीवन है। एक क्षण के लिए भी मुक्ति नहीं, शान्ति नहीं, डर से घिरे हुए—हुँ:! गद्दी के गुलाम!

एक ही नज़र में दयाल बाबू पांचू को बहुत तुच्छ दिखने लगे। अपने बड़प्पन पर अभिमान हुआ। दयाल बाबू के तकिये पर कोहनी टेककर वह ज़रा अकड़कर बैठ गया।

पांचू फिर सोचने लगा, "यह मिट्टी का माधो, सदा झूठी तारीफों की दुनिया में रहनेवाला, यह अक्ल का दुश्मन मुझसे हज़ार दर्जा नीचे है। विरासत में दौलत मिल जाने से कोई आदमी बड़ा नहीं हो सकता। बड़ा वह है, जो अपने हक के लिए लड़ते-लड़ते प्राण देने की हिम्मत रखे।"

फिर पांचू ने अपने-आपमें महसूस किया कि वह प्राण देने की हिम्मत रखता है। "मेरा स्थान धूप में तपती हुई इन लाशों के बराबर है।"

पांचू फिर गौर से लाशों की तरफ़ देखने लगा। फिर उसे लगा कि नहीं, उसमें और इन लाशों में थोड़ा-सा भेद है। इन लाशों में प्राण देने का विश्वास अगर समय पर आ गया होता —तो? तो भी ये मरते ही, मगर इतना भुगतकर नहीं! वे आज ऐसी मौत मरते, जैसी कि... जैसी कि मैं अपने लिए चाहता हूँ।

फिर पांचू उन तमाम बड़े-बड़े नेताओं की श्मशान-यात्रा के शानदार जुलूसों की बातें याद करने लगा जिन्हें या तो उसने आँखों से देखा था या पढ़ा-सुना था। वह अपने लिए बड़ी आदरणीय मृत्यु की कल्पना करने लगा और उसी में खो गया।

5

मोनाई के मन्दिर के द्वारे, घूरे पर, मेला लगा था चील और कौए आसमान पर, कुत्ते और आदमियों की फ़ौज ज़मीन पर थी, और घूरे पर पड़ी हुई जूठी पत्तलों के लिए युद्ध चल रहा था।

मोनाई ने प्रेत-भोज दिया था। दस दिन पहले उसके घर पर चौबीस हत्याएँ हुई थीं। उन भूखे प्रेतों को शान्त करने के लिए कंठी-केसर छाप भगत मोनाई ने हर एक के नाम पर ब्राह्मण न्योते थे।

गाँव के बड़े-बड़े दिग्गज परिवारों का चूहा-चूहा तक जीमने आया था। नाते-गोते के लोग आये थे, गोसाईं लोग भी आये थे। सत्तर-अस्सी आदमियों का भोजन था।

मरभुखे सब थे, लेकिन ब्राह्मण सब नहीं। मरभुखों और ब्राह्मणों में भेद है, यह मोनाई के भोज ने बताया। अकाल न होता तो कभी इसका पता भी नहीं चलता कि केवटों के यहाँ ब्राह्मण का भोजन करना शास्त्र-सम्मत है। जब से भगवान रामचन्द्र का चरणामृत केवटों ने पान किया है, तब से वे पवित्र हो गये हैं। सात-सात, आठ-आठ रोज़ के भूखे ब्राह्मण परिवार मोनाई केवट के मन्दिर में भोजन करने जा रहे थे। अनेक भूखी आँखें उन्हें ललचाई हुईं दृष्टि से देखती थीं। दो पछाँही लठैत सिपाही मन्दिर के दरवाज़े पर खड़े थे। अन्दर न सही, लोग दरवाज़े पर खड़े होकर सिर्फ़ भोजन करने के दृश्य को देखने के ही भूखे थे। कइयों ने अरसे से किसी को खाते हुए नहीं देखा था, लेकिन उन पछाँह के लठैतों की बड़ी-बड़ी मूँछों, लाल-लाल आँखों, ज़बर्दस्त घुड़कियों और लाठी की खटखट से किसी का सामने की तरफ़ जाने

का साहस न होता था।

लड़कों की टोली, जिसमें पाँच से लेकर दस-बारह बरस तक के लड़के शामिल थे, घूम-फिरकर डगमगाते हुए पैरों से मन्दिर के दरवाज़े के सामने जाते थे। नंग-धड़ंग, हाथ-पैर सूखे हुए, पेट आगे, डगर-डगर आँखों से भोजपुरिये लठैतों को देखकर अँगूठे चूमते थे। पत्तलों पर पत्तलें बाहर आ-आकर पड़ती थीं। ऊपर आसमान पर चीलें मँडराती थीं। कौए झुंड के झुंड आ-आकर मन्दिर की मुँडेरों पर बैठते और अपने दाँव की घात में घूरे की तरफ़ देखते हुए काँव-काँव करते थे। ज़मीन पर आदमियों और कुत्तों में बाज़ी लगी थी। चीलों की चोंचें कभी-कभी जूठी पत्तलों से चूककर झुके हुए आदमियों को खोपड़ियों पर अपनी पूरी शक्ति के साथ पड़ती थीं। कुत्तों के पंजे और जबड़े अपने हक के लिए जान लड़ा रहे थे। और भूखा मानव इन सबसे लड़कर तथा स्वार्थ के लिए अपने से भी लड़कर, एक मुट्ठी जूठा अन्न पाने के लिए जी-जान से भिड़ा हुआ था।

सुनकर, यह दृश्य देखने के लिए पांचू भी वहाँ आ पहुँचा। परिवार के साथ आज छः रोज़ से पांचू भी भूखा है। मोनाई ने उस दिन उसके गले पर भी छुरी फेर दी थी। हिसाब माँगने पर मोनाई ने साफ़ कह दिया—"मेरा तो पैसा डूब गया बाबू! सारी बिंचें सड़ी हुई थीं। जलाने की लकड़ी के भाव से भी खरीदने को कोई तैयार न हुआ। दस रुपये भी न निकले। कैदे से मेरे दो सेर चावल तुम पर चढ़ गये, लेकिन हम यह समझ के गम खा लेंगे कि चलो, बाम्हन-ठाकुर की भी थोड़ी-बहुत सेवा हो गयी।"

इस नये मखमली चमरौधे ने तो पांचू की खोपड़ी पिचका दी। पल-भर तो वह चौंककर मोनाई के मुँह की तरफ़ ही देखता रहा। चेहरे पर कोई शिकन तक नहीं, कोई तिकड़म नहीं। भोला-भाला तिलक-छाप लगा हुआ चेहरा, होंठों पर वही एवर-रेडी दयनीय मुस्कान और बात करने के ढंग में वही दीनता, वही दृढ़ता सदा की तरह आमने-सामने देखकर बातें करना, कहीं से भी खोट नहीं, कहीं से मज़ाक या जालसाजी की बू नहीं।

पांचू स्तब्ध रह गया। निराशा ने उसे चारों ओर से घेर लिया। आँखों में आँसू छलछलाने की धमकी देने लगे। लेकिन पांचू अपनी हार किसी के सामने दिखाना पसन्द नहीं करता और मोनाई को जवाब देकर करे भी क्या? तेज़ी से वह बाहर चला आया।

प्रेत-भोज की बात पांचू के सामने ही दयाल ज़मींदार ने उठायी थी। दारोगा साहब भी वहीं बैठे थे। दो हज़ार नकद दारोगा साहब को, पाँच हज़ार रुपये वार-फंड में और प्रेत-भोज का दंड सिर पर लेकर मोनाई को दयाल ज़मींदार के समाज और दारोगा साहब की सरकार से किसी तरह क्षमा मिल गयी। रपट में दंगे का ब्यौरा दर्ज हो गया। गवाहों में हेडमास्टर पांचू गोपाल मुखर्जी का नाम लिखा गया। खौर चलाते समय मास्टर मोशाय के ऊपर मोनाई ने दो सेर चावलों का एहसान भी जमा दिया था।

दूर, बाँस के पुल के पास बैठा हुआ पांचू मोनाई के मन्दिर के सामने जूठी पत्तलों के लिए चील, कौए और आदमी में होने वाली लड़ाई को देख रहा था। पागलों की तरह, हिंसक दृष्टि

से हर एक को देखते हुए लोग लड़ रहे थे। चील की चोंच से एक बच्चे के सिर में घाव हो गया। वह वहीं गिर पड़ा था। लोग उसे रौंदते हुए घूरे पर चढ़ दौड़े।

पांचू ने बैठे-बैठे यह अनुमान लगा लिया कि बच्चा मर गया होगा। पास से देखने के लिए उठकर जाने की तबियत न हुई। लेकिन वह सोचने लगा, "लड़के की चीख नहीं सुनायी दी। दूसरा विचार फौरन ही आया, आवाज़ों में दम ही कहाँ रहा है। जान छोड़ते हुए, अपने भरसक पूरे ज़ोर के साथ चीखा होगा, लेकिन उसकी चीख में फर्लांग-भर तक भी पहुँचने की शक्ति न रही होगी।"

मौत पांचू के लिए अब बहुत आकर्षण नहीं रखती; आँखें कायदे से आदी हो गयी हैं। छः रोज़ से भूख की तकलीफ को भोगते हुए उसे अपने दिल को बेहद सख्त बनाना पड़ा है। पिछली बार दयाल ज़मींदार का आसरा था—आस बँधी हुई थी। फिर मोनाई से मिल गया। लेकिन इस बार तो उसे कहीं से भी चावल पाने की आशा ही न थी। घर में दो-चार मामूली-से सोने-चाँदी के गहने पड़े तो हैं, लेकिन उन्हें बेचे किसके हाथ? मोनाई के यहाँ जाओ तो चौथाई दाम भी न मिलेंगे। दयाल ज़मींदार से सौदा कर ही नहीं सकते, जो उठाकर दे दें उसे ही सर-माथे पर चढ़ाना पड़ता है। और जहाँ तक बस चलता है, दयाल ज़मींदार कौड़ी को भी मोहर की तरह दाँतों से पकड़ते हैं। मधुपुर की हाट में सर्राफों और पुलिस के सिपाहियों ने मिलकर एक नयी तरकीब निकाल रखी है। जो गहने बेचने आता है उसी को पुलिस चोर करार देती है। भरे बाज़ार में आबरू जाने के भय से लोगों को आधी रकम पुलिस को भेंट करनी पड़ती है, और आधी में दुकानदार घिसौनी और गलाई निकाल लेता है। साँस लेने पर भी रिश्वत और लूट देनी पड़ती है। घर में यह तय हुआ था कि जब मुसीबत बर्दाश्त से बाहर हो जायेगी तब एक दिन वे बचे-खुचे गहने बेचकर खा लेंगे। मगर उनकी बिक्री से सिर्फ़ एक ही दिन खाया जा सकता है, इसलिए मामला हर रोज़ दूसरे दिन पर टल जाता था। पार्वती माँ कहती थीं—"एक दिन का तो सहारा है, लेकिन इस सहारे की आस में दिन गुज़र जाता है।"

सहसा पांचू के पास से ही एक मादरज़ाद नंगी औरत दौड़ती हुई घूरे की तरफ़ चली गयी। सभ्यता के एवरेस्ट-युग में जन्म लेकर पांचू खुले आम दिन-दहाड़े, ऐसी बेशर्मी से भरी हुई घटना को देखने का आदी न था। पांचू ने देखा, उस औरत में चीलों, कौओं, कुत्तों और आदमियों से ज़्यादा जोश था। जब वह घूरे के पास पहुँची तो सब अलग हो गये।

बीते हुए दिनों की चेतना, अनहोनी घटनाएँ देखकर बार-बार चौंकती है, मगर छिन-भर के लिए ही। दस दिन पहले कंट्रोल के भाव में मोनाई से चावल पाने की आशा में बहुत-से लोगों ने अपनी स्त्रियों के तन से फटे-चिथड़े तक उतारकर फेंक दिये थे। बाद में चावल भी न मिला और कपड़े भी चले गये।

पुरुषों ने उजड़े हुए घरों में रहना ही छोड़ दिया था स्त्रियों को मजबूर होकर चारदीवारों के अन्दर बन्द होकर बैठना पड़ा। वे घर से बाहर नहीं निकल सकतीं। किसी को देख-सुनकर अपना गम गलत करने से ही वंचित कर दी गयी हैं। कोठरी के अन्दर बन्द, चार-चार मनहूस

दीवारों को निहारा करो—निहारा करो...और कोई चारा भी तो नहीं? भूख की उलझन के ऊपर लाज की यह कैद और भी जुल्म ढा रही थी। पिछले पाँच-छः रोज़ से जगह-जगह घरों में औरतों के आपस में लड़ने-झगड़ने की आवाजें दिन-रात सुनायी देती हैं। अच्छी-अच्छी औरतें एक-दूसरे के लिए गालियों का प्रयोग करती हैं, जिन्हें कभी धोखे से सुन लेने पर भी उनके गाल कानों तक लाल हो उठते थे। पांचू उन औरतों की बात सोचता था जो अपने घरों में अकेली ही कैद हैं। जहाँ दो-चार हैं वे आपस में लड़-झगड़कर, गाली-गलौज करके, किसी तरह अपना वक्त तो पूरा कर लेती हैं, लेकिन जो अकेली कैद होंगी उन बेचारियों का तो वक्त भी न कटता होगा—वही दीवारें, वही दरवाज़े, कोठरी की हर चीज़ वही। किसान के घर की छोटी-सी दुनिया में यह एक कोठरी न जाने कितनी ही सुखद और दुःखद स्मृतियों से भरी हुई होगी। पांचू इस पर कल्पना करने लगा—नववधू बनकर घर की स्त्री ने शायद इसी कोठरी में अपने पति के साथ सुहागरात मनायी होगी; अपने बच्चों को जन्म देकर माँ बनने का सौभाग्य उसे शायद इसी कोठरी में प्राप्त हुआ था; फिर अकाल के शुरू में इसी कोठरी से किसान के घर की 'बहुमूल्य' चीज़ें एक-एक कर बिकने गयी होंगी। आज वही कोठरी लाज की मारी, भूखी बेकस औरतों का दम मौत की तरह घोट रही होगी।

जूठन की खबर सुनकर यह औरत अगर लाज की कैद को तोड़कर बाहर चली आयी तो उसने कुछ बुरा नहीं किया। हमारी आँखें इसमें गुनाह क्यों देखती हैं? गुलाम पुरुष अपनी गुलामी का पूरा बोझ स्त्रियों पर डालकर हल्का होना चाहता है—औरत की यह गुलामी पांचू को बुरी तरह से खलने लगी। उसे गुस्सा आ गया।

मोनाई के मन्दिर से ब्राह्मण चेहरे पर ज़बर्दस्ती तृप्ति का भाव लादकर निकल रहे थे। उनकी हालत, पांचू ने देखा, और भी खराब थी। अपनी कई-कई रोज़ की भूख को ब्राह्मणों ने आज पूरा-पूरा मुआवजा देने का मौका पाया था। लोगों ने इस कदर बदनीयत होकर खाने की कोशिश की थी कि वह भोजन ही उनके लिए ज़हर बन गया। मन्दिर से उतरकर दस कदम चलते ही कमज़ोर आँतों पर अन्न का बोझ पड़ने के कारण कइयों के पेट में ज़ोर का दर्द होने लगा। कइयों को चक्कर आने लगा और बहुतों को कै होने लगी।

पांचू की आँखों के सामने दो दृश्य थे। घूरे के पास अब्राह्मण मरभुखों और जानवरों की लड़ाई, तथा दूसरी ओर इन पेट भरे हुए ब्राह्मणों का यह हाल। जगह-जगह लोग पड़े जाते हैं, उठने की ताब नहीं। जगह-जगह लोग कै कर रहे हैं। सबसे अधिक वीभत्स दृश्य पांचू ने यह देखा कि एक की कै पर दूसरा मरभुखा उसे चाटने के लिए बड़ी आतुरता के साथ टूट पड़ा।

पांचू से यह देखा न गया। वह एकदम वहाँ से हट गया। इस दृश्य ने उसके मस्तिष्क को उत्तेजित कर दिया। आदमी को गुलाम बनानेवाले पहले सत्तावादी मानव ने क्या कभी यह

सोचा था कि जिस बीज को वह बो रहा है उसकी जड़ें कितनी गहरी और कितनी दूर तक अपना अधिकार जमायेंगी! गुलामी किस हद तक मनुष्य को स्वामी बनाकर उसके अहं का पोषण करती रहेगी और दूसरे को कब तक इस तरह मजबूर करती रहेगी कि किसी की कै से उगली हुई गिलाज़त को खाने के लिए भी वह खुशी से तैयार हो जाये?

भूख का दौरा बड़ी ज़ोर के साथ पांचू को महसूस हुआ। साथ ही उबकाइयाँ भी आने लगीं। आँतें उलटी-उलटी पड़ती थीं। पेट पकड़कर वह वहीं बैठ गया और अपने मन को ज़बर्दस्ती उस दृश्य से हटा लेने की कोशिश करने लगा। घृणा से भी कहीं ज़्यादा लज्जाजनक यह दृश्य था!

पांचू सोचने लगा, "क्या कोई भी पेट-भरा आदमी अपने लिए उस दिन की कल्पना कर सकता है जब उसे इसी तरह किसी की गिलाजत चाटने के लिए मजबूर होना पड़ेगा।" हठ के साथ पांचू सोच रहा था—यह बात सोचना इस वक्त उसकी राय में सबसे ज़रूरी था —"हर आदमी को, जो गुलाम है, ऐसे दिन देखने के लिए हर वक्त तैयार रहना चाहिए। दुनिया में जब तक गुलामी रहेगी, इन्सानियत उसी तरह ठुकराई जायेगी जिस तरह ईसा, राम, कृष्ण, मुहम्मद, बुद्ध के अनुयायी उनके पैर छू-छूकर उनकी छातियों पर ठोकरें मार रहे हैं।"

उस दृश्य के साथ उपजी हुई भूख और उस दृश्य को देखने के कारण खाली पेट जी मिचलाने से जो तकलीफ होती थी, उससे बचने के लिए पांचू बच्चों के खेल की पूरी गम्भीरता के साथ अपनी बुद्धि से खेल रहा था।

एक चीज़ इधर पांचू को परेशान करने लगी कि पांचू जिस बात को भुलाने की कोशिश करता है, उसे वह भुला नहीं पाता; बल्कि एक को भुलाने की कोशिश में सब एक समय याद आने लगती हैं। खेलते-खेलते मन कुम्हला जाता है।

एकाएक 'हटो-बचो' होने लगी। पांचू अपने खयालों से चौंका। अपने हाली-महालियों के साथ दयाल ज़मींदार आ रहे थे।

"हरे राम, राम, राम, राम! ये बेचारे सबके सब बीमार पड़ गये! मोनाई ने ऐसा क्या खिला दिया! कहाँ है मोनाई!"

दयाल बाबू की दृष्टि घूरे के जमघट पर गयी। दया उमड़ी।

"मेरी प्रजा पर यह अत्याचार कि जूठन चटाई जा रही है! आखिर ठहरा तो केवट का बच्चा! नीच जाति! चार पैसे टेंट में करके चन्द्रमा को छूने चला है। कहाँ है? पकड़ के लाओ उसे।"

मोनाई हाथ जोड़े तब तक मन्दिर से भागा हुआ चला आ रहा था। दयाल ज़मींदार ने एक बार सिर से पैर तक देखकर नफ़रत के साथ कहा—"इनकम टैक्स बहुत बचा लिया है शायद!"

मोनाई आन्तरिक भय के साथ काँपते हुए और भी अधिक गिड़गिड़ाने लगा। भारी शरीर

के साथ इतनी दूर तक दौड़ के आने की थकान और हाँफनी भी चढ़ी थी।

"नहीं तो अन्नदाता! हें-हें अ-अ-आप बड़े हैं! हें: हें:!"

"इन लोगों को क्या हो गया है?" हाथीदाँत की लकड़ी की नोक से बीमार ब्राह्मणों को दिखाते हुए दयाल ज़मींदार बोले।

अपराधी की तरह उन ब्राह्मणों को एक नज़र देखते हुए, मोनाई हाथ जोड़कर बोला —"मैंने तो बहुत चाहा था अन्नदाता, पर ये लोग जादा खाते ही चले गये। मैं निर्दोष हूँ, अन्नदाता! और इन सब बेचारों का भी दोष नहीं! सब भगवानजी की लीला है।"

मोनाई की बात काटकर दयाल ज़मींदार गरम हो गये।

"अभी इतने बड़े भगत नहीं हुए कि दयाल ज़मींदार को भागवत सुना सको। हमारा नाम सुना है न तुमने?"

नाम की गोली सीधे मोनाई के दिल पर लगी और लाख सफ़ाई दिखाते हुए भी उसके चेहरे पर डर की लकीरें खिंच गयीं। दयाल ज़मींदार के पैरों को दूर से झुककर नमस्कार करते हुए बड़े संयत भाव से बोला—"आप मालिक हैं। हमारा जीवन-मरन आपके हाथ में है। बाकी और क्या कहूँ, अन्नदाता! मेरा भाग ही खोटा है। भगवानजी जानते हैं, होम करते हाथ जल गये।"

"इन लोगों की दवा-दारू के लिए कौन दाम खर्च करेगा?"

मोनाई इस पर बड़ी ज़ोर से चौंका। दयाल ज़मींदार के चेहरे को एक बार देखकर ज़रा हकलाते हुए बोला—"द-द-दवा-दारू?"

"इन सबको दवा-दारू के लिए एक-एक रुपया दो। बेचारे बीमार हैं। तुम्हारी वजह से सारा दुःख इन्हें ही भोगना पड़े! याद रखना मोनाई, मेरी प्रजा को यदि कभी कष्ट दिया तो तुम्हें पल-भर में तुम्हारे बाप की हैसियत पर पहुँचा दूँगा। दो इन सबको एक-एक रुपया।"

बड़ी सख्ती से अपने चेहरे को निर्विकार रखते हुए मोनाई तनकर खड़ा रहा। दयाल ज़मींदार के दोबारा हुक्म करते ही इशारे से अज़ीम को घर की तरफ़ दौड़ा दिया।

घूरे की तरफ़ ज़रा बढ़ते हुए दयाल ज़मींदार ने साहूकार मोनाई केवट को दूसरी पटखनी दी।

"मेरी भूखी प्रजा को जूठन खिला-खिलाकर तुम तुच्छ बनाना चाहते हो? धर्म-कर्म लोप कर देने का इरादा है क्या? खुद नीच थे, मगर मुझसे तो कह सकते थे। मैं अपनी प्रजा को कम-से-कम इस तरह जूठन तो न चाटने देता! गाँव के हर आदमी को सेर-सेर भर चावल मेरी तरफ़ से बाँट दो। आज शाम तक यह काम हो जाना चाहिए, समझे!"

हुक्म देकर दयाल ज़मींदार ने अपने पानबरदार की तरफ़ देखा। फौरन ही चाँदी की गंगा-जमुनी डिबिया पेश की गयी। पान खाकर दयाल बाबू मुड़े। पुल के पास पांचू बैठा था। दयाल की नज़र पड़ी।

"कहिए, मास्टर बाबू!" कहकर दयाल उसकी तरफ़ दो कदम आगे बढ़े।

छः दिन का भूखा पांचू यह निश्चय किये बैठा था कि अब न तो वह दयाल से ही किसी तरह का सम्बन्ध रखेगा और न मोनाई से। ये सब स्वार्थी हैं, नीच हैं, पेट-भरे मक्कार हैं। अगर इनको अपने पैसे का घमंड है तो हमको भी अपनी मुफलिसी पर नाज़ है।

पांचू बच्चे की तरह मुँह फुलाए बैठा था। दयाल ने मोनाई को सकड़े में ला घसीटा, उसे बड़ी खुशी हुई। कोई दयाल को भी इसी तरह दबा के रगड़ दे तो मज़ा आ जाये। जी में आया, दयाल से पूछे कि तुमने ही अपनी प्रजा को कौन-सा निहाल कर दिया जो यों अकड़ते हो। शरम भी नहीं आती कम्बख्त को! मरघट जैसे गाँव में छैला बनकर घूम रहा है।

तभी दयाल की आवाज़ कानों में पड़ी, नज़रें मिलीं और मिलते ही सारा विद्रोह गायब! होठों पर मुस्कुराहट, आँखों में दीनता, वही तपाक से उठकर अदब करने की आदत—ग्राहक को देखते ही जैसे लड़ाई के पहले के दुकानदार अपनी पेटेंट कवायद शुरू कर देते थे। पांचू यह सब नहीं करना चाहता था। मगर अपने-आप पर उसका ज़ोर नहीं। लाख अनिच्छा होने पर भी नज़रें मिलते ही पांचू मदारी के तमाशे की तरह इशारे से बँधा हुआ नाचने लगा। बड़ी हिफाज़त के साथ अपने शीशमहल में रखे हुए स्वाभिमान को हर पल कंकड़ की ठेस से बचाता हुआ, साथ ही साथ उसका परिचय देने की दबी धमकी भी देता हुआ) वह दयाल बाबू से मुँह-देखी बरतने लगा।

"यों ही, देखने चला आया ये सब।"

"अजी कुछ पूछिए मत," काज़ीजी के दुबलेपन की अदा लिये हुए दयाल ज़मींदार तुनककर बोले—"देखा आपने? इन चोर-बाज़ार वालों ने कैसी लूट मचा रखी है—और यों, दिन-दहाड़े! गवरमैंट के पिट्ठू हैं साहब! अंग्रेज़ी भी कोई मामूली खोपड़ी नहीं है बाबू! क्या पोलीसी भिड़ाई है कि आप तो सस्ते दामों पर आढ़तियों से नाज ले गये और पब्लिक का कोई खयाल ही नहीं किया। एक तरफ़ तो इन बनियों को आदमी के खून का चस्का लगने का मौका देते हैं और फिर जब पब्लिक चिल्लाती है तो कंट्रोल-ऑर्डर लगाते हैं। समझा मज़ाक आपने? माल तो इन मोनाई जैसों के गोदामों में है, कंट्रोल किस पर करोगे!"

कहते हुए दयाल बाबू की आँखों में घमंड और चालाकी की चमक आ गयी। चेहरे पर रौब दुबाला होकर झलका। तर्क-विजेता की दृष्टि से एक बार पांचू को देखकर उन्होंने अपने पानबरदार की तरफ़ ज़रा हाथ बढ़ाया। पल की देर न लगी, पान हाज़िर, ज़र्दा हाज़िर, हाथ पोंछने के लिए रेशमी रूमाल हाज़िर। इशारे की ज़रूरत न थी, खानदानी रईस के नौकर मास्टर बाबू का अदब करने के लिए झुके।

छः दिन के भूखे मास्टर बाबू के सामने खाने के नाम पर पान पेश हुए थे। कुछ भी सही। जी तो चाहता था कि डिब्बे के सारे पान बकरी की तरह चबाते ही चले जायें, मगर आबरू के कायदे आड़ में आते थे। केवड़े में बसाये दो पान मुँह में रखकर पांचू ने बड़े जोश के साथ उन्हें चबाना शुरू किया।

दयाल बाबू कहते चले—"अजी साहब, इसी का नाम है ब्रिटिश पोलीसी। हिन्दुस्तान का

गला हिन्दुस्तानी से ही कटवा रहे हैं। बाद में कह देंगे, हम तो अपनी हिटलरी मुसीबत में मुब्तिला थे। बंगाल में हिन्दुस्तानी मिनिस्टरी, हिन्दुस्तानी कारोबार, हिन्दुस्तानी अफ़सर—फिर जब आप खुद ही अपने भाइयों को भूखा मार रहे हैं तो इसमें हमारा क्या दोष? आप लोग स्वराज्य के काबिल नहीं। चलिये साहब, साँप भी मर गया और लाठी भी न टूटी। और आप गुलाम के गुलाम बने रहे।"

पान की गिलौरियों को दयाल बाबू ने एक गाल से दूसरे गाल की तरफ़ फेरा।

पांचू अपने मुँह के पान अब तक खत्म कर चुका था। भूख भड़क गयी थी।

दयाल बाबू बोले—"असल बात तो यह है कि हममें एकता नहीं। एकता होती तो आज हिन्दुस्तान की यह दशा न होती।"

पांचू दयाल बाबू के मुँह की तरफ़ देख रहा था। उनके रौबीले चेहरे को देख-देखकर उसकी भूख और भी बढ़ रही थी। वह बराबर सोच रहा था, "दयाल घर से खाना खाकर आया होगा। क्या-क्या खाया होगा?" चरपरे मसालों की सुगन्ध कहीं से उड़कर उसकी नाक में बसने लगी। पांचू को पहले तो अच्छा लगा, फिर तबियत घबराने लगी। गुस्सा चढ़ा। महास्वार्थी और निकम्मा, एकता की दुहाई दे रहा है। ज़रा जोश आ गया, ज़बान अपने-आप खुल गयी—

"एकता की दुहाई देना भी आजकल का एक फैशन है। चिल्लाते सब हैं, लेकिन कोई उसे सही तरीके से महसूस नहीं करता।"

कहते-कहते पांचू के चेहरे पर सच्चाई की तमक आ गयी। वह अनुभव करने लगा जैसे उसका बोझ हल्का हो गया हो! इससे उसे सन्तोष हुआ।

दयाल ज़मींदार यह सुनकर चौंक पड़े। पांचू के चेहरे को गौर से देखने लगे।

पांचू का हौसला और बढ़ा। वह कहता चला गया—"देश की गुलामी तभी दूर हो सकती है जब हमारे भद्र लोग अपने मूर्खतापूर्ण स्वार्थ और झूठे अभिमान को छोड़कर बुद्धि से काम लें। गुलामी के बोझ से झुकी हुई ज़िन्दगी को भद्रवर्ग अपनी खानदानी, माली हैसियत और अपनी साक्षरता की खपच्चियों के सहारे खड़ा कर कागज़ के कुम्भकरण-सा अकड़ जाता है। यह कहकर हम अंग्रेज़ों की बराबरी करना चाहते हैं कि भारतवर्ष में एकता नहीं है। अगर किसी स्वाधीन देश का कोई पुरुष यह सवाल करे तो ठीक है, लेकिन हम किससे यह सवाल करते हैं? क्या हम भारतवर्ष में शामिल नहीं? तब फिर वह कमज़ोरी, जो हम सबमें बतलाते हैं—क्या वह खुद हमारे में नहीं है? अपनी कमज़ोरी को दूर किये बिना हम पड़ोसी की ओर उँगली उठाने के हकदार नहीं। हरगिज़ नहीं।"

पांचू यह सब कह तो गया, इसकी उसे खुशी थी, मगर दयाल का डर भी साथ-साथ लग रहा था। बुरा मान रहे होंगे। उंह, ठेंगे से! मगर बुरा तो मान ही रहे होंगे। पर अब तो एक बार तीर कमान से निकल ही चुका है। जैसे सत्यानास वैसे साढ़े सत्यानास! कोई फाँसी तो चढ़ा नहीं देंगे दयाल ज़मींदार। और उनसे किसी तरह के लाभ की भी आशा नहीं। तब फिर पांचू

दयाल बाबू से क्यों दबे? मगर दबता तो है ही। बात कहते हुए इसीलिए दम अन्दर ही अन्दर खिसका जा रहा था। अपने रौब की सतह को एक-सा रखने के लिए पांचू अपने स्वाभाविक तरीके से न बोलकर इस तरह से दयाल बाबू के सामने बोल रहा था, जैसे क्लास-रूम में लड़के पढ़ा रहा हो—और वह भी इंस्पेक्टर के सामने। कह चुकने के बाद एकदम से नज़रें आमने-सामने होने पर वह घबरा उठा। उस घबराहट को छिपाने के लिए वह खखारते हुए दूसरी तरफ़ मुँह घुमाकर थूकने लगा। इससे मुँह का बासीपन कुछ हल्का हुआ।

कलक्टर और जॉर्डन साहब तक पहुँचनेवाला आदमी, विद्वान, फिर तर्करत्न केशव शास्त्री का बेटा—दयाल बाबू पर भी पांचू का रौब गालिब था। इसके अलावा अपने नहले पर यह दहला पड़ते देख दयाल बाबू पहले तो चौंके, फिर ज़रा-ज़रा झेंप भी मालूम हुई। कुछ जवाब न सूझता था, खिसियाने-से खड़े सोचते रहे। बीच में नौकर के हाथ से पान लेते हुए, बात सुनते-सुनते डिबिया भी ले ली। पान मुँह में रख लिए, मगर डिबिया बातों की रौ में उन्हीं के पास रही। जब पांचू ने अपनी बात खत्म की तो दयाल बाबू ने बात को नया 'स्टार्ट' देने के लिए चौंककर पहले तो अपने दाहिने हाथ में पनडिब्बी को महसूस किया, फिर डिबिया खोल, बसना हटाकर, पांचू के आगे पान पेश किये।

पान खाली पेट में लगते थे। पांचू नहीं खाना चाहता था। दयाल ज़मींदार अपनापन दिखलाते हुए ज़ोर देकर मस्तानी आवाज़ में कहने लगे—"अरे खाओ जी! हमको तुम्हारी ये भगतबाजी ज़्यादा जमती नहीं, उस्ताद!"

होंठों के किनारों पर मुस्कराहट और खुमार-भरी आँखों में शिकायत दर्शा कर दयाल बाबू घुले। पांचू पिघल गया। घमंड दिमाग में बिजली की बारीक लकीर की तरह कौंध गया। भूख के फीके चेहरे पर दर्प और खुशी की चमक आ गयी। पांचू ने मुस्कराकर डिबिया से पान निकाले और कहा—"खिला तो रहे हैं। मगर याद रखिए, शौक लग जायेगा तो आप ही के यहाँ आकर दिन-भर पान खाया करूँगा। आजकल ईश्वर की दया से बेकारी के महकमे में तो हूँ ही दिन-भर..."

पांचू दयाल बाबू को 'तुम' कहकर पुकारना चाहता था। लाख चाहने पर भी जीभ न लौटी। फिर भी दयाल ज़मींदार पर अपनापन और हक जताकर पांचू ने बराबरी का दरजा तो पक्का कर ही लिया। अब वह दयाल बाबू से 'तुम' की बेतकल्लुफी तक रिश्ता बाँधकर मोनाई को अपना प्रभाव दिखलाना चाहता था।

मोनाई कुछ दूर पर ज़रा अकेला-सा खड़ा था। बराबरी का दरजा लाख समरथवान हो जाने पर भी उसे हासिल नहीं। एक तो भगवान जी ने ही उसे छोटा बनाके धरती पर भेजा है, दूसरे वह पढ़ा-लिखा नहीं। पर इन दोनों बातों में भी मुक्ख बात बेपढ़े-लिखे रह जाने की आती है। ज़माना 'गुड्डुमानी-डैमफूल' का है। गाँव में और भी कितने ब्राह्मणों के लड़के पढ़ते हैं, उन्हें कोई टके सेर भी नहीं पूछता, और एक पांचू है जिसके कारण इस सड़े हुए गाँव में कलक्टर जैसे बड़े-बड़े अंग्रेज़ आते हैं। बड़े-बड़े ज़मींदार, दयाल ज़मींदार ऐसे-ऐसे लोग,

पांचू को हँस-हँसके मिलाए रखते हैं। ये विद्या का प्रताप है।

न्याड़ा को आलिम-फाजिल बनाकर मोनाई अपनी इस कमी को पूरा करना चाहता था। दिन-रात उसकी पढ़ाई के पीछे दीवाना। जब से गाँव में स्कूल खुला है, गरीब न्याड़ा का लट्टू इतवार के दिन भी ताक से नहीं उतर पाता। सुबह जब उठो तब से लेकर रात में जब तक सो न जाओ, बराबर पढ़ते रहो; पढ़ाई की ही बातें सोचते रहो। जिस तरह मोनाई सुबह से रात तक अपना रोज़गार करता रहता है, रोज़गार की ही बातें सोचता रहता है, उसी तरह वह अपने लड़के को भी कर्मठ देखना चाहता है। जब वह न्याड़ा की उमर का था, तभी से उसने काम की फिकर संभाली थी; इसलिए वह न्याड़ा को भी उस काबिल समझता है। जब गाँव के अच्छे दिन थे, सुबह गोविन्द मास्टर दो घंटे घर आकर पढ़ाते थे। उसके बाद स्कूल जाता था। साँझ को स्कूल से लौटकर आते ही, हाथ-मुँह धोकर, ज़रा पानी-पिलाव के बाद, फिर अपनी किताब लेकर ज़ोर-ज़ोर से घोखने बैठ जाता था। जहाँ आवाज़ गिरी कि मोनाई ने डाँटा। थोड़ी देर बाद कानाई मास्टर आकर डपट जाते थे। मोनाई ने उन्हें इस मतलब से रखा था कि वह न्याड़ा को स्कूल की सारी किताबें रटा-रटाकर याद करा दें, जिससे न्याड़ा इम्तहान में फर्स्ट आया करे। मोनाई सोचता था, भगवानजी का दिया बहुत है; न्याड़ा पढ़-लिखकर एक बार विलायत पास करके आवे तो बड़ा सरकारी अफ़सर बन जायेगा। फिर सभी बड़े लोगों में मेरी रसाई हो जायेगी। करोड़ों बना लूँगा।

मोनाई केवट की यह सबसे बड़ी इच्छा थी कि मरने से पहले वह एक बहुत बड़ी ज़मींदारी खरीद ले, कलकत्ता के बड़े-बड़े बैपारियों में उसकी साख पुज जाये; कलकत्ते में ऊँची-ऊँची बिल्डिंग बन जायें और एक करोड़ की पुडिया मुट्ठी में हो। वह अकेले ही यह तमन्ना पूरी कर सकता था, अगर शहर में पैदा हुआ होता। गाँव में पैदा होना—और फिर केवट के घर में पैदा होना—यह सबसे बड़ा अभिशाप था, जिससे लाख सिर पटकने पर भी मोनाई मुक्त नहीं हो सकता था। परम्परा से जिस जगह वह दबता चला आया है, वहाँ ऊपर उठने के लिए उसे सहारा चाहिए। पैसा लाख हो जाये, मगर कुलीनता के कगारे पर चूक से भी पैर पड़ते ही उसे हीन भावना के गहरे खड्ड में गिर जाना पड़ता है। अपना केवटपन किसी हद तक धोने के लिए मोनाई कंठी लेकर वैष्णव बना, लेकिन उससे केवल अपना मन ही बदल गया, कोई खास फायदा न पहुँचा। गाँव में एक मंदिर भी बनवा दिया। उसके बाद भी गरीब से गरीब बामन-कायथ के द्वार पर जाकर उसे ज़मीन पर ही बैठना नसीब हुआ। विद्वान और सरकारी अफ़सर की जात पुँछ जाती है, इसलिए मोनाई न्याड़ा को पढ़ाने के प्रति सतर्क था।

इस वक्त दयाल ज़मींदार ने उसे गहरी पटखनी दी थी। 'चित्त भी मेरी, पट भी मेरी' वाला हिसाब कर दिया था। आप ही 'परेत-भोज' का डंड भी मेरे सिर पर लादा और अब एक-एक रुपया भी दो। ये न्याव करने आये हैं साले। और ऊपर से गाँव-भर में एक-एक सेर चावल बाँटो। जैसे बाप का माल हो, उठा के दे दिया। हाँ भई, बाप का माल तो है ही, उसकी

ज़मींदारी में रहते हैं। वह इस जगह का राजा है। जो चाहे कर सकता है।

सब मिलाकर दयाल ज़मींदार के कारण छः-सात सौ की चपेट पड़ गयी। अब तक तो इन्हें मौका नहीं मिला था, उस दिन की वारदात से ज़रा-सा रास्ता पाय गये हैं, सो धुर्रे उड़ाय के धर देंगे। गाँव के आधे पट्टे अब मेरे नाम पर हैं, यह साले को खलता है। भगवान जी ने मुझे दिये सो भोगता हूँ। इस साले को जलन क्यों होती है? किसी की बढ़ती आँखों से नहीं देख सकते ये बड़े लोग। 'ससुर एकता-एकता' चिल्लाते हैं। अपने गरीब भाइयों का तो गला काट के रख देते हैं, सुराज का क्या अचार पड़ेगा? अरे, यह लोग भी कै दिन और ये अत्याचार कर सकेंगे? इनका भी तो अन्त आवेगा किसी दिन। भगवान जी सबका न्याव करते हैं। उनकी लीला हो गयी तो किसी दिन दयाल की सारी ज़मींदारी मैं खरीदूँगा और इसी की हवेली में जा के रहूँगा। कर ले, आज इसका ज़माना है।

मोनाई ने एक दबी उसाँस भरी, कमर पर दोनों हाथ टेककर ज़रा तन गया। घर की तरफ़ देखने लगा—अज़ीम नहीं आया अभी तक। पटक दूँ रुपया ससुरे के आगे, इज़्ज़त बचे। मगर कमर तोड़ डाली साले ने। और अब तो जमराज ड्यौढ़ी सूँघ गया है, जो थाने तक चढ़ बैठा तो मुझे जेल कराके ही मानेगा—कफ्फन तक लूट के खा जायेगा मेरा। मगर पुलिस में ही देना था मुझे, तो उस दिन दारोगा जी के सामने मेरा गुदाम दबो-ढंको क्यों करवा दिया? ज़रा-सी सिकैत में तो मेरे ऊपर साढ़े-साती चढ़ जाती। तब फिर चाल क्या है इसकी? दयाल ज़मींदार बेफजूल में हमदर्दी वाले जीव नहीं। कुछ समझ में नहीं आता। बाकी ये पक्की मानो, कहीं ऐसे में छुरी भोंकेगा मुझे, जहाँ पानी भी न मिले। भगवान जी, इत्ती सेवा करता हूँ तुम्हारी। फिर भी तुम्हारे भगत की छाती पर दुश्मन सवार हो जाये? कहाँ गये गज के फन्द छुड़ानेवाले? मेरी बेर इत्ती देर क्यों लगायी? अज़ीमा साला कहाँ मर गया कम्बख्त! ये दयाल ससुरा अभी मेरी इज़्ज़त टके सेर बेचने लगेगा। ये देखोऽ, फिर बमका साऽला!

"बाप का ज़माना भूल गया है शायद!" दयाल ज़मींदार की आवाज़ कानों में आयी —"छेदाशेंग! हरामज़ादा का अक्कल में भाला भोंक देओ। बोलो शाला के जे दयाल तोमार बाबार प्रजा नेई जे तीन घांटा तक दरवाज़े पर खड़ा रहेगा।"

एक सेकंड के लिए मोनाई की आँखें मिंच गयीं। ज़िन्दगी-भर की आबरू गयी जो एक पड़...एऽझपटा! हे भगवान-परभूनाथ! अज़ीमा साला...आया! "वो आ गया राजा बहादर!"

मोनाई ने सन्तोष की एक गहरी साँस ली और छेदासिंह से कतराकर हाथ जोड़े हुए ज़मींदार की ओर बढ़ा। वह हाँफ गया था। कहने लगा—"मेरी इत्ती मजाल कि आपको खड़ा रखूँ? भगवान जी ने यह दिन तो दिखाया कि सरकार की गालियाँ सुनने को मिलीं। अब भरोसा भया कि हजूर ने मुझे अपनी सरनागत में ले लिया है। मालिक जब गालियाँ दें तो समझो कि दास का अहोभाग है।"

दयाल ज़मींदार के चेहरे पर सारे भाव तन गये थे। गर्दन में भी तनाव आ गया था। पान चबाते हुए जबड़े चल रहे थे; पानों की धड़ी पर होंठों की दर्प-भरी मुस्कान दब-दबकर झलक

मार रही थी। बायें हाथ में हाथी-दाँत की छड़ी के सहारे कमर ज़रा झुकी हुई थी, और दाहिने हाथ में अँगूठियों के नगीने दमक रहे थे। मोनाई की तरफ़ से मुँह फिराकर दयाल ज़मींदार ज़रा ऊँचे आसमान को घेरकर फैली हुई 'बैसाख की धूप' को देख रहे थे।

मोनाई उनके चरण छूने को आगे बढ़ा। दयाल ज़मींदार ने पैर खिसका लिये। दयाल ज़मींदार मन ही मन फूल उठे। "आ गया ठिकाने पर। चौपट करके फेंक दूँगा साले को। इसके गोदाम में दो हज़ार बोरे से कम न होंगे। काट-पीटकर भी डेढ़क लाख बचा लेगा पट्ठा। कहाँ-कहाँ से छिपाकर धन इकट्ठा किया है इसने! मुझे रत्ती-भर भी खबर न लगने पायी, बड़ा काइयाँ है।"

मोनाई की खुशामद दयाल के दिमाग को अपने हथकंडे दिखाने के लिए उकसा रही थी। मोनाई की बातें कानों में पड़कर दयाल के खयालों की सतह को छूकर निकल जाती थीं। "पुलिस में दे दूँगा तो मेरे पल्ले कुछ न पड़ेगा। पुलिस वाले सब हड़प जायेंगे। मिलिटरी वाले दो हज़ार बोरों के लिए पाँच सौ इससे क्यों न झड़प लूँ? बुरा क्या है? अगर अभी मैं पुलिस में रिपोर्ट कर दूँ तो कौड़ी का भी न रह जायेगा और जेल में चक्की पीसनी पड़ेगी, सो अलग! यों पाँच ही सौ बोरे तो देने पड़ेंगे मुझे। फिर भी डेढ़क हज़ार बोरे के करीब बच रहेंगे साले के पास। लाख-सवा लाख के रोकड़े कर लेगा। कुछ कम है नीच जाति के लिए? क्या ज़माना आ लगा है। ये साले कोरी-चमार-केवट भी अब लखपती होने लगे! मगर बड़ा काइयाँ है भाई! मान गये। गाँव के आधे पट्टे अपने नाम करवा लिये। बड़ी गहरी चोट दी थी साले ने। मेरी बराबरी करने चला था। बदमाश से हज़ार बोरे झटकने चाहिए।"

दयाल ज़मींदार ने नज़र तिरछी करके मोनाई को देखा। गीता-पुरान की दुहाई देने के बाद मोनाई अब दयाल ज़मींदार की एक निहायत नमकहलाल फरमाबरदार रियाया की तरह आँखें झुकाये, हाथ बाँधे, दो कदम हटकर अदब से खड़ा हुआ था। अज़ीम पास आ चुका था। मोनाई ने अज़ीम के हाथों से दस-दस के पाँच नोट और एक चाँदी का रुपया लेकर दयाल ज़मींदार के चरणों पर भेंट चढ़ाकर एक बार फिर पैर छुये और हाथ जोड़कर कहने लगा—"जो कुछ पतरम-पुसपम आपके इस दास से बन पड़ा, बस उसी से अब छिमा कर दें मालिक! चरनों की सरन में पड़ा हूँ। सरकार की जूठन से अपने बाल-बच्चे पाल लेता हूँ उन पर दया करें अन्नदाता। भगवान जी आपको सदा सुखी रखें, मेरे मालिक।"

मोनाई खुशामद में दयाल ज़मींदार के पाँव दबा रहा था। घूरे पर से कोई बड़ी ज़ोर से हँसा। किसी का हिंसक आह्लाद मोनाई के अहं को ठोकर मारकर, दयाल ज़मींदार के अहं का प्रिय बना।

भरे गाँव में, गाँव-भर की भूख के ठेकेदार को दयाल ज़मींदार ने अपने जूतों तले लाकर दुनिया को यह दिखला दिया कि उनकी शक्ति कितनी बड़ी है। श्री दयाल चाँद विश्वास ने आज अपनी चौदह पीढ़ियों को तारकर, कुल की परम्परागत मान-प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा दिये थे। उन्होंने दुनिया को दिखला दिया कि नीच जाति सदा नीच ही रहेगी।

"हुँ:! बड़े पंख लगाकर उड़ने चला था।" ज़मींदार सोचने लगे—"साला, हम खानदानी रईसों से होड़ लेना चाहता था। मन्दिर बनवा दिया साहब, गाँव में। आधे पट्टे खरीदकर जी-हुजूर कहलाने की हविस लगी थी जनाब को। मुझसे, दयाल ज़मींदार से टक्कर लेने के लिए वह मेरी प्रजा को भूखा मार-मारकर अपनी ताकत दिखाना चाहता था। ले बच्चू, अब देख ले कि कौन शक्तिशाली है। सारा गाँव आँखें खोलकर देख रहा है कि अपनी प्रजा पर अत्याचार करनेवाले दुष्ट को दयाल ज़मींदार कितना कठोर दण्ड देते हैं! देख ले प्रजा, ज़मींदार अब भी अपनी प्रजा का कितना पालन कर सकता है? नमकहराम हैं, साले सबके सब!"

जिनके लिए खुद दयाल ज़मींदार इतना कष्ट उठाकर यहाँ पधारे, जिनके एक बड़े भारी शत्रु को उन्होंने चुटकियों में परास्त कर दिखाया, जूठन चाटनेवालों को अन्न और रोगियों को दवा दिलायी, क्या कुछ न कर दिखाया दयाल ज़मींदार ने! ...लेकिन, जिसके लिए उन्होंने यह सब कुछ किया उसी महामूर्ख जनता पर कोई भी असर पड़ता नहीं दिखता। किसी ने उनकी जय-जयकार भी नहीं बोली! उनके उस हँसनेवाले प्रशंसक ने भी नहीं! "कम्बख्त अब तो इधर देख भी नहीं रहा। घूरे की जूठन खाने में जुटा हुआ है। कमीने हैं सबके सब! और नालायक! आज तो मुझे प्रणाम भी करने नहीं आये। हरामखोर!"

दयाल ज़मींदार की आँखों के सामने सबसे पहले मोनाई का मन्दिर आता था। फिर वे पेट-भरे मरभुखे, मरीज; जिजमानों की दया के टुकड़ों पर पलनेवाले भिखारी ब्राह्मण—जो उनसे और सबसे जाति में उच्च होने के कारण पूज्य थे, मगर शक्ति में कितने नगण्य, कितने हीन! "और उन घूरे चाटनेवाले कंगलों में बड़े-बड़े दिग्गज ब्राह्मण भी तो दिखायी पड़ रहे हैं। ये अपने दिबू भट्टाचार्य का पोता—क्या भला-सा नाम है—खैर होगा, जाने दो। कितने नाम याद रहें, और वह भी इन पापियों के? सच पूछो तो ब्राह्मणों ने ही भारतवर्ष का सत्यानास किया है।" दयाल बाबू जोश में आकर सोचने लगे—"जब से ये गिरे, हिन्दू धर्म का लोप हो गया। जब हमारे पूज्य ही गिर गये तो क्षत्रिय बेचारे अकेले कहाँ तक अपने देश की सेवा करते रहेंगे? फिर भी, क्षत्रियों ने देश के लिए क्या-क्या नहीं किया? भगवान रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, बुद्ध, महावीर ऐसे बड़े-बड़े अवतार, और भीम, अर्जुन, राणा प्रताप, वीर शिवाजी से लेकर पृथ्वीराज चौहान तक सब महापुरुष क्षत्रिय ही थे, जो शब्दबेधी बाण तक चला सकते थे। जर्मनी ने वेद चुरा लिये हमारे, नहीं तो आज इस पृथ्वी पर क्षत्रियों का ही चक्रवर्ती साम्राज्य होता।...पर आपस की फूट खा गयी। नहीं तो आज हमारे भारतवर्ष में अंग्रेज़ भला राज कर सकते थे? बनिये भी कभी राजा हो सकते हैं?...मगर अब कलियुग में तो हो ही रहे हैं। देखो गाँधी जैसा महात्मा वैश्यों में जन्म लेता है। शास्त्रों ने ठीक ही लिखा है, घोर कलियुग आ गया; चारों चरण रख दिये। तभी तो हिन्दू धर्म की यह दुर्दशा हो रही है। ऊँची जात की मर्यादा लोप होती जा रही है। कुलीनों की लाज का यह हाल है कि घूरे की जूठन लोग खुले आम चाटते हैं। हाय रे हिन्दू धर्म! कितना पतन हो गया है हमारे भारत वर्ष का!"

दयाल ज़मींदार सहसा महसूस करने लगे कि एक उनको छोड़कर सारा भारतवर्ष, सारी दुनिया रसातल की ओर चली जा रही है। पतन के खड्ड की ओर आँखें मूँदकर बढ़ती हुई महामूढ़ मानवता के प्रति उनके हृदय में अपार करुणा का स्त्रोत फूट पड़ा। दयाल ज़मींदार सारे संसार के कल्याण की चिन्ता करने लगे। पतितों के उद्धार की प्रबल आकांक्षा उनके मन में उत्पन्न हुई। सोचने लगे, "बड़े काम करने से अपना भी बड़ा नाम होगा और हिन्दू धर्म का, देश का उद्धार भी हो जायेगा।" फिर सोचा, "कौन-सा बड़ा काम किया जाये। मन्दिर-धर्मशाला बनवाने से अब नाम नहीं होता। ये साले कोरी-चमार-केवट भी मन्दिर बनवाने लगे हैं।"

बड़े होने का उपाय नहीं सूझ पड़ता था। दयाल ज़मींदार का जी कुछ-कुछ खट्टा होने लगा। सोचने लगे, "मैंने अपनी सारी ज़िन्दगी बर्बाद कर दी। मुझे कुछ काम करना चाहिए। वैसे कर तो रहा हूँ ये—अभी-अभी ही भूखों को अन्न दिलवाया, रोगियों को दवा दिलवा दी, इस चिलचिलाती हुई धूप में खड़ा-खड़ा अपने गाँव की सेवा कर रहा हूँ। दुनिया के सामने एक महान आदर्श उपस्थित कर दिया है मैंने। अगर अखबारों में छप जाये तो सारी दुनिया जान लेगी कि श्री दयाल चाँद विश्वास देश के महान ज़मींदारों में से हैं और जो नाम होने लगे तो बस सीधे पोलीटिक्स में नेता बन जाऊँगा।...इस बार चुनाव हो तो उसमें भी खड़ा हो जाऊँगा। हिन्दू महासभा के टिकट पर खड़ा हो जाऊँगा।...कांग्रेस के टिकट पर भी खड़ा हो सकता हूँ...मगर उसमें जेल जाना पड़ता है।...हिन्दू महासभा ही ठीक है। नाम का नाम होगा और परम पवित्र सनातन धर्म की रक्षा भी होती रहेगी। बस यही ठीक है। अब जीवन में ज़रा आगे बढ़ना चाहिए। इतिहास में नाम आना चाहिए। मास्टर बाबू के ज़रिये यह काम हो सकता है। बड़े काम का है यह लड़का। इससे अपनी प्रशंसा के लेख लिखवाकर छपवा दूँगा। मैं क्या, यही मास्टरवा छपा देगा। हीले-बहाने से दस-बीस-पचास इसकी जेब में झुका दिया करूँगा। बस, फिर तो यह अपनी सारी अंग्रेज़ी की नालिज मेरे ऊपर खत्म कर देगा। बड़ा विद्वान आदमी है यह पांचू भी। मगर है पट्ठा घमंडी। खैर! कोई बुरी बात नहीं। विद्या पर तो गर्व होना ही चाहिए। लक्ष्मी और सरस्वती—यही तो गर्व करने लायक हैं। मेरे पास धनबल है, इसके पास बुद्धिबल है। यह मुझे अखबारों में प्रसिद्ध कर देगा, मैं इसके और इसके परिवार को इस अकाल से मुक्त कर दूँगा।"

दयाल ज़मींदार के मन में नयी आशा, नया उत्साह जागा। उन्होंने पांचू की तरफ़ देखा।

पांचू सिर झुकाये किसी गहरे खयाल में डूबा हुआ था।

पान चबाते हुए पांचू दयाल ज़मींदार से बराबरी की कल्पना अवश्य कर रहा था, किन्तु उसका भूखा पेट व्यंग्य बनकर मन में निरन्तर चुभता रहा।

इधर जब कभी वह दयाल या मोनाई के सामने आता था तो लाख सतर्क रहने पर भी उसे अपनी लघुता का भास होने लगता था। व्यवहार की दुनिया ने धीरे-धीरे उसे यह महसूस करा दिया कि विद्या और बुद्धि के बल पर आदमी बड़प्पन की साख नहीं पुजा सकता। साख पुजाने के लिए पैसा चाहिए। पैसा सबसे बड़ी शक्ति है। दूसरे ही क्षण पांचू अपने इन विचारों को हीन मानकर उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखता था। यह सोचकर उसे बड़ा बल मिलता था कि दुनिया में सदा से ही बुद्धि को धन से भी ऊँचा स्थान मिला है। वह सोचता कि अगर वाल्मीकि न होते तो राजा रामचन्द्र को कौन जानता? रवीन्द्रनाथ यदि कवि न होते तो प्रिंस द्वारकानाथ टैगोर के नाती के रूप में उन्हें कौन पूजता? वह खुद अगर पढ़ा-लिखा न होता तो दयाल क्या उसकी इस तरह लल्लो-पत्तो करते?

...लेकिन यह सब होते हुए भी वह दयाल के आगे कितना शक्तिहीन, कितना नगण्य है!

समुद्र की लहरों की तरह ऊँचे-नीचे विचार आगे बढ़ते और फिर पीछे हट जाते थे। वह सोचने लगता कि शिक्षित निर्धन न होकर अगर वह मूर्ख धनी होता तो सुखी रहता। सभ्य समाज में मूर्ख धनी का स्थान शिक्षित निर्धन से अधिक सुरक्षित होता है। वह और उसके विद्वान पिता अपने परिवार के साथ गाँव के किसी भी दूसरे गँवार की तरह ही भूखों मर रहे हैं, जबकि दयाल ज़मींदार तोंद पर हाथ फेरकर गुलछर्रे उड़ाता है। दयाल, मोनाई शक्तिवान हैं—केवल इसीलिए कि उनके पास पैसा है।

मन के अँधेरे में पांचू डूबने लगा। दम घुटने लगा। एक आह गले में अटकती हुई बाहर निकली और फिर वैसे ही दबा दी गयी। पांचू का सिर झुका हुआ था; हथेली से ठुड्डी पकड़े हुए, बायाँ हाथ कमर पर टिका हुआ, दाहिना पैर एक कदम पीछे और बायाँ आगे जमाकर वह इतनी देर से खड़ा हुआ था। मजबूरी की इस दम घोंटने वाली भावना से शरीर अस्थिर हो उठा। हाथ ठुड्डी से हटकर नीचे आ गया, दोनों हाथ कमर के पीछे जाकर बँध गये, और दोनों पाँव बराबर आ गये। वह अनमना हो गया।

चीलों, कौओं और कुत्तों के सामूहिक शोर के प्रति उसके कान चेतन हुए। पांचू ने सिर उठाकर सामने देखा—मोनाई, अज़ीम एक तरफ़, दयाल ज़मींदार अपने हाली-मुहालियों के साथ दूसरी तरफ; इन दोनों के बीच से गुज़रकर पांचू की नज़रें मोनाई के मन्दिर तक पड़ रही थीं। पांचू ने देखा, मन्दिर के दरवाज़े पर पछाँही लठैत अब पहरा नहीं दे रहे थे। मन्दिर के सामने पड़े हुए ब्राह्मणों पर आँखें फिसलती थीं, मगर वह पहले घूरे को ही देखना चाहता था। वहाँ भी भीड़ इस वक्त तक तितर-बितर हो चुकी थी; इक्का-दुक्का आदमी, चील, कौओं और कुत्तों के जमघट में एक शक्तिहीन शत्रु बनकर घूरे को घूरता हुआ दिखायी दे रहा था।

पांचू को यह दृश्य अच्छा न लगा। घूरा इस वक्त उसे मरघट की तरह मनहूस लग रहा था। पहले आदमियों का मेला लगा हुआ था। लोग पर लोग टूट रहे थे। चील, कौए और कुत्तों से घमासान लड़ाई छिड़ी हुई थी। आदमी तगड़ा पड़ रहा था। उस दृश्य में कितना जीवन था,

कितनी क्रियाशीलता थी! और अब? वह मैदान छोड़कर चला गया है। क्या, बात क्या है? घूरे पर की जूठन भी अभी खत्म नहीं हुई। कुछ देर पहले झुंड के झुंड आदमी पेट के लिए आपस में जितना लड़ रहे थे, उतना वे अपना पेट भर नहीं सके थे। तब फिर वे चले क्यों गये?

तुरन्त ही पांचू को मोनाई के घर की गोलियों और लाठियों की याद आ गयी। सारी बात उसके दिमाग में साफ़ झलक उठी। आदमी भूख की तकलीफ सहते-सहते टूट ज़रूर गया है, परन्तु इतने दिनों तक अहं के साथ पीड़ा के सहवास ने उसे एक तरह से इसका आदी भी बना दिया है। अन्न पाने की झूठी आशा लिये हुए, भूख से लड़कर दिन गुज़ारते हुए भी वह जीवित है, परन्तु गोलियों और लाठियों से लड़ने जाकर उसे तुरन्त ही अपनी ज़िन्दगी से हाथ धोना पड़ता। आदमी जीवन से प्यार करता है, मौत से, जहाँ तक बन पड़ता है, वह दूर ही रहना चाहता है।

मौत के ठेकेदार ज़मींदार दयाल विश्वास को सामने देखकर भूखे हट गये थे। उनके पैर हट जाने के लिए सामूहिक रूप से अपने-आप उठ पड़े थे। अब चीलों और कौओं के समान शत्रु रह गये थे। इनका शोर और काँव-काँव हवा के ज़र्रे-ज़र्रे में भर गया था। कान उस शोर के इस कदर आदी हो चुके थे कि ध्यान दिये बगैर वे आवाज़ें अब खलती नहीं थीं—एक तरह से सुनायी ही नहीं देती थीं।

एक बार पहले भी जब इस हंगामे से आदमियों की चीख-चिल्लाहट और कराह कम होते-होते मिटने लगी थी, तब पांचू के कानों ने जागकर उस कमी को महसूस किया था; उसकी आँखें फौरन ही उठ गयी थीं। लोगों के हटकर चले जाने पर भी उसका ध्यान गया था। मगर उस वक्त दयाल ज़मींदार बड़े ज़ोरों के साथ मोनाई के धुर्रे उड़ा रहे थे। पांचू की दिलचस्पी उस वक्त उसमें ही थी। उन भूख के मतवालों को नज़र-अन्दाज़ करके, वह दयाल ज़मींदार के रौब में, मोनाई पर अपनी विजय का अनुभव करने में फँसा हुआ था। बाद में यह नशा धीरे-धीरे उतर चला। वह फिर सिर झुकाकर सोचने लगा था कि इन हारनेवाले और हरानेवाले दो पूँजीशाहों के सामने उसकी हस्ती ही क्या है? चाहने पर पल-भर में दयाल ज़मींदार उसका भी पानी इसी तरह खड़े-खड़े उतार सकता है। चाहने पर मोनाई भी उसे मखमल में लपेटकर दस मार सकता है। और पांचू चाहने पर भी इन दोनों में से किसी को कुछ भी नहीं कह सकता, क्योंकि वह कायर है। गाँव के कमतरीन इन्सान भी पांचू से अच्छे हैं। वे दयाल या मोनाई की सलामतें-खुशामतें तो नहीं करते।

कोल्हू के बैल की तरह हीनता के चक्कर में घूमता हुआ पांचू अपने अपाहिजपन से खीझ उठा। लेकिन इस हार, शर्म और बेचैनी से भागकर वह जा ही कहाँ सकता है? अपने अन्दर से वह इस गतिरोध को क्योंकर दूर करे? उसके दिमाग की ऊपरी सतह में अनेकों उखड़े-उखड़े से विचार, तालाब के साफ़ पानी के अन्दर तेज़ी से आती-जाती कतराती हुई मछलियों की तरह झलकते तो थे, मगर चेतन बुद्धि की पकड़ में वे नहीं आ रहे थे। पांचू

विचार-शून्य, सिर झुकाये खड़ा था।

दयाल ज़मींदार पांचू से अपनी पब्लिसिटी कराने का निश्चय कर उसकी ओर देखने लगे। उन्होंने सोचा, "किसी गहरे खयाल में डूबा हुआ है।"

उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते हुए दयाल ज़मींदार बोले—"देख लिया मास्टर, ये हैं अपने देशभाई। लाखों चूसकर इक्यावन रुपये की गुठली थूक रहे हैं जैसे देश पर बड़ा भारी एहसान कर रहे हों।"

कहते हुए दयाल ने रुपयों को पैर से ठुकरा दिया। तैश में आकर बोला—"चार पैसे कमाकर नवाबजादा हो गया है साला। वो दिन भूल गया जब घर में खाने के भी लाले पड़े हुए थे।"

मोनाई सिर झुकाये, हाथ जोड़े, चुपचाप खड़ा था। दयाल कहते गये—"एक तो सड़ा हुआ अन्न खिलाकर इतने ब्राह्मणों को मौत के मुँह में डाल दिया, और अब इक्यावन रुपये देकर घनश्यामदास बिड़ला बनना चाहता है, कमीना! इससे पूछो भला, इक्यावन रुपल्ली में डाक्टर क्या अपने हाथ-माँस से जिलायेगा इतने मरीज़ों को?"

मोनाई ने देखा, देवता सन्तुष्ट नहीं हुए। वह पहले से ही जानता था। विनयपूर्वक बोला —"मेरे पास रुपये होते तो अपनी जान तक देने से न चूकता। बामन ठाकुर की सेवा में अगर तन की चमड़ी भी अरपन कर दूँ तो भी उरिन नहीं हो सकता। राजा बहादुर तो जानते ही हैं कि उस दिन की वारदात में जो दो-चार पैसे बाल-बच्चों के लिए कमाये थे सो भी भगवान जी ने ले लिये। दुक्खम-सुक्खम किसी तरह..."

"दुक्खम-सुक्खम! हिं:!" दयाल ने मुँह बनाया; फिर आवाज़ में तेज़ी लाये—"और वे हज़ारों बोरे जो तुम्हारे तहखाने में चुने हुए हैं?"

मोनाई इसका जवाब देने के लिए तैयार था। फौरन बोला—"वो आपके हैं मालिक। आपके राज में जो कुछ भी है, वो सब हज़ूर का ही है।"

यह कहकर मोनाई ने एक दबी निःश्वास छोड़ी जो दयाल ज़मींदार तक को सुनायी दी।

दयाल तमककर बोले—"देख लिया न मास्टर इस कमीने को। एहसान मानना तो दूर, उलटे ताने कसता है। साला मेरी प्रजा को भूखा मार-मारकर अपनी तिजोरी भरता रहा। गाँव में गोलियाँ चलानी पड़ीं इस...इस कमीने के कारण। दारोगा जी की नज़रों से इसका गोदाम बचाया मैंने, नहीं तो आज जेल में चक्की पीसता होता। इसके अपराधों की सीमा है भला? बादशाही होती तो साले की खाल खिंचवाकर चील-गिद्धों को खिला देता। धन के लोभ में इस कमीने ने बेचारे निर्दोष ब्राह्मणों पर यह अत्याचार किया। मेरा तो कलेजा फटा जाता है अपने देशवासियों की ये दुर्दशा देख-देखकर। छेदाशेंग, तोड़ दो इसका गोदाम।"

मोनाई की बनिया-बुद्धि जाग उठी; चाल सूझी। बिना घबराये, बिना झिझके, बड़ी शान्ति के साथ उसने तुरन्त ही हाथ जोड़कर कहा—"इत्ती तकलीफ काहे को करते हैं मालिक? चार मज़दूर मेरे साथ कीजिए। आप जहाँ कहें तहाँ बोरे धरवाय दूँ। इस वारदात के बाद मैं तो

आपै घबराय उठा हूँ। सत् कहता हूँ। उस दिन आपने तो इस दास के लिए बड़ी कोशिश कर दीनी, मुल पुलुस वालों की निगाहें आप समझे कि बड़ी पत्थरफोड़ होती हैं। तब से तीन बार दरोगाजी का आदमी आय चुका है मेरे पास। दस हज़ार माँगता है नहीं तो तलासी लेवेगा।"

दयाल ज़मींदार चक्कर में आ गये। एक नया दुश्मन, उससे भी अधिक शक्तिशाली, मोनाई के गोदाम पर दाँत गड़ाये बैठा है। रौब नर्म पड़ा; उत्सुक होकर पूछा—"फिर?"

दिल ही दिल में मोनाई की बाँछें खिल गयीं, मगर चेहरे की एक शिकन तक न बदली। उसी तरह से उसने जवाब दिया—"रुपये तो मेरे पास हैं नहीं राजा बहादुर। औ पुलुस की नज़ारों में आयके फँस तो गया ही हूँ। गिरहचक्कर है हमारा—पिरालबध फिर गयी है, जौन है तौन! कहलाय दिया कि बाबा, जबरदस्त का ठेंगा सिर पर; उठाय लै जाओ।"

कहकर मोनाई ने टूटकर एक आह भरी।

दयाल ज़मींदार का दिल बैठ रहा था। चेहरे की अकड़ के ऊपर खिसियानेपन की एक पर्त चढ़ गयी। मोनाई की नज़रों से छिपा न रहा। एक झलक दयाल के चेहरे को देखकर फिर अपनी बात जारी कर दी—"आपके चरनों की सौगन्ध खाय के कहता हूँ हुज़ूर, कि मेरा तो चित्त हट गया है इस काम से। कहाँ तक नुकसान सहूँ? मैं तो अपने बाल-बच्चों को ले के कलकत्ते चला जाऊँगा। भगवानजी का ही भरोसा है अब तो!"

यह कहकर मोनाई ने फिर ज़ोरदार निःश्वास छोड़ी। एक बार दयाल को, मास्टर बाबू को देखकर फिर अज़ीम की ओर देखते हुए उससे कहने लगा—"अज़ीमा, बेटा ज़रा छेदासिंह के साथ जायके गुदाम की ताली सौंप दे। जब दारोगाजी का आदमी आवै तो हज़ूर के पास भेज देना। मैं उरिन हो गया।"

दयाल ज़मींदार मन ही मन उबल तो बेहद रहे थे, मगर पुलिस का दारोगा उनके लिए भी भारी पड़ रहा था। उन्हें मोनाई की इस बात पर यकीन तो कतई नहीं आ रहा था; लेकिन यह ज़रूर समझते थे कि दारोगा को रिश्वत देकर मोनाई उन्हें परेशान कर सकता है। इसके साथ ही वह ये भी नहीं चाहते थे कि मोनाई की धमकी-भरी चाल के आगे उनका सिर झुक जाये। दिमाग इस गुत्थी में अटका हुआ था। उनका रियासती मिज़ाज पुलिस, दारोगा और मोनाई जैसे 'तुच्छ कीड़ों' से हार मानना हरगिज़ नहीं बर्दाश्त कर सकता था। अचानक उपाय सूझा। उन्होंने तय किया कि गाँव में चावल ज़रूर ही बँटवाना चाहिए। पब्लिक की भलाई का बहाना लेकर दारोगा क्या, गवर्नर तक को नीचा दिखाया जा सकता है।

दयाल ज़मींदार ने हुक्म दिया—"छेंदाशेंग! ले आओ चाभी। रोज़ सवेरे और शाम दीन-दुखियों को चावल बाँटो। गाँव में ढिंढोरा पिटवा दो कि आज शाम को...अऽ...स्कूल के बरामदे में सब लोग चावल लेने के लिए इकट्ठा हो जायें।"

फिर मोनाई की तरफ़ देखकर बड़े रूखे स्वर में दयाल ने कहा—"दारोगा का आदमी आये तो कह देना कि मैंने दारोगाजी को बुलवाया है। समझ लूँगा।"

कहकर दयाल ज़मींदार फौरन ही चल दिये।

"आओ मास्टर।" दयाल के कहते ही पांचू चुपचाप उनके साथ हो लिया।

पांचू को साथ लेकर दयाल अपने घर की तरफ़ चले। मोनाई हाथ मलता रह गया।

6

कोठी पर पहुँचते ही दीवानजी ने ज़मींदार को सूचना दी कि यूनियन बोर्ड के सेक्रेटरी मिस्टर दास आये हैं, और उन्हें गेस्ट हाउस में ठहराया गया है।

यह खबर सुनकर दयाल बेहद खुश हुए। पांचू से कहने लगे—"अगर दारोगा वाली बात सच भी है, तब भी मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। गाँव में यूनियन बोर्ड खुल जायेगा तब अगर चाहूँ तो मोनाई का सारा स्टाक जब्त करवाकर उसी दारोगा बेटे की निगरानी में अपने यहाँ उठवा मँगाऊँ। सरकारी गोदाम मेरे यहाँ ही रहेगा। सेक्रेटरी और एस.डी.ओ. को कुछ ले-देकर दारोगा साले को ऐसा अँगूठा दिखाऊँ कि वो भी ज़िन्दगी-भर याद करे। और मोनाई को तो मैं तबाह करके ही दम लूँगा। कमीना मुझे पुलिस का डर दिखाता था! समझ लूँगा... उसकी पुलिस..."

इसके बाद दयाल ज़मींदार ने पुलिस और ब्रिटिश राज की माँ-बहन के साथ गहरा रिश्ता जोड़ते हुए पराई हुकूमत पर अपना गुस्सा ज़ाहिर किया।

पांचू तब यह सोचने लगा कि हुकूमत के हामी भी हुकूमत को कितनी बुरी नज़र से देखते हैं। और उसे आश्चर्य हुआ कि फिर भी दयाल और उसके वर्ग के लोग दुनिया पर अपनी हुकूमत कायम रखना चाहते हैं। आदमी जिस चीज़ से नफ़रत करता है, उसी को चाहता भी है—मनुष्य के स्वभाव में यह विरोधाभास क्यों?

दयाल ज़मींदार पांचू को आज अपने शीशमहल में ले चले। शीशमहल की शोहरत दूर-दूर तक फैली हुई थी। पड़ोस के एक दूसरे ज़मींदार, गौरीपुर के नवाब साहब को नीचा दिखाने के लिए ही दयाल ने यह शीशमहल बनवाया था। पुश्तैनी हवेली का मेहमानखाना बहुत खस्ता हो गया था। उसकी मरम्मत कराने का इरादा करते-करते, लाग-डाट के फेर में, नये सिरे से तिमंज़िली इमारत बनवा डाली। गौरीपुर के नवाब ने अंग्रेज़ी ढंग का मेहमानखाना बनवाया था। शहर से बिजली का कनेक्शन तक दौड़ा मँगाया। दयाल ज़मींदार ने तैश खाकर कलकत्ते से इंजीनियर बुलाये। गौरीपुर के नवाब ने सिर्फ़ बिजली ही लगवाई

थी, इन्होंने टेलीफ़ोन भी मँगवा लिया। थैलियों के मुँह खोल दिये। फर्शी मंज़िल पर नयी कचहरी बनी; गुमास्तों को बरसों की मसनद-गद्दी छोड़कर कुर्सी-मेज़ पर बैठने की आदत डालनी पड़ी। दीवानजी का कमरा अलग बना। ज़मींदार की कचहरी में सिंहासननुमा कुर्सी, एक बड़े और मोटे कालीन पर सामने रखी गयी; कुलीन और सम्मानित सदस्यों के लिए सिंहासन के दोनों तरफ़ सोफ़ा सेट रखे गये। बिजली की रोशनी और पंखों की तो भरमार थी। पहली मंज़िल पर एक तरफ़ दयाल ज़मींदार की लायब्रेरी थी, और दूसरी तरफ़ मेहमानों के लिए कमरे। सबसे ऊपर शीशमहल बनवाया गया था। शीशमहल देखा बहुत कम लोगों ने था, मगर तारीफ बहुतों ने सुनी थी।

पांचू पहली मंज़िल तक से परिचित था। लाइब्रेरी में वह दयाल के लड़के को पढ़ाया करता था। मेहमानों के कमरे भी उसने देखे थे और उनकी सजावट से वह प्रभावित भी हुआ था। शीशमहल देखने की इच्छा तो बहुत दिनों से थी, परन्तु खुद कहकर देखना उसे पसन्द नहीं था। आज दयाल ज़मींदार के संग वह शीशमहल वाली मंज़िल पर गया।

बड़े हॉल में घुसते ही दाहिनी तरफ़ एक बनावटी झरना और उसके साथ ही लगा हुआ फव्वारा था। झरने से लगी हुई दीवार पर, शीशे में जंगल और झरने का दृश्य अंकित किया गया था। बनावटी झरने में जगह-जगह रंगीन बल्ब फिट किये गये थे। दीवारें शीशों पर बनी हुई रंगीन तस्वीरों से मढ़ी हुई थीं। बीच-बीच में कद्दे-आदम आईने लगे हुए थे। पेंट की हुई छत थी जिसमें बिजली के झाड़-फानूस लटके हुए थे। कीमती फ़ारसी कालीनों से हॉल का संगमरमरी फ़र्श सजाया गया था। आधे हॉल को घेरे हुए दो फुट ऊँचा गद्दा पड़ा था, जिस पर रेशम की चाँदनी बिछी हुई थी। रेडियोग्राम, पियानो, हारमोनियम, तबला, सितार, वीणा, वायलिन एक ओर सजाकर रखे हुए थे। शराब के लिए दो कीमती मेज़ें दोनों तरफ़ रखी हुई थीं। दरवाज़ों पर रेशमी पर्दे पड़े थे। हॉल के चारों कोनों में शीशम के खूबसूरत स्टैंडों पर विभिन्न मुद्राओं में नग्न नारी-मूर्तियाँ रखी हुई थीं। हर दरवाज़े के दोनों तरफ़ खूबसूरत स्टूलों पर गंगा-जमुनी गमलों में विलायती फूल शोभा बढ़ा रहे थे। हर दो तकियों के बाद गद्दे के नीचे पीतल के बड़े-बड़े उगालदान भी रखे हुए थे। उसके बाद रास्ते के लिए थोड़ी-सी जगह छोड़कर हॉल के दोनों तरफ़ दीवारों से सटाकर दो बड़े-बड़े खूबसूरत शो-केस रखे हुए थे, जिनमें दयाल और उनके कुछ पुरखों द्वारा अन्य ज़मींदारों, नवाबों और अंग्रेज़ दोस्तों से पाये हुए उपहार सजाकर रखे गये थे। उनमें ज़्यादातर चाँदी और सोने के खिलौने, मूर्तियाँ, सागर व सोना के सेट वगैरह थे। उन उपहारों में एक बर्मा के बने हुए भगवान बुद्ध भी थे, जिन्हें दयाल ज़मींदार को एक नामी-गिरामी नवाब दोस्त ने भेंट किया था। दयाल ज़मींदार के परदादा को मीर ज़ाफर ने खिताब, खिलअत व सनद भी दी थी, सो भी शो-केस की सजावट बढ़ा रही थी। बड़े-बड़े अंग्रेज़ अफ़सरों से पाये गये उपहारों में अट्ठानवे फीसदी उनकी दस्तखती तस्वीरें थीं; दो-तीन मेम साहबाओं की भी थीं। पिछले कलक्टर की मेम ने अपनी तस्वीर पर 'टु डियर दयाल' लिख दिया था।

सामने हाथी-दाँत के नक्काशी किये हुए अठपहलू फ्रेम में एक कीमती घड़ी थी।

दयाल ज़मींदार ने बड़े उत्साह और अभिमान के साथ पांचू को हर चीज़ दिखायी और कहा—"इस कमरे में रीयल ब्यूटी तो शाम को देखना मास्टर! और इसके बाद वह जो अन्दर का रॉयल कमरा है न, उसे भी दिखाऊँगा तुम्हें! देखकर तुम भी कहोगे कि हाँ, किसी रईस का विलास-भवन देखा।"

फिर उन्होंने हॉल की हिन्दुस्तानी सजावट का खास तौर पर ज़िक्र करते हुए बतलाया —"इसमें एक पोलीसी है। कोई अंग्रेज़, चाहे वह लाट साहब का नाती भी क्यों न हो, मेरे शीशमहल में आयेगा तो उसे हिन्दुस्तानी ढंग से ही बैठना पड़ेगा। कुर्सियाँ जान-बूझकर ही नहीं रखवाई हैं मैंने। हिन्दुस्तानी नाच-गानों की महफिलें करवाता हूँ, कि बेटा, लुक अवर नेशनल आर्ट।"

इसके बाद दयाल ज़मींदार ने यह कहकर पांचू की इज़्ज़त-अफजाई की कि आइन्दा किसी महफिल में वह उसे ज़रूर बुलायेंगे। फिर नौकर को बुलाकर झरने वाली टंकी में पानी चढ़ाने का हुक्म दिया। झाड़ और फानूसों से गिलाफ उतरवाये। आज मास्टर बाबू की खातिरदारी में शीशमहल को रौशन किया जायेगा।

पांचू को इस समय दयाल ज़मींदार की दोस्ती और अपने शीशमहल देखने के सौभाग्य से गर्व नहीं हो रहा था। उसे गुस्सा आ रहा था कि दयाल के पास इतना ऐश्वर्य क्यों है। उसे दयाल से नफ़रत हो रही थी। इसीलिए वह शुरू में ज़्यादातर चुप रहा। बोलने का काम खुद दयाल ज़मींदार कर रहे थे। हर बात में वह अपना ही शाहनामा बखान रहे थे। पूरी बेतकल्लुफी बरतते हुए पांचू अकड़कर मसनद पर लेटा रहा। शरबत आया, शरबत पिया—जैसे वह उसका हक हो। पनडब्बे से पान निकालकर खाता रहा।

सुनते-सुनते और मन ही मन विद्रोह करते हुए पांचू थक गया। आखिर विद्रोह फूटा और बीच-बीच में खुद उसने भी लनतरानियाँ सुनानी शुरू कीं। वह दयाल ज़मींदार को पछाड़ना चाहता था। उसने यह प्रकट किया कि जैसे उसे रईसों से इन आराइशों और महफिलों की सदा से आदत रही है। अमेरिकन प्रिंसिपल मि. जॉर्डन का प्रिय शिष्य होने के नाते उसे विलायती समाज में दुनिया देखने के हज़ारों मौके मिले हैं। विलायती मर्द और औरतों को प्यार और मुहब्बत में जी खोलकर आज़ादी बरतना अच्छा लगता है।

ऐश्वर्य का भूखा बुद्धिजीवी पांचू धनाधीश होने के कारण 'बड़े आदमी' कहे जानेवाले दयाल ज़मींदार पर अपने बड़प्पन का सिक्का जमाने का प्रयत्न कर रहा था। अपनी विलासिता और रोमांस की झूठी कहानियों से उसने दयाल ज़मींदार पर अपना रंग जमा दिया।

दयाल ज़मींदार को कलकत्ते की कुछ विलायती कसबियों का हाल तो ज़रूर मालूम था, मगर अंग्रेज़ी सोसायटी का घुल-मिलकर लुत्फ उठाना उन्हें कभी भी नसीब न हुआ था। हर साहब को उन्होंने दावत दी थी, लेकिन किसी साहब ने उन्हें कभी पूछा तक नहीं—अपनी

तस्वीर में 'डियर दयाल' लिखनेवाली पिछले कलक्टर की मेम साहब ने भी नहीं। दयाल ज़मींदार पांचू के विलायती अनुभवों में रस लेने लगे। खोद-खोदकर पते की बात पूछते थे। पांचू की उड़न-छू लनतरानियाँ उन्हें होंठ काटने और रह-रहकर ठंडी-गर्म साँसें छोड़ने पर मजबूर कर रही थीं।

दयाल ज़मींदार के विलास-भवन में बैठकर अपने देशी-विलायती रोमांसों की मनगढ़ंत कहानियों से खुद पांचू को तकलीफ महसूस होने लगी। उसका चित्त चंचल हो उठा। दयाल के प्रति निरर्थक क्रोध और घृणा के थपेड़े स्वयं उसके मन पर ही तमाचे मारने लगे।

तभी मोनाई के आने की खबर मिली। दयाल ज़मींदार ने उसे वहीं बुला लिया। मोनाई आकर तरह-तरह से सलामतें-खुशामदें करने लगा।

पांचू को बेहद गुस्सा आ गया। वह शख्स आत्मसम्मान का भाव खोकर बड़े लोगों के सामने इस तरह गिड़गिड़ाया क्यों करता है? जात में, परजात में, सैकड़ों से अच्छी हैसियत रखनेवाले इस वैष्णव केवट के पैरों तले सारा गाँव दबा पड़ा है, चौदह पीढ़ियों के खानदानी ज़मींदार और रईस, दस-पंद्रह हज़ार अन्नदाता किसानों के स्वामी और अन्नदाता, श्रीमान दयाल चाँद विश्वास की परम्परागत प्रतिष्ठा को भी अपनी बढ़ती हुई शक्ति से बार-बार झटके देनेवाला, दुनिया की नज़रों में नीच और नाचीज़ यह मोनाई अपनी लाखों की दौलत लेकर भी दयाल ज़मींदार के सामने घुटने क्यों टेक देता है? यह दयाल का गुलाम क्यों बन जाता है? क्यों?...क्यों?

मोनाई की पराजय में पांचू इस समय अपनी पराजय देख रहा था। अपनी निर्धनता के कारण वह दयाल से हार गया था और यह चाहता था कि दयाल ज़मींदार जीत न पायें। खीझकर वह सोचने लगा, "मोनाई तो दौलतमंद है, फिर यह क्यों दबता है? दयाल को ये मुँहतोड़ तुर्की-बतुर्की क्यों नहीं सुनाता? कायर कहीं का!"

पांचू की अपनी कायरता भी झाँकने लगी। उसके आभास मात्रा से ही वह विचलित हो उठा। वह इन दोनों के आगे कायर हो जाता था। इस ग्लानि से बचने के लिए, वह ज़रा अकड़कर मसनद पर लेट गया और लेटे-लेटे ही पनडिब्बी की ओर हाथ बढ़ाया। पान खत्म हो चुके थे। फौरन ही उसने दयाल के नौकर को आवाज़ दी। दयाल ज़मींदार ने पूछा—"क्या चाहिए मास्टर?"

"कुछ नहीं। इस डिबिया के वैधव्य को देखकर ज़रा दया आ गयी।" पांचू ने मोनाई के सामने दयाल ज़मींदार से मज़ाक करके अभिमान का बोध किया।

'हो-हो-हो!' करके दयाल हँस पड़े। फिर मज़ाक का जवाब दिया—"यह विधवा नहीं, सदा सुहागिन है मास्टर। दिन में सैकड़ों आते-जाते रहते हैं।"

कहकर दयाल आप ही अपने मज़ाक का मज़ा लूटते हुए हँस पड़े।

पांचू ने भी सुर में सुर मिला दिया, कहने लगा—"इसीलिए तो और भी दया आती है। जिस दीपक के पास सैकड़ों पतंगे आते हों, वह यदि किसी समय पतंगाविहीन हो जाये तो

उसे कितनी पीड़ा होती होगी।...अरे, पान ले आओ।"

नौकर सामने खड़ा था। लगे हाथ पांचू ने उसे भी हुक्म दे डाला, और इस तरह हुक्म देनेवाले का एक मौका दयाल से झटककर उसे बहुत सुख हुआ।

मोनाई अपनी अर्ज़ी के फैसले का इंतज़ार कर रहा था। घुटनों में सिर झुकाये, हाथ बाँधे बैठा था। यहाँ की बातों पर उसका ज़रा भी ध्यान नहीं था।

छेदासिंह अपने मालिक का हुक्म पाकर दूसरे लठैतों के साथ मोनाई के गोदाम का मालिक बन बैठा था। बोरे उठवाकर उसने गोदाम से बाहर फिंकवा दिये। उन्हें देखकर आसपास फिरते हुए भूखे जन हिंसक आह्लाद और जोश से झपटकर समीप आये। बोरे यों फेंके जा रहे थे जैसे ठाकुर की मूर्तियाँ मन्दिर के बाहर फेंकी जा रही हों। लोगों को सहसा विश्वास नहीं हो रहा था। मोनाई के गोदामों में हज़ारों बोरे देखकर वही आत्मविश्वासमय आह्लाद उमड़ आया जैसा कि उन्हें ब्रह्मभोज और जूठन को देखकर हुआ था। परन्तु उनके पाँव ठिठककर रह गये। चावलों के इन बोरों में शहीदों का खून झलक रहा था, और वे खूनी ही इन बोरों को बाहर फेंक रहे थे।

मूँछों पर ताव देकर डपटता हुआ, छेदासिंह एक तरफ़ तो अपने लठैतों को बोरे निकालने का हुक्म देता, और दूसरी तरफ़ मोनाई की सात जाने-आनेवाली पीढ़ियों के साथ अपने क्षत्रिय रक्त का मौखिक रूप से मिश्रण भी करता जाता था।

बारह रूपल्ली का नौकर, मगर ज़मींदार का सिपाही ठाकुर छेदासिंह मोनाई जैसे लखपती के मुँह पर लात मार सकता था। ज़मींदार का सिपाही होने के नाते उसे प्रजा के जान-माल और आबरू पर सर्वाधिकार प्राप्त थे। छेदासिंह ने अपने साथ के पच्चीस लठैतों को चार-चार बोरे इनाम में बाँट दिये। दस बोरे चावल उसने अपने लिए रिजर्व किये, जिनमें से पाँच बोरे अपने जूतों के बल पर उसने मोनाई के साथ तत्काल बेचे भी और रुपये भी नकद वसूल किये। जूते मार-मारकर मोनाई का पानी उतार दिया। फिर वही पाँचों बोरे उठवाकर स्कूल में भिजवा दिये। इसके बाद उजड़े हुए गाँव में ढिंढोरा पीट दिया गया। ज़िन्दा लाशों में फिर से जीवन दमकने लगा।

मोनाई एक ही दिन की लूट में ठंडा पड़ गया था। चावल की लूट से भी ज़्यादा उसे जूतों की मार खाने का गम था। एक बार हाथ उठ जाने के बाद छेदासिंह अब उसे जब चाहेगा पीट लेगा, और मोनाई से यह रोज़-रोज़ की मार हरगिज़ बर्दाश्त न हो सकेगी। इसीलिए, दयाल के सिपाही के जूतों से बचने के लिए, उसे मजबूर होकर फिर दयाल की ही शरण में आना पड़ा था। स्वार्थ ने उसे मजबूर कर दिया था। उसने बिना किसी शर्त के दयाल ज़मींदार के सामने आत्मसमर्पण कर दिया।

हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए मोनाई बोला—"आप तारैं तो तर जाऊँ, और मारना चाहें तो हजूर के चरन-कमल में दास का सिर हाज़िर है। बाकी अन्नदाता, अब छिमा कर दीजिये। आप माई-बाप हैं, जो दंड मंज़ूर करेंगे उसे सिर-माथे पर धरौंगा सरकार। मुल मेरे पेट पर

लात न मारैं राजा बहादर—मेरे रुजगार की रच्छा कर लें।"

मोनाई की इसी पराजय से प्रसन्न होकर दयाल बाबू पांचू मास्टर से मज़ाक करते हुए अपनी खुशी ज़ाहिर कर रहे थे। अपनी शक्ति का माहात्म्य बखानते हुए उन्होंने यूनियन बोर्ड के सेक्रेटरी के आगमन की सूचना मोनाई को दे दी थी। एक नौकर को भेज भी चुके थे कि सेक्रेटरी साहब अगर गुस्ल वगैरह से छुट्टी पा चुके हों तो उन्हें ऊपर बुला लाये।

मिस्टर दास तशरीफ लाये। साँवला रंग, निहायत दुबले, लम्बा कद, रेशमी सूट पहने, सुनहरी कमानियों का अठपहलू शीशों वाला चश्मा लगाये, हाथ में 555 सिगरेट का टिन लिये हुए, और होठों में एक सिगरेट दबाकर मिस्टर दास ने ज़मींदार दयाल विश्वास, हेडमास्टर पांचू गोपाल और व्यापारी मोनाई बोष्टम को अपने प्रथम दर्शन से कृतार्थ किया।

दयाल ज़मींदार तपाक के साथ उठकर खड़े हो गये। कुर्सी के गुलाम मोनाई ने खड़े होकर कमानी की तरह अपने को झुकाकर अदब से हाथ जोड़े। पांचू भी उठकर बैठ गया। मगर खड़ा नहीं हुआ।

मिस्टर दास पहली ही झलक में पांचू को फूटी आँखों न सुहाये। मिस्टर दास पतलून की क्रीज़ को नज़ाकत के साथ सँभालते हुए मसनद के सहारे बैठे। सफर की तकलीफ-आराम पर दो सवाल-जवाब हुए। फिर दयाल ने मिस्टर दास का हेडमास्टर पांचू गोपाल से परिचय कराया, बड़ी तारीफ की। पांचू ने अपनी तरफ़ से बनावटी शिष्टाचार दिखाया। उसे मिस्टर दास का बन-बनकर बोलना फूटी आँखों नहीं सुहा रहा था।

मिस्टर दास की नज़र अदब से हाथ बाँधे और सिर झुकाकर खड़े हुए मोनाई की तरफ़ भी गयी। मिस्टर दास को अपनी तरफ़ मिलाने की गरज़ से दयाल ने टूटी-फूटी अंग्रेज़ी में मोनाई का चिट्ठा खोलना शुरू किया। 'ड्यामफूल, राश्कल' आदि नामों से बंगाली-अंग्रेज़ी में मोनाई को याद करते हुए दयाल ज़मींदार ने हँस-हँसकर मिस्टर दास से कहा—"आपके आने की खुशी में अपने गाँव का यह सबसे उम्दा तोहफा आपको प्रेजेंट करता हूँ।" इसके ऊपर हँसी हुई। पांचू हँसने के खिलाफ था, लेकिन मुस्कुराने पर मजबूर हुआ।

मोनाई के लिए दयाल ज़मींदार का मिस्टर दास से हँस-हँसकर अंग्रेज़ी में बातें करना असह्य हो उठा। बड़ी घबराहट के साथ वह सोच रहा था—"भगवानजी ही जानें, कौन-सी घात साध रहे हैं ये लोग। ये बार-बार मुस्कुराय-मुस्कुराय के हमारी तरफ़ इशारेबाज़ी कर रहे हैं, इसका जौन फल मिलै तौन कम है। एक ससुर जमराज और दूसरा जमदूत—मेरे घर को खेत बनाय के चर जावैंगे—ज़रूर चर जावैंगे।"

एक लम्बी काँपती उसाँस लेकर मोनाई मन ही मन में टूट गया। उसे पूरा-पूरा यकीन हो गया था कि—"ये राहू-केतु दोनों मिलकर हमें आज जीता न छोड़ैंगे। राम जाने, कौन साइत बिगड़ गयी रही उस दिन। दाम लैके चावल दै देता तो परजा जै-जैकार मनाती। न कौन गोली चलती, न ज़मींदार गुदाम देखते। हज़ार-पान सौ नफा कमाने के फेर में अब ये जनम-भर की कमाई लुटी जाती है। भगवानजी, ऐसा कौन-सा पाप किया था मैंने?"

मोनाई सतर्क होकर अपने को टटोलने लगा। किसी पाप के कारण ही उसकी यह दुर्दशा हुई है, इसका उसे डर था। पाप का ध्यान आते ही फौरन उसके प्रायश्चित्त का संकल्प कर, उस दर्शना हुँडी को दिखाकर भगवान के साथ सौदा पटाने की सूझी।

"मुल बिना पाप जाने परासचित कौन-सा किया जाये? वैसे जब से कण्ठी ली, अपनी जान में तौ कौनो पाप किया नहीं मैंने। चींटी को चारा देता हूँ, गौ भी हैं, मन्दिर में ठाकुर जी और गोमाता की सेवा होती है। पुजारी जी को इसी हेत रखा है। पुजारी जी को तनखाय देता हूँ, परबतिउहार के दिन जैसी सरधा है वैसा दान-पुन्न भी करता ही हूँ—इस तरह ब्राह्मन की सेवा भी कर देता हूँ। तब कौन-सा पाप मुझसे भया है नाथ? सवेरे चार बजे माला भी जपता हूँ तुम्हारे नाम की। मुल परसों लेट हुइ गया रहा, साढ़े चार बजे आँख खुली थी। मुल इससे क्या, जिस दिन गोली चली रही उस दिन तौ सारी रात जागरन करके माला जपता रहा था। हाँ, सूतक में जपी रही। गिन्नी ने मना भी किया था कि सूतक में कंठी न छूना। मुल परेतों का ऐसा भय था कि कंठी हाथ से न छूटी। बस यही पाप भया; इसी से भगवानजी का कोप मुझ पर भया है। मुल, भगवान जी, कीड़े को क्यों मारते हो? छिमा करौ नाथ। और जो आदमी मरे रहे उनका भी किरिया-करम अब तौ कराय दीना। बरमभोज भी हुई गया। और चलौ, जो रहा-सहा परासचित था सो भगवान जी ज़मींदार बाबू के रूप में हमसे पूरा कराय दीना।—देखौ, क्या माया है भगवान जी की। जित्ती बेला ज़मींदार बाबू ने छेदासिंह को अडर दिया कि गाँव-भर में चावल बाँट देओ, उत्ती बेला तौ मेरी छाती में मानो गोली दग गयी रही। मुल अब ध्यान आया कि उस दिन द्वार से सैकड़ों भूखे लौट गये रहे। ज़रा-से स्वारथ के फेर में हमरी मत अन्धी हुइ गयी रही। वैसे इसे स्वारथ क्यों मानैं? रुजगार-धंधा तौ करम है। भगवान जी भी कहते हैं कि करम करौ अपना। गाँववाले भूखे तौ ज़रूर रहे, मुल साधू-भिखारी थोड़े रहे। हाँ, साधू-भिखारी द्वार से भूखा लौटता तौ सचमुच बड़ा पाप लगता। इसमें क्या? ये तौ दुकनदारी ठहरी, सौदा पटा तौ दिया नाहीं तौ जै राधे। उल्टे वही लोग सब हमारे ऊपर अन्याय करने लगे। क्या भगवान जी ने नहीं देखा होगा कि मोनाई बोष्टम निरदोष है? औ' मान लेओ कि मायामोह में पड़े सिंसारी जीव हैं, कोई अपराध अनजाने में बन पड़ा होय, तौ भगवान जी ने उसके परासचित में ये डंड दै दीना—जूते खाये, गालियाँ सुनीं, लूटे गये—क्या-क्या दुर्गत नहीं भई? बहुत डंड हुइ चुका नाथ। हे दीनदयाल, अब छिमा करौ। देखौ, हमारा चावल ही आज भूखों में बाँटा जा रहा है। दुनिया समझे कि दयाल ज़मींदार ने अन्नदान दिया, मुल हे दीनानाथ, तुम तौ अन्तरजामी घट-घट व्यापी हौ—तुम तौ सब जानते हौ। मैं संसारी कीड़ा ज़रूर हौं, पर...पर तुम्हारा भगत हौं। तुम्हारी सरन में दिन-रात पड़ा रहता हौं। इन पापियों से मेरा गला छुड़ाओ दीनबन्धु! हे दीनानाथ, नाथों के नाथ, इस पापी को नाथौ। कालियानाग से कुछ कम नहीं है हे दयाल। इस ससरे के काटे का मंतर नहीं है। बड़े-बड़े हत्तियाचार किये हैं इसने। इसके जुलुम से पिरथी थर्राय उठी है, ये अकाल पड़ रहा है। जिस गाँव का राजा पापी है, उसमें तौ ज़रूर ही अकाल पड़ेगा—बेद-सासतर तक में यही

बात लिखी गयी है। सारे बंगाल में इसके जैसे पापी ज़मींदार भरे पड़े हैं। ये सब साले गौरमिण्ट से मिल गये हैं। इन्हीं सबौं ने रुपिया दै-दै के गाँधी महातमा और नेता लोगन को जेल में बन्द करवाय दीना है। पुलुस से गोलियाँ चलवाय के आन्दोलन दबवाया इन लोगों ने। अभी, मेरे यहाँ भी इसी राच्छस दयाल के आदमियों ने गोलियाँ चलाईं। मैंने तो किसी पर एक हाथ भी नहीं उठाया। उल्टे मैं ही मार खाता रहा, भगवान जी जानते हैं। ये सब बड़े लोग बस अपना ही स्वारथ चाहते हैं। गरीब की बढ़ती तौ देख ही नहीं सकते। अरे, इनका भी सत्तियानास हो जायेगा। आने दो ज़रा सुभाष बाबू को फ़ौज ले के। वो इनको कालेपानी भेजैंगे और इनकी सरकार को भी। सब गरीब लोग ही तब सेठ-साहूकार और ज़मींदार बनाय दिये जायेंगे। अरे, एक बार सुराज हुइ जाने देओ तब हम गरीबों के दिन भी बहुरेंगे।"

मोनाई के लिए इस तरह निराद्रित होकर हाथ बाँधे बैठे रहना असह्य हो रहा था। डेढ़ घंटा हो गया, किसी ने इसकी तरफ़ आँख उठाकर भी न देखा। मोनाई की जान सूली पर लटकी हुई थी; उसका रोज़गार-धंधा, चाल-कुचाल, सब दयाल ज़मींदार के फैसले पर ही निर्भर करता है। मगर दयाल ज़मींदार पांचू मास्टर और मिस्टर दास के साथ हँसी-मज़ाक में मगन थे। शर्बत और फलों का नाश्ता हुआ; दम पर दम और सिगरेटें चलती रहीं; हा-हा, ही-ही होती रही—वक्त यों ही बीतता रहा।

शीशमहल जगमगा उठा। इन लोगों ने तब जाना कि बाहर अंधेरा हो चुका है।

कमरे-भर में रंग ही रंग दिखायी देने लगे। काँच पर बनी हुई, बड़ी-बड़ी तस्वीरों के पीछे बल्ब जगमगा उठे। झाड़-फानूसों में जोत जग गयी। बीच-बीच में लगे हुए बड़े-बड़े आईनों से विस्तार पाकर शीशों में मढ़ा हुआ हॉल एक विशाल शीशमहल का भ्रम कराने लगा।

मेहराबदार, और जगह-जगह से घुमाकर पतली सीढ़ियों पर से उछलता हुआ सतरंगी पानी का झरना बह रहा था। गहरे बैंजनी रंग के निहायत छोटे-छोटे बल्बों से पहाड़, हरी रोशनी के दरख्त और पीले-लाल फूल रोशन थे। सतरंगी पानी का झरना उभरकर नज़रों में आता था। नीचे रंगीन फव्वारा! रंग-बिरंगी रोशनियों को अपनाकर पानी की बूँदें ऊपर की ओर उछल रही थीं। झरने के पीछे, शीशे पर बना हुआ जंगल और पहाड़ों का दृश्य (निमिष-मात्र के लिए) प्रकृति का भ्रम उत्पन्न करता था। पेड़ों से झाँकते हुए चन्द्रमा और तारों-भरी रात में, दरख्त की एक शाख पर फूलों का हिंडोला डाले हुए एक नग्न सुन्दरी झूल रही है। एक तस्वीर, 'नूरजहाँ की सुहागरात' बनी थी। जहाँगीर के रंगमहल के दरवाज़े की चौखट पर एक पैर रखे, लाज की मूर्ति नूरजहाँ, बारीक घूँघट में अपने मुखड़े पर बरसते हुए नूर को ढाँप लेने की कोशिश में ठिठकी हुई खड़ी है; और शहंशाह जहाँगीर आग्रहपूर्वक उसका स्वागत करने के लिए आगे बढ़ रहा है। एक दूसरी तस्वीर, 'विश्वामित्र मेनका'—तूफानी रात में राजर्षि की कुटिया में आश्रय पाकर छद्मस्वरूपा मेनका बेसुध होकर सो रही है। राजर्षि विश्वामित्र उसे गर्म वस्त्र उढ़ाने के लिए आये हैं; आँधियों से अस्त-व्यस्त वसन में धूप-छाँव-सी झलकती हुई अपराजिता नारी ने महातपस्वी के नेत्रों को बाँध लिया है। 'स्वर्ग यही है'—

इस चित्र में अनेकों अर्द्धनग्न और प्रायः नग्न रूपसियों से घिरा हुआ शहजादा बैठा है। नृत्य हो रहा है, दासी शराब का पात्र लिये खड़ी है; दो दासियाँ पंखा झल रही हैं, और शहजादे की बाँहों में जकड़ी हुई दो मदमाती रमणियाँ उसे रिझा रही हैं। इनके अलावा उमर खैयाम और साकी, गोपी चीरहरण, मुगल हरम का स्नानगृह, वसन्त, नारी का निमन्त्राण—संयोग के श्रृंगार के माँसल चित्रों से मन की वासनाएँ स्थूल होने लगीं। उनका वेग और भार हृदय में व्यग्रता उत्पन्न करने लगा।

पांचू, मिस्टर दास, मोनाई सब एकाएक शीशमहल के जगमगा उठने पर चौंककर देखने लगे। सबको चकित करनेवाले अपने वैभव को दयाल ज़मींदार ने भी चारों ओर नज़र घुमाकर देखा, और उनका चेहरा खुशी और दर्प से चमक उठा।

नज़रें बँध गयीं; खयाल बँध गये—नग्न सुन्दरियों से सेवित अलिफ-लैला के शहजादे की भाँति पांचू इस समय शीशमहल के विलासितापूर्ण वातावरण से घिरा हुआ था। उत्तेजना मन को अस्थिर करने लगी। अशान्त होकर उसने सोचा—"ये ऐश्वर्य दरअसल हमारे जीवन में है कहाँ? वह स्वप्न हम साधारण जनों के जीवन में साकार ही कब हो सकता है? विलासिता का यह आडम्बर पैसे का कोढ़ है, इन्सान के दिमाग की विकृति का भद्दा प्रदर्शन है।"

दयाल बाबू अपने ऐश्वर्य-चमत्कार को दिखाकर अब पारा चढ़ाने लगे। मोनाई का इंसाफ करने के लिए बढ़े। ज़बान ने तीरों से उसका रोम-रोम बींध डाला। फिर नौकर को बुलाकर छत पर 'सामान' लगाने का हुक्म दिया।

पांचू के मनोभाव दयाल ज़मींदार के विरुद्ध जा रहे थे।

मिस्टर दास दयाल के शीशमहल के जादू से बँधे हुए, मुँह और आँखें फाड़-फाड़कर तस्वीरें देख रहे थे।

मोनाई ज़मींदार के पैर पकड़कर गिड़गिड़ा रहा था। अपना अपराध स्वीकार कर वह दयाल ज़मींदार से दंड की भीख माँग रहा था। वह जानता था कि दयाल ज़मींदार लम्बी रिश्वत लिये बिना हरगिज़ न मानेंगे। इसलिए खुद अपनी तरफ़ से ही बात निकालकर उसने दयाल को बतलाया कि शास्त्र के अनुसार बिना 'डंड परासचित' किये उसकी गति नहीं; और वह हर तरह से सेवा में हाज़िर है।

पाँच सौ से बढ़ते-बढ़ते हज़ार बोरों पर 'डंड' पूरा हुआ। बीच-बीच में मोनाई ने दस हज़ार बार मालिक के चरणों की सौगंध खाकर भगवान और ईमान की दुहाई पीटी। सेक्रेटरी साहब को नज़राने में दो सौ बोरे देना तय हुआ। मोनाई सब कुछ खुशी और उत्साह के साथ स्वीकार करता चला गया। वह सोचता था कि सब कुछ लुट जाने से तो भागते भूत की लंगोटी ही भली है। अपनी चापलूसी और खुशामद से उसने ज़मींदार और यूनियन बोर्ड के सेक्रेटरी को खुश कर लिया।

पांचू अकेला पड़ गया था। उसका कहीं भी ज़िक्र न था। उसकी तरफ़ किसी का भी ध्यान न था। "यूनियन बोर्ड का यह कुरूप, अर्द्धशिक्षित और घमंडी सेक्रेटरी भी उससे बड़ा

है"—पांचू इस तरह से सोचता था और यह उसे खल रहा था। यह हार ब्राह्मण कुलोद्भव विद्वान पांचू मुखर्जी के हृदय को करुणार्द्र कर रही थी।

मोनाई अपनी बात पर कलई चढ़ाते हुए, सेक्रेटरी साहब के सामने अपने अन्नदाता दयाल की तारीफों के पुल बाँध रहा था—"ऐसा वैभव सारे बंगाल में किसी ज़मींदार का नहीं है। मालिक के सामने खास अंगरेज़ कलिट्टर तक किस तरह अपना टोप उतारकर गोटमैनी करता है; शहर के बड़े-बड़े हाकिम-हुक्काम और रईस लोग मोहनपुर के महाराजा का अतुल ऐश्वर्य देखकर किस तरह चकित होते हैं; किस तरह राजा इंद्र की अप्सराएँ मोहनपुर के महाराज के इस शीशमहल में नाचती आती हैं..." वगैरह लनतरानियाँ चवन्नी-भर सच में बारह आने झूठ मोनाई झाड़ता चला गया।

दयाल बहुत सन्तुष्ट होकर पूर्ण गम्भीरता के साथ सुन रहे थे। मिस्टर दास मोनाई के मुँह की तरफ़ देख रहे थे। लहर में आकर उन्होंने मोनाई से गाँव के 'नमक' का हाल पूछा।

मोनाई पहले तो सकुचाया, बनावटी मुस्कुराहट के साथ बोला—"सरकार, राजा के घर में भला मोतियों का काल होता है! मालिक का इसारा हुइ जाय तौ आज ही भिजवाय दूँ।"

मालिक ने इशारा कर दिया।

मौका साधकर मोनाई ने अब अपना तीर छोड़ा; कहने लगा—"सारा रुजगार-बैपार चौपट हो गया है। जो कहीं गाँव में यूनन बोट खुल गया तो मेरे मिट्टी के मोल बिकने की नौबत आय जायगी, अन्नदाता।" इसके बाद उसने अर्ज किया कि गाँव में उसके चावलों का सदावर्त बँटना बन्द हो जाये। वह यूनियन बोर्ड का सारा चावल खरीदने को तैयार है। सरकार दस रुपये के भाव से बेचेगी, वह बारह रुपये पर खरीदने को तैयार है।

दयाल और दास की नज़रें मिलीं। दयाल को उज्र न था। दास पन्द्रह के भाव पर बेचने को राज़ी हुए। मोनाई ने ज़ाहिर किया कि वह लुट चुका है। वरना पन्द्रह भी खुशी-खुशी दे देता। दास पन्द्रह के नीचे न हुए। मोनाई ने उस समय विशेष आग्रह न किया। दोनों सरकारों की सलामतियाँ और जै-जैकारियाँ मनाते हुए, रात में अज़ीमा के साथ 'दो' भिजवाने का वायदा करके वह चला गया।

मोनाई के जाने के बाद बातों का दौर बदला; यार लोग फिर रंगीनी में बहने लगे। शीशमहल की विलासिता दिलों पर छाने लगी।

हॉल के बायीं ओर बाहर पड़ती छत थी। नकली संगमरमर और संगमूसा का फ़र्श था, जिस पर अभी ही पानी छिड़का गया था। किनारे-किनारे फूलों के गमले रखे हुए थे। मुँडेरों पर सफ़ेद पत्थर की कूंडियों में फूल खिल रहे थे। छत पर चार छोटी आरामकुर्सियाँ रखी हुई थीं, शराब का इंतज़ाम था।

जेठ की धुली चाँदनी थी। दूर तक दिखायी पड़नेवाले खेतों के ऊपर पांचू एक अजीब किस्म की मनहूसियत महसूस कर रहा था। छत पर आने के बाद उसका मन और भी गिर गया।

शराब उसने ज़िन्दगी में कभी चखी न थी। मगर दयाल के सामने वह अपने को पक्का शराबी सिद्ध कर चुका था। लाख हीले-हवाले किये, मगर पकड़े जाने पर चोर के लिए सज़ा से छुटकारा पाने की कोई सम्भावना ही नहीं रह जाती। कड़वे घूँट को पी जाने के बाद नशे की उत्तेजना पांचू के अनुभवों में शामिल हुई। हारकर उसने अपने बारे में अच्छा-बुरा, कुछ भी सोचना बन्द कर दिया। थके हुए मनुष्य की तरह निश्चेष्ट होकर नशे की चढ़ती हुई तरंगों में वह बहने लगा।

विलायती रोमांसों की बातें फिर शुरू हुईं। दयाल ने पांचू को किस्से सुनाने के लिए कहा। इच्छा और अनिच्छा की विपरीत धाराओं में फँसकर अनिश्चित गति से बहता हुआ पांचू बातचीत में भाग लेने लगा। उसकी इच्छा वहाँ से उठकर भाग जाने की होती थी; मगर वह ऐसा न कर सका। वह अपने स्वभाव की असलियत से दूर जा रहा था।

शराब के साथ कुछ मुँह चलाने के लिए भी सामान आया। खाने की चीज़ें देखकर पांचू की आँखों में चमक आ गयी। पांचू का हाथ बढ़ा, लेकिन तुरन्त ही उसके दिमाग में सारे परिवार की भूख सिमट आयी। उसका हाथ रुक गया। मानसिक उलझन दूनी हो गयी। एकाएक वह कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ। दास और दयाल के पूछने पर जवाब दिया —"यों ही, टहलने को जी चाहता है।"

"अरे बैठो भी। यह भी कोई टहलने का वक्त है?" दयाल ज़मींदार ने पांचू का हाथ पकड़कर बैठा दिया।

मशीन के पुर्जे की तरह पांचू बैठ गया। कुछ क्षणों के लिए उसका मन उलझा। मगर भूख परेशान कर रही थी। भूखे परिवार के खयाल को ज़मींदार की दोस्ती की आड़ में छिपाकर उसका हाथ मेज़ की तरफ़ बढ़ा। पांचू खाने लगा। हर निवाला खाकर वह दिल की आवाज़ को दबा रहा था। गुनाह को भूलने के लिए वह गुनाह करके अपने साथ न्याय कर रहा था; उसने पढ़-सुन रखा था कि गम गलत करने के लिए शराब नायाब चीज़ है। पांचू इसके लिए भी कोशिश कर रहा था।

"दास बहुत ज़ोर-ज़ोर से बोलता है—बड़ी शेखी बघारता है," दयाल ज़मींदार पर उसका असर कम करने की गरज से पांचू ने बातों को नया रुख दिया। अंग्रेज़ी सरकार के जुल्म—बयालीस के विद्रोह से लेकर अकाल तक—वह जोश के साथ सुनता चला गया। सरकारी नौकरों को खास तौर पर लपेट में लिया; स्वार्थी, डाकू, रिश्वतखोर, राक्षस, देशद्रोही—जो कुछ भी नशे की धुन में ज़बान पर आया, कहता चला गया।

अंग्रेज़ सरकार और उसके नौकरों को गालियाँ सुनाने में दयाल ज़मींदार पीछे न रहे। यूनियन बोर्ड के सेक्रेटरी मिस्टर दास भी देश-प्रेम के नशे में बहने लगे। फिर उन्होंने अपने ऊपर दया उमड़ी—"हम भी क्या करें? जब चारों तरफ़ लूट देखते हैं तो हमारी तबियत भी ललचा उठती है। रिश्वत में साझा बँटाने की गरज से हमसे बड़े अफ़सरान हमें दबाते हैं। उनके लिए भी हमें लूट-खसोट करनी पड़ती है। आजकल दिल्ली से माल आ रहा है। वे

व्यापारी लोग थैलियाँ ले-लेकर हमारे पास आते हैं। फिर बताइये हम क्या करें? हम कोई ऋषि-मुनी तो हैं नहीं मास्टर बाबू! ये तो जब तक सोशलिज़्म नहीं आयेगा, देश की यही दशा रहेगी।

"आने दो सोशलिज़्म को!" पीकर दयाल ज़मींदार मेज़ पर खाली गिलास रखते हुए दहाड़े—"सोशलिज़्म वाण्टेड! लाओ सोशलिज़्म।"

नौकर आ गया, समझा सरकार कुछ माँग रहे हैं।

दयाल ज़मींदार अपनी ही धुन में कहते गये—"मास्टर, तुम हमारी पर...प...परशंसा में अच्चा-अच्चा लेख लिखो। तस्वीरें छपाओ हमारी सब अखबारों में। समझा? ऐं, क्या हम काबिल नहीं हैं? हैं न! देखो, हमसे बड़ा ज़मींदार कौन! कोई नई। हमने...हम अपनी प्रजा को चावल बँटवाया, दवा बँटवाया...और, और अब सोशलिज़्म बँटवाऊँगा। ज़रूर बँटवाऊँगा।"

दास और पांचू दयाल के नशे को देखने लगे। बात सोशलिज़्म से फिर शराब पर आयी, औरतों पर आयी, जवानी पर आयी, और देखते-देखते ही ज़बानों पर पलँग बिछने लगे। शराब की तेज़ी ने वातावरण में गर्मी पैदा कर दी।

दयाल बोले—"माऽऽस्टर चाऽर-चाऽर अ-अ औरतों...समझे? दो बोतल ह्विस्की पीके... बट...नेऽव्हर नेऽव्हर डाउन। क्या समझे? आं-ं-ं-ं?"

फिर गिलास टेबल पर रखते हुए वृन्दावन को आवाज़ दी। यह दयाल का पाँचवाँ पैग था; मिस्टर दास छठा खत्म कर रहे थे, और पांचू ने अभी तक पहले गुनाह से ही छुटकारा नहीं पाया था। दयाल ज़मींदार ने मिस्टर दास के गिलास पर नज़र डाली; तीन-चौथाई खाली हुआ था। दयाल बोले—"अबे पी जा। पी जा। देखूँ, आज कितनी पीता है तू!"

सिगरेट का आखिरी कश खींच, उसे फेंककर धीरे-धीरे धुआँ छोड़ते हुए मुस्कुराकर मिस्टर दास ने कहा—"डोण्ट वरी सनी, मैं टू बाटल्स तक नार्मल रहता हूँ।"

दयाल ज़मींदार हँसे, फिर हँसते हुए बोले—"अबे हाँ-हाँऽ, पराये धन पर गुलछर्रे उड़ाते हैं। पिये जा, पिये जा जी खोल के। मेरा दिल भी तेरी ब्रिटिश गवरमैंट से कम नहीं है। वृन्दावन! भरे जा साले का गिलास। साले को हिज़ मास्टर वाऽऽ...नई...हिज़ मास्टर्स कंट्रीज़ वाइन...प्योर ह्विस्की—पिलाकर इसकी सरकार को गालियाँ सुनाऊँगा।"

दयाल बड़ी ज़ोर से ठहाका मारकर हँस पड़े। फिर उभड़े—"पियो बेट्टा! वृन्दावन, शाहब का मूं में बोतल का मूं लागा देओ। पियो शालाऽ।"

दयाल ज़मींदार खुद उठ आये, वृन्दावन के हाथ से बोतल झटककर मिस्टर दास की तरफ़ बढ़े—"शाला, तुमको खूब पिलाऊँगा। नई-नईऽ! शाला बोलता, दो बॉटल पी जाता। हामको धमकी देता! ऐं:? पांश्शौ रुपट्टी का नौकर शाला—दुश्मन का कुत्ता! शाला शमजता, दयाल बिश्वास दो बोतल ह्विस्की नईं पिला शकता। हरामज़ादा, हाम तुमको दस बोतल पिलायेगा। शाला, जाके बोलना अपनी गवरमैंट को कि इंडियन ज़मींदार का दिल क्या है!"

दयाल ज़मींदार एक हाथ से मिस्टर दास का कंधा पकड़कर उन्हें कुर्सी से दबाते हुए उनके मुँह में बोतल ठूँसने की कोशिश करते हुए ललकारने लगे।

मिस्टर दास आफत में फँस गये थे। अपने दोनों हाथों से दयाल को दूर हटाने की कोशिश कर रहे थे। बीच-बीच में दो-दो, चार-चार शब्द फूट जाया करते थे—"ये क्या मिस्टर विश्वास? देखिए, देखिए। सच्ची की मज़ाक अच्छी नहीं होती। आप बहुत पी गये। आप मेरी बेइज़्ज़ती कर रहे हैं। मैं बहुत खा रहा हूँ, वरना..."

दुबले-पतले मिस्टर दास कुर्सी पर ही बैठे-बैठे हाथ-पैर पटक रहे थे। गुस्से के मारे गले में आवाज़ अटकती थी। गुलामी की ज़मीन पर पनपनेवाली अफ़सरी की बू लाजवंती के पौधे की तरह मुरझा गयी थी।

नशे में उभरनेवाली दयाल की उद्दण्डता पांचू पर भी असर कर रही थी। वह बेहद घबरा रहा था। वह सोचता था—"अगर मेरे साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया तो...घूँसा मारूँगा। ऐसी ज़ोर से मारूँगा कि याद करेगा।...नहीं, ज़रूर मारूँगा, फिर चाहे कुछ भी हो जाये। ये दास साला बोदा है। बैठा-बैठा में-में कर रहा है, यह नहीं होता कि धक्का दे। मरने दो कायर को। लेकिन यह ठीक नहीं। इसके बाद दयाल मेरे ऊपर टूट पड़ेगा। नशे में आदमी का क्या भरोसा? इसे रोकना चाहिए।"

दो-तीन बार पांचू ने अपने विचार की पुष्टि की और फिर हठात् उठकर दयाल को मिस्टर दास से अलग किया—"ये क्या कर रहे हैं दयाल बाबू?"

दयाल ने एक बार घूमकर गौर से पांचू को देखा। पांचू घबराया। दयाल बोले—"पिला रहा हूँ। तुम भी पियो। इसको, साले गवरमैंट के नौकर को भी पिलाओ। पी साले।"

पांचू बेहद घबरा उठा था; और साथ ही उसे क्रोध भी आ रहा था। दयाल को घसीटकर अलग करते हुए वह बोला—"मगर आप कर क्या रहे हैं? अपने मेहमान के साथ ऐसा बर्ताव किया जाता है?"

मिस्टर दास को सहारा मिला। दिल का दर्द उभर आया—"देख लीजिए, देख लीजिए, मिस्टर मुखर्जी! ये कितना अत्याचार कर रहे हैं मुझ पर? ऐसे ही अत्याचारी ज़मींदारों के कारण ही तो हमारा देश गुलाम बना है और ऊपर से गुलाम भी कहता है...गुलाम...मुझको!"

मिस्टर दास फूट-फूटकर रोने लगे, रोते-रोते कहा—"मैं आत्महत्या कर लूँगा। ये गुलामी का जीवन मुझे भार है।"

पांचू बुरी तरह से घिर गया था। दो-दो शराबी, दोनों ही अपने-अपने रंग में गाढ़े होते चले जाते हैं—कैसे इनसे छुटकारा मिलेगा? कहीं कुछ हो गया तो?

पांचू अस्थिर हो उठा।

वृन्दावन मूर्ति की तरह चुपचाप खड़ा था। उसका सिर झुका हुआ था। अदब से हाथ बाँधे खड़ा था। उसे मालिक और उनके दोस्तों की किसी जा-बेजा हरकत को देखने का अधिकार नहीं; उससे यह उम्मीद की जाती है कि ऐसे-ऐसे मौकों पर वह मालिक और उनके

दोस्तों की किसी भी अच्छी या बुरी बात को नहीं सुन रहा। वह शून्य रहा। वह शून्य है, नौकर और कुछ भी नहीं।

पांचू ने घबराकर वृन्दावन की तरफ़ देखा। उसकी झुकी गर्दन और निर्विकार मुद्रा देखकर वह झुंझला उठा, कहा—"देखते क्यों नहीं साहब को। संभालो उन्हें।"

दयाल ज़मींदार अब तक अपनी कुर्सी पर बैठ चुके थे। दास के रोने और पांचू के डाँटने से उनका पारा एक डिगरी नीचे उतर चुका था। पांचू को घबराया हुआ देखकर बोले—"कुछ फिकर मत करो मास्टर। ज़रा चढ़ गयी है दास बाबू को।"

मिस्टर दास गर्म होकर बोले—"मुझे नहीं, आपको चढ़ गयी है मिस्टर विश्वास। आपने एटीकेट का...आपको इस तरह से मेरा अपमान..."

दास का गला फिर भर आया। आँसू उमड़ पड़े।

दयाल संभले। उन्हें खयाल हो आया कि वे आनन्द मनाने बैठे हैं। दास को समझाने लगे; दार्शनिक मूड में आकर कहने लगे—"चार दिन की ज़िन्दगी में किसी से लड़ना-झगड़ना नहीं चाहिए। खाओ-पियो मौज करो—यही जीवन की बहार है। कल तुम कहाँ होगे और हम कहाँ होंगे। आओ पियें।"

फिर से महफिल आबाद हो गयी। दास और दयाल, दोनों ही नशे में एक-दूसरे के बहक जाने पर हँसने लगे। एक-दूसरे से बेहद घुल-मिल गये। वृन्दावन को खाली गिलास भरने का हुक्म हुआ। हुक्म की चाभी पर चलनेवाला पुतली वृन्दावन अपना काम करने लगा।

पांचू को डर लगा कि दयाल इस बार कहीं बोतल लेकर उसके सिर पर न धमक जाये। उसका पहला गिलास भी अभी तक आधे से ज़्यादा खाली नहीं हुआ था। ज़िन्दगी में पहली मर्तबा उसने शराबियों को इतने निकट से देखा था! वह मन ही मन घबरा रहा था।

वृन्दावन दयाल के गिलास में ढाल चुकने के बाद अब दास के गिलास को हाथ में उठा चुका था। इससे पहले कि वह पांचू की तरफ़ बढ़े, पांचू ने अपना आधा भरा हुआ गिलास हाथ में उठा लिया, और गिलास की तरफ़ देखते हुए कहने लगा—"काश कि आदमी का खून भी इस शराब की तरह सुनहला होता, तब उसकी भी कीमत कम-से-कम उतनी तो लगती ही जितनी कि शराब की है।"

दयाल और दास पर इसका प्रभाव पड़ा। दोनों पांचू की ओर देखने लगे। अपने विद्वान होने के यश का लाभ उठाते हुए, भड़कीले वाक्यों की आड़ में पांचू कतराकर निकल रहा था —"इस गिलास में जितनी कीमत का पानी भरा है, उससे दस आदमियों का पेट भर सकता है। मरभुखों की मौत ही इस गिलास के सुनहले पानी में नशा बनकर हम लोगों को खुश कर रही है। आइये, हम हज़ारों की मौत का एक जाम पियें।"

कहकर झटके के साथ पांचू गिलास को होंठों तक लाया। शराब ने होंठों को छुआ। पांचू ने गिलास रख दिया।

नाटक सफल हो गया। दयाल और दास दोनों ही, पांचू के वाक्य-चमत्कार से पूरी तरह

प्रभावित हो गये। वृन्दावन इससे बेअसर अपना काम करता रहता—गिलासों में सोडा डालने के बाद हाथ बाँधकर, सिर झुकाकर खड़ा रहा। पांचू के कहने के साथ ही दयाल और दास ने भी अपने गिलासों को उठाकर हज़ारों की मौत के जाम पिये।

"हज़ारों की मौत का जाम," इस वाक्य ने दयाल और दास के भावुक हृदयों को कविता की तरह स्पर्श किया था। शराब से भरे गिलास के सामने मरभुखों की बात पहले उन्हें झटका देनेवाली सिद्ध हुई थी। उन्हें शराब में गुनाह दिखायी देने लगा था, जो वह न देखना चाहते थे। लेकिन जैसे ही पांचू ने नाटकीय ढंग से मरभुखों की मौत पर एक जाम पीने को कहा, उनके दिलों की बाँछें खिल गयीं। यह वे कर सकते थे। कठोर सत्य शौक का घूँट बनकर हलक के नीचे उतर गया। सहानुभूति नशा बनकर दिमाग पर सवार हो गयी।

दास बताने लगे कि जहाँ-जहाँ वह गये, उन्होंने किस तरह हज़ारों नंगे-भूखों की महादुर्दशा को अपनी 'इन्हीं' आँखों से देखा। किस तरह उनके दिल में अपने देश की गुलामी के लिए दर्द उमड़ा, अन्न से भरे हुए सरकारी गोदामों को देखकर किस तरह उनकी इच्छा होती थी कि वह इन गोदामों को खाली करवाकर गरीबों को बँटवा दें—"हाय! हमारा प्यारा भारतवर्ष, हमारा बंग देश! क्या दुर्दशा हो गयी हमारी! जिस पवित्र भूमि पर दूध-घी की नदियाँ बहा करती थीं, वहीं अब अन्न के एक-एक दाने के लिए लोग मोहताज हैं?"

मिस्टर दास ने देश के दु:ख से अति द्रवित होकर फिर शराब का एक घूँट पिया।

दयाल ज़मींदार ने ठंडी साँस छोड़ी। कहने लगे—"मास्टर, सच कहता हूँ, बार-बार मेरी इच्छा होती है कि अपना सब कुछ इन गरीबों को बाँट दूँ। हाय-हाय, कितना कष्ट है इन बेचारों को।"

कुछ देर के लिए सब मौन हो गये। दयाल और दास की बातों से पांचू ने उनमें मानवता की एक झलक देखी। वह सोचने लगा—"इन्सानियत ऐसे लोगों के दिल में भी अपनी जगह रखती है। लेकिन फिर भी ये लोग इतने कठोर क्योंकर हो जाते हैं? इन्हें अपना पाप दिखलाई क्यों नहीं पड़ता? क्यों स्वार्थी हो जाते हैं?"

यह सोचते हुए खुद को झटका—"उसने भी तो पाप किया है। घर-भर भूखा है और वह यहाँ बैठा हुआ रंगरेलियाँ मना रहा है; खा रहा है, पी रहा है।"

अपने से बचने के लिए पांचू को कहीं भी ठिकाना न था। अपनी ही नज़रों में वह खुद इतना गिर गया था कि दूसरों के गुनाहों की तरफ़ आँख उठाकर देखने की भी हिम्मत नहीं होती थी। शराब के लिए नफ़रत थी, गुनाह के लिए नफ़रत थी; और गुनाह के खयाल से बचने के लिए दिल में अज़हद बेचैनी भी थी। जब कोई बचाव न सूझा तो ईश्वर की शरण में पहुँचा—"मैं क्या करूँ? ईश्वर ने ही मुझे इस कदर कमज़ोर बनाया है। और फिर अगर मैंने गुनाह किया तो वह मेरा गुनाह नहीं।"

इस खयाल से भी पांचू को चैन मिला। छटपटाहट ज़्यादा महसूस की। झटके के साथ बुद्धि से सम्बन्ध टूट गया। तेज़ी से हाथ बढ़ाकर उसने गिलास उठाया और आँखें मींचकर

एक घूँट निगल गया। जल्दबाज़ी की वजह से एक घूँट में ज़्यादा पी गया, गले में फंदा पड़ा, खाँसी पैदा हुई, आँखों में जलन और सिर की नसों में ज़्यादा उत्तेजना हुई।

दम तोड़कर पांचू ने अपना सिर कुर्सी से टिका दिया। उसे ज़रा भी चैन न था।

घड़ी के घंटे बजने लगे। नशे में झटके के साथ सिर उठाकर पांचू ने देखा। घड़ी कमरे के अन्दर थी, सामने से दिखायी भी नहीं देती थी। कान लग गये—एक, दो, तीन, चार...सात, आठ, नौ...घंटे बजने बन्द हो गये।

नशे में पांचू चौंका। फिर खयाल जमा—"नौ बजे हैं। बड़ी रात हो गयी। अब उठना चाहिए।" मगर मन मुँह चुराता था—"कैसे जाऊँ?"

मिस्टर दास अपने ढंग से केदारा गा रहे थे, और दयाल ज़मींदार जी खोलकर दाद दे रहे थे।

"बेवकूफ़ कहीं के।" पांचू ने मन ही मन में कहा और आसमान की ओर देखने लगा।

जेठ की फीकी चाँदनी थी। धूल-भरे आकाश में तारे पांचू को बड़े फीके लग रहे थे। आधा चन्द्रमा अच्छा नहीं लगता, खूबसूरती मारी जाती है। चन्द्रमा या तो पतला, नोकीला अच्छा लगता है, या फिर पूनो की रात का। ये तो बड़ा भद्दा लगता है—एकदम मनहूस। कितनी निष्प्राण चाँदनी है। कितनी मनहूसियत फैली हुई है चारों तरफ! दम घुटता है! खयालों के साथ ही उसका मन भी उखड़ गया।

"मैं अब चलूँगा दयाल बाबू। बड़ी देर हो गयी है।" कहकर वह उठ खड़ा हुआ।

मिस्टर दास और दयाल बाबू में बहस छिड़ गयी थी। मिस्टर दास अपने गीत को केदार राग में गाया हुआ मानते थे, और दयाल ज़मींदार उसे बागेसरी समझकर सराह रहे थे। मिस्टर दास ने एतराज उठाया। बहस छिड़ गयी। केदारा के उदाहरण देने के नेक इरादे से दयाल बाबू गाते-गाते, अपने गले के मुताबिक भीमपलास की ओर मुड़ गये। दास ने उसके मालकोस होने का फतवा दे दिया। दयाल बिगड़ पड़े।

केदारा, भीमपलास, और मालकोस के इस झगड़े के बीच में पांचू उठ खड़ा हुआ था —"मैं चलूँगा अब..."

दयाल और दास, दोनों ने ही चौंककर पांचू की तरफ़ देखा। दयाल के कुछ कहने से पहले ही एक नौकर आ गया। अदब के साथ उसने बतलाया कि मोनाई ने दो औरतें भिजवाई हैं।

दास का चेहरा दमक उठा। बेताब होकर वह दयाल ज़मींदार और उस नौकर की ओर देखने लगा।

दयाल ने हुक्म दिया—"भेज दो।"

औरतों के साथ अज़ीम दरवाज़े के पीछे ही खड़ा रहा। फौरन ही आगे बढ़कर सलाम किया। लाज से सिकुड़ती हुई, घूँघट से मुँह ढाँके दोनों स्त्रियों ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

पांचू ने देखा, दोनों औरतें धुली हुई उजली धोतियाँ पहनकर आयी हैं। अरसे से गाँव में

औरत-मर्द, किसी के तन पर उजला कपड़ा नहीं दिखायी देता था। ये उजली, नयी धोतियाँ पांचू की आँखों के लिए नुमाइशी चीज़ हो गयी थीं।

दोनों नौकर और अज़ीम बाहर चले गये।

दयाल ज़मींदार गर्माए—"हटा घूँघट। हाथी की सूँड निकाल रखी है।"

औरतों के हाथ काँप कर अपना घूँघट हटाने लगे। पांचू ने कौतूहल से देखा—बढ़ई मुनीर की विधवा और...और कालीराय की पत्नी।

कालीराय उसका बचपन का घनिष्ठ मित्र था। तीन महीने हुए, वह गाँव से भाग गया था। पांचू कालीराय की पत्नी को खूब जानता है। उसे बौदी कहता है। कालीराय के पिता यहीं हैं।

"बौदी यहाँ?" पांचू की आँखों के आगे सितारे घूम गये।

दयाल ज़मींदार ने उठकर दोनों के सिर का कपड़ा खींचकर नीचे गिरा दिया।

पांचू ने अपना सिर झुका लिया था।

दयाल ज़मींदार दोनों को देखकर खुश हुए—"मोनाई ने अच्छा काम किया है।" मुनीर की बेवा की ठोड़ी उठाकर उसके गले में चुटकी लेते हुए बोले—"किसकी औरत है तू?"

सवाल के साथ ही पांचू की नज़रें उठ गयीं। कालीराय की पत्नी की आँखें भी सकपकाकर उठीं। उसकी आँखें अचानक पांचू की उठती हुईं आँखों से मिल गयीं। उसे काठ मार गया। चेहरा ज़र्द पड़ गया, और वह आँखें उलटाकर गिर पड़ी।

पांचू तेज़ी से कमरा छोड़कर बाहर चला आया। उसके लिए जीवन असह्य हो उठा था। बौ'दी से बौ'दी तक...घर तक...तुलसी, मंगला...

उसे होश नहीं था कि वह कहाँ चल रहा है, किधर जा रहा है। आँखों में आँसू छलछला आये, तमतमाया हुआ चेहरा, और पैरों के साथ आँधियाँ बह रही थीं। शीशमहल पार किया, झरने के पास से गुज़रकर दरवाज़े के बाहर आया, और ज्ञान-शून्य-सा नीचे उतरने लगा। तेज़ी के साथ लड़खड़ाते हुए पैरों की खटाखट आवाज़ सीढ़ियों पर सुनायी देती थी।

वृन्दावन पांचू की यह दशा देखकर समझा कि बहुत पी गये हैं। उसे गिरने से बचाने के लिए वह झपटकर आया। उसने दोनों हाथों से पांचू को थाम लिया। पांचू निश्चेष्ट-सा उसके ऊपर लुढ़क पड़ा। उसकी आँखें बन्द हो गयीं। वृन्दावन ने संभाला—"छोटे ठाकुर! छोटे ठाकुर!"

पांचू ने आँखें खोलीं, वृन्दावन को देखा। वृन्दावन बोला—"घर पहुँचा आऊँ छोटे ठाकुर?"

पांचू की शर्म पर करारा तमाचा पड़ा। वह बड़ी तेज़ी के साथ संभला, सीधा खड़ा हो गया और सिर झुकाकर बोला—"नहीं वृन्दावन, मैं ठीक हूँ।"

वृन्दावन के सामने भी पांचू की निगाहें झुकीं। पांचू के अन्तर में लज्जाजनित पीड़ा अब पहाड़ बन गयी थी। अपनी अतिगहन हीन भावना पर वह कठोर अनुशासन कर रहा था। वह पत्थर बन रहा था।

वृन्दावन ने पांचू के पैर छुये और हाथ जोड़कर बोला—"छोटे ठाकुर! बगुलों की पंचायत में हंसों का कौन काम? अब तक तो नहीं मुल आज आपको हियाँ देख के समुझ पड़ा कि कलजुग आय गया। जब पहाड़ डौल गये, तब धरती कैसे बचेगी?—जैसी लीला भगवान की!" कहते हुए वृन्दावन ने एक निःश्वास छोड़ी और हाथ हिलाकर, सिर लटकाये हुए एक सीढ़ी ऊपर चढ़ गया।

पांचू ने अपना सिर उठाया और तान लिया। वृन्दावन की तरफ़ देखकर बोला—"तुम मुझसे बड़े हो वृन्दावन। मुझे क्षमा कर दो।"

वृन्दावन ने घूमकर पांचू को देखा। वह तेज़ी के साथ नीचे उतर रहा था।

"सारा संसार मुझसे बड़ा है। हर शख्स मुझसे बड़ा है। दुनिया की हर चीज़ मुझसे बड़ी है। मुझे किसी को छोटा समझने का अधिकार नहीं—कोई नीच नहीं; कोई बुरा नहीं। सारी बुराइयाँ मुझमें हैं। मैं सबसे बुरा हूँ। मैं ही बुरा हूँ।"

राह न पाकर तैश आँखों से बरस पड़ा। दोनों गालों पर धीरे-धीरे आँसू बह रहे थे और पांचू सिर झुकाये हुए, दयाल ज़मींदार की हवेली के बाहर गाँव में जा रहा था।

हठ के साथ पांचू अपने अहं को छुरियाँ भोंक रहा था। हुक्म की चाभी पर चलनेवाला बेजान पुतला, गुलामों का गुलाम, वृन्दावन इस समय उसकी नज़रों में बहुत ऊँचा उठ गया था—गुरु-सा महान लग रहा था।

अकाल पड़ने से पहले पांचू की महत्त्वाकांक्षाएँ संयत भाव धारण किये हुए थीं। बिना किसी प्रकार के मानसिक द्वन्द्व के उसका जीवन सधा हुआ और सीधा बढ़ रहा था। अकाल में उसने अपनी आर्थिक परवशता और उससे उत्पन्न जीवन की कठिनाइयों का अनुभव किया। कुलीनता, आबरू, उच्च शिक्षा और स्वाभिमान के सहारे वह अपनी आर्थिक हीनता से लोहा लेकर अपने को ऊँचा उठाये रखने का प्रयत्न करता था; और यहीं असफल होकर वह अस्थिर हो उठा था। और एक बार आत्मविश्वास खो बैठने के बाद उसे अपने मन की थाह न मिली। वह सदैव अंतर्द्वन्द्व की गहराइयों में डूबता-उतराता रहा। समाज में अपने स्थान के लिए वह आवश्यकता से अधिक व्यग्र रहने लगा। व्यग्रता ने बुद्धि का संयम खोया; और बड़प्पन की चाह ने ही उसे दयाल ज़मींदार का मुसाहिब बनाकर, आज अपनी ही नज़रों में बेहद गिरा दिया। मन की इसी गिरी हुई हालत में पांचू ने खुद को दुनिया का कमतरीन इन्सान स्वीकार किया; इस अप्रिय बात को स्वीकार करने के कारण उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

आँसुओं से गुबार निकल जाने के बाद, धीरे-धीरे बुद्धि संयत हुई। वह सोचने लगा —"लेकिन बड़प्पन की चाह किसमें नहीं होती?"

सवाल खुद ही जवाब भी बन गया—"तब फिर किसी के बड़प्पन को दबाकर उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का अधिकार भी किसी को नहीं। हर मनुष्य स्वभाव से ही बड़ा है। इसलिए हर मनुष्य समान है, एक-सा है—एक है।"

"फिर यह छोटे-बड़े का भेदभाव जो हर तरफ़ दुनिया में दिखायी देता है?"

"यह उसी बुराई का परिणाम है, जिसने मुझे गिराया है।"

पांचू ने अपने पतन में संसार के पतन का कारण देखा—"खुदी के लिए सारी दुनिया तबाह हुई जा रही है।" पांचू ने सोचना शुरू किया—"लेकिन यह खुदी है क्या? और क्यों है? अपने अस्तित्व की चेतना को मनुष्य सर्वव्यापी और सामूहिक रूप में क्यों नहीं देखता? मैं अपने को सारी दुनिया से अलग रखकर क्यों देखता हूँ? दुनिया से अलग रहकर मैं अपनी असलियत का अनुभव ही क्योंकर कर सकता हूँ? सम्मिलित रूप से, समाज की प्रत्येक क्रिया-प्रतिक्रिया का प्रभाव मुझ पर पड़ता है और मुझे चैतन्य बनाता है। मैं अपने हर अच्छे और बुरे काम का निर्णय समाज के तराजू पर ही करता हूँ। मैं ही नहीं, हर एक आदमी यही करता है। अपने हर काम में मनुष्य को दुनिया के रुख-बेरुख की ही फिक्र रहती है...फिर वह अलग कैसे हो सकता है? क्यों हो जाता है?"

प्रश्नों की लड़ी पूरी हुई, परन्तु उत्तर उसे नहीं मिला। पांचू का सिर ऊपर उठा, मानो अपना मार्ग खोजने का प्रयत्न कर रहा है। लेकिन सामने जो कुछ था, उसे देखकर वह चौंक उठा। चाँदनी में दूर तक—सामने, आसमान लाल हो रहा है! क्यों? लपटें उठ रही हैं। आग! कहाँ लगी?

पांचू का कौतूहल भय के साथ-साथ आगे बढ़ा। वह तेज़ कदम बढ़ाने लगा—"क्या भूख और महामारी ही काफ़ी नहीं थी जो प्रकृति को भी जुल्म ढाने की ज़रूरत महसूस हुई? भयंकर आग है!"

पांचू और तेज़ी के साथ आगे बढ़ने लगा।

मोनाई की दुकान दिखायी देने लगी। शोर और हँसी सुनायी देने लगी। आग की नाचती हुई लपटों से घिरा हुआ मकान दीखने लगा—"स्कूल के पास है...नहीं, स्कूल में ही आग लगी है"—पांचू के दिल की धड़कन बढ़ गयी। उसने मोनाई की दूकान की तरफ़ देखा। दुकान सूनी पड़ी थी। वह दौड़ने लगा।

आदमी चारों ओर, घेरे में, उछल-कूद और शोर मचा रहे थे। स्कूल में आग लगी थी। हवा में गर्मी भरी हुई थी। अट्टहास, गाना, शोर सब मिलकर कानों में भयंकर रूप से समा रहा था।

दिन ढले, शाम को छेदासिंह ठेले पर बोरे लदवाकर स्कूल में लाया था। अपने और अपने साथियों के लिए जो बोरे उसने मोनाई से ज़बर्दस्ती वसूल किये थे, वे भी स्कूल के ही एक कमरे में लाकर रखे गये थे। बाँटे जाने वाले चावल के बोरे बाहर रखे गये। अपने लठैत साथियों की मदद से छेदासिंह ने गाँव में चावल बाँटना शुरू किया। उसमें भी जितनी बन पड़ी काट-फाँस की। फिर भी चावल सबको मिल रहा था। खुशी सबके दिलों में नाच रही थी।

अन्न का देवता आज मानव पर प्रसन्न हुआ था। जिसके पीछे पैसा-टका गया, गहना-कपड़ा गया, घर का तार-तार बिक गया, आबरू गयी, लाज गयी, धरम-ईमान गया, माँ-बाप,

बहन-भाई, स्त्री और बच्चे तक बिछड़ गये—जान देकर भी जिस अन्न के देवता को मानव सन्तुष्ट न कर सका था, वही आज छेदासिंह की गालियों के साथ लुट रहा था। जीवन का भिखारी इन्सान आज आखिरकार जीवन के सहारे को पा ही गया। वह खुशी के मारे पागल हो उठा। हँसी, आँसू, चीख, पुकार, गाने, नाचने, गले मिलने और धौल-धप्पा करने के रूप में खुशी बहुत दिनों तक आज इन्सान के दिल की गहराइयों से निकलकर वातावरण में छा जाने के लिए वेग के साथ बढ़ रही थी। आज मोहनपुर गाँव में अन्न का त्यौहार था। लोग नाच रहे थे, चक्कर खाकर गिर पड़ते थे, चावल बिखर जाता था। लोग बीन-बीनकर, छीन-छीनकर खा रहे थे; मुट्ठी भर-भरकर चावल मुँह में रखते थे—हँसी फूटी पड़ती थी।

अज़ीम गुस्से से उबला पड़ता था। जिस तरह आज छेदासिंह ने उसके मालिक और गुरु, मोनाई की तथा उसकी बेइज़्ज़ती की थी, उसका बदला लेने के लिए वह दिल ही दिल में बेताब हो रहा था। छेदासिंह और उसके साथियों की यह जीत और खुशी उसे न पची। अँधेरा होते ही, पोखर के पीछे से जाकर उसने स्कूल के कमरे में आग लगा दी जिसमें छेदासिंह और उसके साथियों ने लूट के हिस्सों के बोरों को लाकर रखा था। आग जगह-जगह से लगायी गयी; और देखते-ही-देखते आसमान में लपटें उठने लगीं।

चारों ओर 'आग-आग' का शोर मच गया। छेदासिंह और उसके साथी घबराकर बरामदे से बाहर भागे। चावल पाने की आस में खड़ी हुई भीड़ छेदासिंह के हटते ही चावल के बोरों पर टूट पड़ी। उन्हें आग की चिन्ता नहीं थी। पेट की आग को बुझाने के लिए वे चावल के बोरों से जूझ रहे थे।

आग की लपटों को देखकर लोग खुश हुए। उनके लिए यह एक बहुत बड़ा तमाशा बन गया। किसी को सूझ गया, इस आग में चावल पकना चाहिए। चारों ओर 'पकायेंगे, पकायेंगे' का शोर मच गया। बहुत-से लोग इधर-उधर से टूटे-फूटे मटके, नांदें वगैरह लाने के लिए लपके। पोखर से पानी भरकर लाने लगे। शक्ति से अधिक वह काम कर रहे थे। इस समय कमज़ोरी और थकावट के लिए कहीं भी, ज़रा-सी भी गुंजाइश न थी।

आग की लपटें ऊँची उठ रही थीं। सामने छेदासिंह और उसके साथी हतप्रभ और अवाक् खड़े थे। परिस्थिति उनके रौब और दबदबे और बस के बाहर थी, वे चूँ तक करने की हिम्मत नहीं कर सकते थे।

आग के आस-पास टूटी-फूटी नांदों और मटकों में पानी भरकर चावल छोड़ा जा रहा था। लोग सोचते थे, पक जायेगा। कुछ यों ही फंकी मार रहे थे। कच्चे चावल पेट में चुभते थे, मरोड़ होती थी, चीख-पुकार होती, कोई गिरता, कोई पेट पकड़कर मसलता था, कोई खुशी से नाचता था, कोई थककर चूर हो गया था।

लपटों की लाल रोशनी में काली, खुरदरी झिल्लियों से मढ़े हुए हड्डियों के ढाँचे खुशियाँ मना रहे थे। सिर और चेहरे की हड्डियों के हर उभरे हुए हिस्से, गहरे गड्ढों में धँसी हुईं आँखें, दाँतों की कतारें, दाढ़ी और सिरों के बाल ज़्यादातर उड़े हुए—जगह-जगह उगे हुए उनके

गुच्छे; कन्धों की उठी हुई हड्डियाँ, पसलियों में पेट की खोह, कमर में लिपटे हुए फटे चिथड़ों में चमकती हुई कूल्हे की हड्डियाँ, घुटनों की उठी हुई हड्डियाँ—लपटों की रोशनी में सिर्फ़ हड्डियाँ ही हड्डियाँ चमकती थीं। अपना ही रक्त-माँस खा-खाकर मानव देहधारी जीवन अनैतिकता और अन्याय के खिलाफ जेहाद बोल रहा था।

सूखी टाँगें, बड़ा पेट, अस्सी बरस के बूढ़ों की तरह झुर्रियाँ लटकी हुईं, गालों के गुचकुल्ले नोक की हद तक जबड़ों के भीतर धँसे हुए, हँसने पर दाँत उस रोशनी में तलवार की धार की तरह चमकते थे—चार-पाँच से लेकर दस-बारह बरस तक के बच्चे, नौजवान, जवान, अधेड़, बूढ़े, खाज, गर्मी वगैरह चर्म-रोगों से सड़े हुए शरीर वाले, छोटे-बड़े; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, हिन्दू, मुसलमान—मानव—जीवित कंकालों का मेला लगा था। लपटों की पार्श्वभूमि में भूख का त्यौहार मनाया जा रहा था। जन-समूह आनन्द से परिपूर्ण था। उन्हें तन-बदन का होश नहीं था। अन्न को जीतकर उन्हें भूख का ध्यान नहीं रहा; भूख को जीतकर उन्हें अपना ध्यान नहीं रहा। बहुत बड़ी कीमत चुकाकर मानव-जीवन आज अपना त्यौहार मना रहा था। वह मुक्त था—भय से, चिन्ता से, भूख-प्यास, मान-अपमान से, बुद्धि से, ज्ञान से, चेतना से।

आबरूदार (जिन्होंने सरकारी तौर पर अपने घरों में अकाल होने की घोषणा नहीं की थी, मगर जिनके घरों का हाल कलकत्ते और तमाम हिन्दुस्तान के अखबारों में रोज़ छपता था) ज़रा दूर, जगह-जगह टोलियों में खड़े देख रहे थे। मौका पाकर चावल भी चुरा लाते थे।

अज़ीम बदला लेकर जीत गया था। मगर जब उसने मोनाई से अपने इस महान कृत्य का बखान किया तो उसने इसे फटकारा। उसकी चाल के अनुसार यह सब चावल जनता को ही मिलता और छेदासिंह हाथ मसलकर रह जाता। मगर छलक जानेवाले दूध पर पछताना मोनाई का स्वभाव नहीं। दोनों एक कोने में खड़े हुए सामने का दृश्य देख रहे थे।

अज़ीम बोला—"क्या नज़ारा है! भूत जैसा भयावना!"

मोनाई बोष्टम, सामने देखते हुए, चेहरा निर्विकार रखकर अति गम्भीर भाव से बोला—"ये भूत नहीं हैं अज़ीमा; ये है बर्तमान—परत्तच्छ बर्तमान—भूत से भी जादा भयंकर। ये भूख मेरे गोदाम का एक दाना भी नहीं छोड़ेगी। आज की जागी हुई भूख बरसों नहीं बुझेगी। गोलियाँ और लाठियाँ भी इसे नहीं रोक सकतीं।"

मोनाई की इस बात से अपने सामने वाले दृश्य की गम्भीरता का अनुभव करते हुए अज़ीम ने चिन्तित स्वर में पूछा—"तो चाचा फिर?"

अज़ीम के कन्धे पर हाथ रखकर, आवाज़ दबाकर मोनाई कहने लगा—"बेटा, अपने बाप से जाकर कह दे, तुर्त-फुर्त आठ नावों का बन्दोबस्त कर दें। दुई घंटे में, सब सरोजाम हुई जाये—समझे? और देख तू लौट के आ, तब तक मैं घर पहुँचता हौं। दुई सौ रुपै अंटी में बाँध के ज़रा छेदासिंह के पास लपक जाना। पिछली बार तो पचास में निपट गया था, मुल अबकी बेर मामला और है। जहाँ तक बनै, कमती में पटाना—आगे फिर राम मालिक है। बीस

आदमी लाना। पचास बोरे छोड़ के, बाकी रातोरात आज ही लदाये देता हौं।"

अज़ीम ने पूछा—"कहाँ ले जाओगे चाचा?"

"अभी तौ देवीपुर की हाट जाऊँगा। औ' हुआं से जो जुगुत बैठ गयी तो कलकत्ते तक निकल जाऊँगा। सुना है, भाव सैकड़े पर टकोरे लै रहा है आजकल।"

अज़ीम चिन्ता प्रकट करते हुए बोला—"सुना है आजकल दरिया-पुलुस बहुत बढ़ गयी है चाचा।"

मोनाई ने निश्चिन्त स्वर में उत्तर दिया—"अरे बेटा, बड़े-बड़े पानी देख चुका हौं। ये दरिया-पुलुस भी देख लेऊँगा। और यौं तौ, इत्ती बेला हारे जुआरी का दाँव है मेरा।"

"पर चाचा, हारे जुआरी के दाँव से कैसे चलेगा? बोरों के साथ, खुदा न करे, तुम पकड़ लिये गये तो यहाँ का क्या होगा?"

मोनाई मुस्कुराया; अज़ीम के कन्धे पर प्यार से हाथ रखकर बोला—"मेरी चिन्ता न कर बेटा। मोनाई केवट किसी की पकड़ाई में आनेवाला जीव नहीं। हाँ, बोरे भले ही पकड़े जायें तो...मुल सो कुछ नहीं, भगवान जी ने चाहा, तो सब कुसल होयेगी। वैसे इधर का इंतज़ाम भी लैस कर चला हौं।"

अज़ीम को लेकर मोनाई अपने घर की ओर मुड़ा—"यूनन बोट के सित्तरी साहेब आये हैं। ज़मींदार साहब के यहाँ भेंट भई तौ मैंने पानी चढ़ाया। तुम्हारी वे दोनों औरत भी काम करेंगी। अभी पन्द्रा पर अड़े थे, मुल साइत कल मान भी जायें। मैं बारह की बात कह आया हौं। तीस हज़ार रुपया गिन्नी को दै जाऊँगा। पौने पन्द्रा तक जाके पटाना। फिर भी न मानै तो रुपिया पटक के माल उठाय लाओ। दूसरी खेप में वो हज़ार बोरे भी जब निकाल आऔंगा तब जाके घाटा पूरा होवैगा। क्या समझे। बड़ा ज़ख्म कीना है ज़मींदार ससरे ने भी। ये साला भी मेरे हाथौं..."

मोनाई की बाँह झिंझोड़कर अज़ीम ने धीरे से कहा—"चाचा...छोटे ठाकुर!"

पोखर के किनारे खड़ा हुआ पांचू अपने सामने के दृश्य में खो गया था। वह टकटकी बाँधकर अपने स्कूल से निकलती हुईं लपटों को देख रहा था।

पांचू का सपना जल रहा था। लपटें उसके दिल से उठ रही थीं। रामदुलाल खूड़ो, और गाँव के दूसरे बड़े-बूढ़ों के विरोध से तनकर उसने इसी ज़मीन पर दूले-बाग्दियों के लड़कों को पढ़ाना शुरू किया था। इसी ज़मीन पर वह बड़े-बड़े ज़मींदारों, साहूकारों, रईसों, अफ़सरों और कलक्टर तक को ला चुका था। बच्चों का शोरगुल, खेल-कूद; दर्जों में बैठकर पढ़ना, दर्जों में बच्चों को पढ़ाते हुए कानाई और गोविन्द मास्टर; गणेश—जिस दिन गणेश मरा, वही पांचू के स्कूल आने का भी आखिरी दिन था। उसी दिन मुनीर मरा था। उसी दिन मोनाई से बेंचों का सौदा किया था। उसी दिन जीवन में पहली बार पांचू ने आत्मविश्वास खोया था। उसी दिन जनता के पवित्र दान से खरीदी हुईं बेंचों को अपने स्वार्थ के लिए बेचकर पांचू का अभिमानी मस्तक सदा के लिए झुक गया था। स्कूल की इमारत के साथ-साथ पांचू की

पुरानी स्मृतियाँ, पांचू का गौरव, पांचू का कलंक भी जल रहा था।

आग से उसकी टकटकी बँध गयी थी; पत्थर की मूर्ति की तरह वह खड़ा हुआ था —"मेरा पाप जल रहा है। मेरा अहंकार जल रहा है।"

लाज के बंधन तोड़कर स्त्रियों का दल आया। चावलों पर लाज-विहीन स्त्रियों के धावे से आनन्दमग्न पुरुष-दल चौंका। स्त्रियाँ अनावृत दशा में बाहर चली आयीं—पागलपन की अवस्था में भी पुरुष-समाज यह देखकर चीख उठा। पुरुषों को क्रोध आया। वे स्त्रियों पर गालियों की बौछार करते हुए टूट पड़े। स्त्रियाँ भी पीछे नहीं हटीं। उन्हें भी खाने का हक है; उन्हें भी जीने का हक है। पुरुष इस हद तक स्त्री को अपनी दासी बनाकर नहीं दबा सकता।

पांचू उन्हें देखकर सोच रहा था—"हमें सबका समान अधिकार स्वीकार करना ही होगा। जब तक एक भी स्त्री दासी रहेगी, उसके गर्भ से दास ही उत्पन्न होंगे। दासता जीवन को मृत्यु की जड़ता से बाँध देती है। यह अकाल हमारी दासता का परिणाम है। यह अकाल मनुष्य की दासता का परिणाम है।"

"अपने पेट की आग को बुझाने के लिए पुरुषों ने स्त्रियों के तन के कपड़े बेच दिये, उनका तन भी बेच दिया—फिर नारी की कौन-सी लाज मिट जाने के भय से पुरुष इस समय त्रस्त हैं?"

दो पुरुष एक स्त्री को पीछे ढकेल रहे थे। उस स्त्री ने उनमें से एक के हाथ को क्रोध से चबा लिया। उसका माँस उखड़ आया। पुरुष ज़ोर से चीखकर गिर पड़ा।

पांचू ने आँखें मींच लीं। फिर उसके मन में हुआ कि इन्हें बचाया जाये; किन्तु पास जाने का साहस न हुआ।

पांचू घर लौट चला।

वह सोच रहा था—"मनुष्य यहाँ तक गिर गया है! फिर बर्बर युग से आज में अन्तर ही क्या रहा? तो क्या मानव की आज तक की प्रगति, उसकी सभ्यता, ज्ञान, विज्ञान, सब गलत हैं?"

पांचू की बुद्धि इसे स्वीकार करने के लिए तैयार न थी।

"इस पतन का कारण" उसने आगे सोचा—"व्यक्ति का अहं है जो दूसरे को गिराकर प्रसन्न होना चाहता है; दूसरे को अपना गुलाम बनाकर, पाशविक शक्ति के बल पर अपनी सत्ता चाहता है। जहाँ तक यह वृत्ति रहेगी, जब तक दुनिया में एक भी गुलाम रहेगा, दुनिया में यों ही अशान्ति बनी रहेगी। मुक्त होने के लिए मनुष्य को अपने इस जंगली संस्कार के बीज का नाश करना होगा। सभ्य बनने के अनेकों प्रयोगों में समाज को एक करते हुए, व्यक्ति हर बार, अनजाने तौर पर अपने को ही महत्त्व देता चला गया। बौद्धिक और दार्शनिक रूप से भी उसने समाज को सदा अपना चेला बनाकर ही आगे बढ़ाया। उन्हें अपना साथी बनाकर साथ-साथ आगे नहीं बढ़ा। व्यक्ति समाज का नेता नहीं, साथी बनकर ही ठीक तरह से चल सकता है। मानव और मानवता को तभी एक रूप में देखा जा सकता है। सच पूछो

तो इन्हें दो नाम देकर अलग-अलग देखना ही भ्रम है। एक ही चीज़ के दो नाम हैं—'व्यक्ति और समाज—मानव और मानवता'।"

विचारों की गति से ही पांचू के पैर भी आगे बढ़ रहे थे।

7

इधर कई दिनों से गिद्ध सैकड़ों की संख्या में आसमान पर मँड़राया करते हैं। वे बड़े निडर हो गये हैं। चलते-फिरते आदमियों को छोड़कर, पड़े हुए हर ज़िन्दा और मुर्दा आदमी को वह अपना आहार मानते हैं। गाय, बैल, आदमी, औरतें, बच्चे, बात की बात में गिद्धों, सियारों और कुत्तों द्वारा ठठरियों में परिवर्तित कर दिये जाते हैं। गाँव में जगह-जगह ठठरियाँ और अधखायी सड़ती हुईं लाशें दिखायी देती हैं।

स्कूल की होली जलाकर, चावलों से खेल चुकने के बाद, गाँव तबाही की अन्तिम दशा को पहुँच चुका था। भूख के साथ ही साथ हैजा और मलेरिया का भी ज़ोर हुआ। परे के परे साफ़ होने लगे।

मोनाई उसी रात माल लदवाकर बाहर चला गया। अज़ीम ने मोनाई के आदेशानुसार यूनियन बोर्ड के सेक्रेटरी से हज़ार बोरे खरीद लिये और उन्हें लेकर वह खुद ही सेठ बन बैठा। उसने अपनी नावें चलानी शुरू कर दीं।

बढ़ई नूरुद्दीन मुनीर की बीवी को लेकर कलकत्ते गया है। मुनीर की दोनों निस्सहाय लड़कियाँ माँ-बाप से बिछड़कर बेहाल हो गयीं। पड़ोस के दीनू ने उन्हें अपने घर में शरण दी। दया की भावना अब भी कभी-कभी जाग पड़ती थी। दीनू के घर में कोई नहीं रहता था। उसकी पत्नी अपने बच्चों को लेकर मैके चली गयी थी। बाद में खबर आयी कि वह बच्चों को छोड़कर गोरों की पलटन में अपना तन बेचने लगी है। दीनू को इससे गहरा धक्का लगा। बीवी-बच्चे खोकर भूख का मारा दीनू चाँद और रुकिया को अपना वात्सल्य-प्रेम देकर जी बहलाने लगा।

खाने को दीनू के पास कुछ था नहीं। चाँद और रुकिया की भूख देखकर वह तड़प उठता था। भूख के कारण रोती हुईं बच्चियों को अपने पास सुलाकर रोते-रोते वह रात बिता देता था। दीनू न खुद घर से निकलता था, न बच्चियों को ही कहीं जाने देता था। धीरे-धीरे उसने

बोलना छोड़ दिया। आठों पहर वह गुम होकर बैठा रहता और लुटे हुए घर को निहारा करता। एक दिन वह बड़ी देर तक चूल्हे की ओर देखता रहा। देखते-देखते उसे विचार आया कि जिस दिन से चूल्हे में आग जलनी बन्द हो गयी है उसी दिन से घर की यह दुर्दशा हुई है। इसलिए अगर चूल्हा फिर से जल जाये तो उसके घर की रौनक भी फिर से लौट आयेगी। दीनू को सहसा यह विश्वास हो गया कि चूल्हा जलते ही उसकी पत्नी घर लौट आयेगी, बच्चे आ जायेंगे, अकाल खत्म हो जायेगा और फिर से अमन-चैन का राज हो जायेगा।

इस विचार ने दीनू को स्फूर्ति दी। उसकी आँखें चमक उठीं। वह तेज़ी से उठा, अपनी झोंपड़ी के टूटे हुए छप्पर से बाँस निकालने लगा। उसे बड़ी मेहनत करनी पड़ी। बाँस खींचते हुए उसका हाथ कट गया, खून निकलने लगा; लेकिन उसे इसकी परवाह न थी। फटे बाँस को उसने पैर से दाब-दाबकर तोड़ा। छोटी-छोटी खपाचियाँ बनायीं। हाथ का जख्म और बढ़ने लगा। उसे इसका ध्यान भी नहीं था। चाँद और रुकिया आश्चर्य से उसे देख रही थीं। खपाचियाँ बनाकर दीनू ने चूल्हे में रखीं और लपकता हुआ बाहर गया। अरसे बाद दीनू घर से बाहर निकला था अज़ीम का घर पास था। उसके दरवाज़े पर हुक्के-पानी के लिए कौड़े में आग रहती थी। दीनू चोर की तरह से कौड़ा उठाकर भागा। अमानुषिक स्फूर्ति के साथ दीनू काम कर रहा था। कौड़े की आग चूल्हे में डाल दी। चाँद और रुकिया से कहा—"फूँको।" बहुत दिनों बाद दीनू बोला था। यथाशक्ति वे चूल्हे को साँस से फूँकने लगीं। लड़कियाँ कमज़ोर पड़ती थीं। दीनू उनकी गर्दन पकड़कर खुद भी फूँकता था और लड़कियों को भी मजबूर करता था। दोनों लड़कियाँ डर गयी थीं।

बाँस की खपाचियों से लपट निकली। दीनू खुश होकर नाचता हुआ किलकारियाँ मारने लगा। बच्चियाँ आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगीं। सहसा दीनू ने सोचा कि जब चूल्हे में आग होती थी तब कुछ पकता था और जब पकता था तभी घर में रौनक होती थी। पके क्या? उसने घर में चारों ओर नज़र दौड़ायी। कुछ भी न था। लेकिन कुछ-न-कुछ तो ज़रूर ही पकना चाहिए, वरना घर की रौनक नहीं लौटेगी। दीनू अधीर होने लगा। लपट ज़रा धीमी होने लगी थी। दीनू की व्याकुलता बढ़ने लगी। वह चारों ओर देखने लगा। सहसा उसने सोचा —"ये लड़कियाँ किस दिन काम आयेंगी? इन्हें पकाओ—पकाओ तो घर की रौनक लौटेगी...पकाओ।" चमकती हुईं आँखों से चाँद को देखते हुए सहसा बड़ी ज़ोर से उसकी गर्दन पकड़ी और ज़ोर के साथ चूल्हे में उसका मुँह झुका दिया। चाँद चीख पड़ी। रुकिया ज़ोर-ज़ोर से चीखने लगी। दीनू दोनों हाथों से दृढ़तापूर्वक चाँद का मुँह चूल्हे की आग में जलाता ही रहा। उसे अपने घर की रौनक चाहिए थी। घर की रौनक आये बगैर अकाल नहीं जायेगा। वह अकाल से छुटकारा चाहता है। वह सुख और शान्ति चाहता है।

अज़ीम रुकिया की 'बचाओ, बचाओ' गुहार सुनकर दौड़ा आया। दीनू को चाँद का मुँह आग में झुलसाते हुए देख वह एक क्षण के लिए सिहरकर स्तम्भित हो गया। फिर तेज़ी से लपककर दीनू को घसीटकर अलग किया। चाँद के प्राण निकल चुके थे। चेहरा जलकर

अत्यन्त विकृत हो चुका था। चर्बी और माँस-मज्जा के लोथड़े चमक उठे थे। दीनू गौर से देखने लगा। वह समझ नहीं सका कि यह क्या हो गया है!

गाँव में पागलों की संख्या बढ़ रही थी।

गाँव दिन-ब-दिन सूना होता जा रहा था। छोटे बच्चे या बूढ़े औरत-मर्द ही गाँव में अधिक दिखायी देते थे। यों अब उनकी संख्या भी कम होती जा रही थी। जवान बहू-बेटियाँ बिकने लगी थीं। अज़ीम और नूरुद्दीन ने यह व्यापार शुरू कर दिया था। मोनाई से लाग-डाट चल रही थी।

मोनाई जब गाँव लौटकर आया तो उसने देखा कि उसका अति विश्वस्त दाहिना हाथ, शिष्य और सहकारी, अज़ीम उसे तीस हज़ार रुपये का धक्का पहुँचाकर सेठ बन चुका था। मोनाई ने अपनी पत्नी को बेहद पीटा, मगर अज़ीम पर उसका बस न चल सकता था। पित्ते मारकर वह चुप बैठा रहा। माल खपाकर जो रकम वह कमाकर लाया था, उसे ही ज़मीन में गाढ़कर वह अपनी बुरी ग्रह-दशा पर आह भरकर भविष्य के लिए चिन्तन करने लगा। व्यापारी मोनाई नुकसान पर आँसू नहीं बहाता, नुकसान से नफा कमाने की सोचता है।

उसने सुना, अज़ीम और नूरुद्दीन गाँव की जवान औरतों को खरीदकर बाहर बेच रहे हैं। बड़ा नफा कमा रहे हैं। मोनाई के मुँह में पानी भर आया।

नूरुद्दीन मुनीर की बीवी को लेकर कलकत्ता गया था। बड़े-बड़े तजुर्बे लेकर लौटा है। नूरुद्दीन ने कलकत्ते की सड़कों पर हज़ारों अकाल-पीड़ितों को भीख माँगते, सड़ते और मरते देखा। उसने अपने गाँव के भी कुछ लोगों को उन अकाल-पीड़ितों की भीड़ में देखकर पहचाना था। उसने दो-दो, चार रुपये में जवान औरतों को बिकते हुए देखा था। रिक्शावालों को, फ़ौजी पलटनियों को बुला-बुलाकर चकलों में ले जाते हुए देखा था। अँगूठे में बड़ा घुँघरू अटकाकर रिक्शा के हैंडिल को ठोकते हुए वे लोग पलटनियों को देखकर 'ठुनठुन बाबू', 'ठुनठुन साहब' चिल्लाने लगते थे। यह चकलों में चलने के लिए सांकेतिक निमन्त्रण था। बड़े-बड़े महलों, मोटरों, ट्रामों और बसों से भरी हुई धनाधीशों की महाविशाल नगरी की चकाचौंध देखकर उसकी इच्छा भी कमाने की हुई। उसने चकलेवालों से दोस्ती की, रिक्शेवालों से जान-पहचान बढ़ाई, बाज़ार को जाँचना शुरू किया। उसे पता लगा कि कई बड़े-बड़े सेठों ने सस्ते दामों में औरतें खरीदकर चकले आबाद किये हैं। गुंडों को इस धंधे में साझीदार बनाया है, पिये हुए गोरों और पलटनियों की जेबें खाली करवाकर वे इस धंधे से भी दो पैसे कमा लेते हैं। नूरुद्दीन को लालच लगा। मुनीर की बीवी को सोनागाछी की एक वेश्या के यहाँ बेचकर उसने भी चकले की दलाली शुरू की। अच्छे पैसे बनने लगे। खूब 'सनीमा' देखा, मौजें उड़ायीं। अकाल-पीड़ितों की दुर्दशा देखकर उसका दिल कभी-कभी पसीज भी उठता था। चकले की बहुत-सी लड़कियाँ बीमार होकर बेकार हो चुकी थीं। चकले की चौधराइन से नूरुद्दीन का सौदा तय हुआ था कि अगर वह नयी लड़कियाँ ला दे तो वह चकले में साझीदार भी बन सकता है।

नूरुद्दीन गाँव आया। उसकी टेंट में पाँच सौ रुपये थे। अज़ीम मोनाई को धोखा देकर सेठ बन चुका था। अज़ीम से मुलाकात हुई। कलकत्ते के हाल-चाल बयान किये। नूरुद्दीन ने अपने आने का आशय बताया।

इस काम में मुनाफे की कल्पना करके अज़ीम के मुँह में पानी भर आया। उसने नूरुद्दीन की ठोड़ी पकड़ी—"चार रुपै औरत पर तै करो उस्ताद। दो तुम्हारे, दो हमारे। हम रुपै की बजाय चावल देंगे, गाहक चावल देखकर फौरन जाल में आयेगा। और रुपै तुम चाहे लाख दिखाओ, कोई तुम्हें पूछेगा भी नहीं।"

नूरुद्दीन की समझ में बात आ गयी। उसने मंज़ूर कर लिया।

नूरुद्दीन ने गाँव में खबर फैलाई कि कलकत्ते में एक सेठ ने धर्मशाला खोली है, जहाँ गरीब औरतों की परवरिश होती है। उन्हें खाने और पहनने को दिया जाता है, दीन-धरम के उपदेश दिये जाते हैं। नूरुद्दीन ने यह भी बतलाया कि जिसके घर की औरतें धर्मशाले में भेजी जाती हैं, उसको कलकत्ते के सेठ की तरफ़ से चावल भी मिलता है।

धर्मशाला की हवा चली। आस-पास के चार-पाँच गाँवों तक में 'धर्मशाला' की धूम मच गयी। दो मुट्ठी चावल के लिए औरतें बेची जाने लगीं। बुढ़ियों को धर्मशाला में दीन-धरम के उपदेश सुनने के लिए भर्ती नहीं किया जाता था। धर्मशाला का रहस्य मालूम हो गया। पर औरतों की अस्मत जाये तो जाये—खाने को मिले। बहू-बेटियों को वेश्या बनने दो! आबरू जाती है तो जाने दो! पेट से बढ़कर दुनिया में कोई चीज़ नहीं। बेचो! बेचो!!

नूरुद्दीन और अज़ीम का रोज़गार चल निकला।

पहली बार नूरुद्दीन अपने साथ बारह औरतें लेकर कलकत्ता गया।

मोनाई से अज़ीम की यह बढ़ोतरी न देखी गयी। औरतों के इस नये धंधे में आमदनी अच्छी है। मोनाई ने जाँच-पड़ताल की, हिसाब फैलाकर देखा, अज़ीम और नूरुद्दीन को सेर-भर चावल में चार औरतें पड़ती हैं। चावल अगर अस्सी रुपये मन भी बेचा जाये तब भी औरतों के व्यापार में कम-से-कम उससे दुगना नफा है।

मोनाई को लालच सताने लगा। मगर मन फटकारता था: अपने गाँव की, भले घर की बहू-बेटियों के कसब कराना बड़ा पाप है। मगर फिर मोनाई ने सोचा—"यों भी भूखी मर रही हैं बिचारी! वैसे कम-से-कम खाने-पहनने को तो मिलेगा। वो सुखी होंगे और चार पैसे मुझको भी मिल जायेंगे। भगवान जी ने अगर इस नये व्यौपार में अच्छे पैसे बनवा दिये तो आगे चलकर एक अनाथालय और आसरम भी खुलवाय दूँगा। यही तो धरम की महमा है। संसारी जीउ मोह-माया में पड़के अगर पाप भी कर बैठे तो परासचित करके पुन्न की नैया में भवसागर के पार उतर जाये। अहा, धन्न हो भगवान जी। तुम्हारी लीला अपरम्पार है। एक ओर तो अर्जुन को उपदेश दीना कि अर्जुन, मोह-माया में मत पड़ और दूसरी ओर राजपाट के लिए उससे जुद्ध भी करवा दीना। वाह-वाह ऐसा न्याव भगवान जी के सिवाय और कौन कर सकता है! धरम और करम, दूध और पानी जैसा कर दिया। मुल न तो दूध का दरजा

हीन किया और न पानी का। जोगी-जातियों के लिए धरम का मारग दिखाया और करम की महमा दिखाने के लिए खुद आप अरजुन के सारथी बन गये। धन्न हो प्रभुनाथ! बड़े दयालु हौ।"

हुक्का छोड़कर हाथ जोड़े, मोनाई बोष्टम की दोनों आँखों से नीर बहने लगा। गद्गद होकर मोनाई भगवान जी की प्रार्थना करने लगा—"हे दीनानाथ! हमारे भी सारथी बन जाओ! इत्ती बेला यही महमा दिखाओ! मैं तुच्छ हूँ तो क्या भया, हूँ तो तुम्हारा भगत ही। परतच्छ दरसन देओ परभूनाथ! नाथ! अब संसार में पाप की हद हुई गयी है। अज़ीमा गहरी दगा दे गया साला! बेद-पुरानों में झूठ थोड़े लिखा है कि कालिया नाग और मलेच्छ दोनों एकसमान हैं। मैंने बड़ी गलती की कि अज़ीमा का विश्वास किया। बड़े-बूढ़े कहते थे कि बेटा, महजित से निमाज़ की आवाज़ भी सुनायी पड़ जाये तो चट से कानों में उँगली ठूँस लो। इनका दीन-मजब उलटा है। इनके धरम का भरोसा ही नहीं है। ठीक कहते रहे बड़े लोग। हम पूरब में पूजा करते हैं, ये पश्चिम में निमाज़ पढ़ते हैं। हमारे धरम में तो भगवान जी का भगत बिचारा मेरा जैसा भोला-भाला होता है जो छल-कपट का नाम भी नहीं जानता; हर एक पर सीधे मन से बिसवास कर लेता है।...माँगता तो दस-पाँच हज़ार की जमानत है दैके इसकी आढ़त खुलवाय देता। मैंने इसे बेटे की तरह प्यार किया, और अन्त में यों दगा दै गया! मलेच्छय... अरे, भगवान जी ने चाहा तो मैं भी चारों खाने गिराय दूँगा। बेटा जी को भी मालूम नहीं है कि गुरु एक गुर सदा अपने पास जादा ही रखता है।"

मोनाई की छोटी-छोटी आँखें दर्प से चमक उठीं। उसने फिर हुक्का गुड़गुड़ाना शुरू किया।

दयाल, पुलिस, सरकारी अफ़सर या किसी कुलीन हिन्दू से मार खा जाने में मोनाई अपनी शर्म नहीं समझता था। मगर अज़ीम एक तो मुसलमान, दूसरे गरीब मल्लाह का बेटा, तीसरे उसका नौकर और किसी हद तक शिष्य भी था; अज़ीम से मार खाकर मोनाई को किसी करवट चैन नहीं मिल रहा था। अलावा इसके, अज़ीम को औरतों के व्यापार में फलते-फूलते देखकर उसकी जलन और भी बढ़ गयी थी। अज़ीम को परास्त करने के लिए मोनाई ने धर्म की शरण ली।

वह दयाल की शरण में गया—"हिन्दू डूब रहा है राजा बहादर! आपके राज में मुसलमान लोग हमारे घर की बहू-बेटियों को फुसलाये लिये जा रहे हैं।"

गो-ब्राह्मण प्रतिपालक क्षत्रिय ज़मींदार का वंशज तैश खा गया। मोनाई पानी चढ़ाने लगा —"कलजुग में गाँववालों की तो मत मारी गयी है। धरम-अधरम नहीं देखते, सबको अपने पेट की हाय पड़ी है। अज़ीमा और नूरुद्दीन धरमशाला के नाम पर औरतें खरीद रहे हैं।"

मोनाई एक प्रस्ताव लेकर गया था। सरस्वतीपुर दयाल ज़मींदार के इलाके में है। वहाँ गोरी पलटन की छावनी बन रही है। एक अनाथालय वहीं पर स्थापित कर दी जाये। पलटन पास रहेगी तो किसी का हियाव नहीं पड़ेगा। औरतों की रच्छा होती रहेगी और हिन्दू धरम भी

बच जायेगा। इस धरम-कारज के लिए मोनाई पाँच सौ एक रुपये का दान देने को भी तैयार है। बस राजा बहादर पीठ पर हाथ धर दें तो बाकी इंतज़ाम मोनाई आप कर लेगा।

टेंट से पाँच सौ एक खोलकर, भगवद्भक्त मोनाई ने गो-ब्राह्मण प्रतिपालक, धर्मावतार, धर्ममूर्ति श्री दयाल चाँद विश्वास के चरणकमलों में सादर सविनय अर्पित करके प्रणाम किया। दयाल ज़मींदार ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए मोनाई को आश्वासन दिया।

श्री सनातन धर्म अनाथालय के निमित्त मोनाई ने सात गाँवों में फेरे लगाने शुरू किये। बड़े ज़ोर-शोर के साथ अपना काम शुरू किया। साथ ही साथ उसको इस बात का भी डर लगा रहता था कि घाव खाकर अज़ीमा कभी चुप नहीं बैठा रहेगा। बंगाल में मुसलिम लीग का सुराज है, कोई अचरज नहीं जो कोई सरकारी दाँव चल जाये, तब? उसने छिपे तौर पर अज़ीमा और नूरुद्दीन की हरकतों पर निगाह रखना शुरू किया।

मोनाई इस वक्त चौमुखी लड़ रहा था। दयाल को साधना, 'अनाथालय' सँभालना, अज़ीमा पर निगाह रखना—हर तरफ़ उसके आदमी तैनात थे। हर आदमी पर उसकी निगाह थी।

उसने दयाल ज़मींदार के लठैतों से नूरुद्दीन को औरतों के साथ गिरफ्तार कराया। खुद आड़ में रहा। नूरुद्दीन और अज़ीम की अच्छी तरह मरम्मत करके उन्हें छोड़ दिया गया। औरतें श्री सनातन धर्म अनाथालय में भेज दी गयीं।

औरतों में हिन्दू भी थीं और मुसलमान भी। दयाल ज़मींदार के नाम पर मोनाई सभी को चावल बाँट रहा था। दो मुट्ठी चावल के लिए सभी अपने घरों की अस्मत खुशी से लुटा रहे थे। उन्हें अज़ीमा की धर्मशाला और मोनाई के अनाथालय का रहस्य अच्छी तरह से मालूम था, मगर उन्हें परवाह न थी।

अज़ीम और नूरुद्दीन अपने रोज़गार में चोट खाकर इस्लाम को खतरे में महसूस करने लगे। ज़मींदार के लठैतों के ज़ोर पर मोनाई अपने नये रोज़गार को जमाकर सनातन धर्म की जय बोल रहा था। अज़ीम और नूरुद्दीन की दाल नहीं गल पाती थी—"काफिर के बच्चे गरीबों पर जुलम ढा रहे हैं। इन्हें अपने पैसे का घमंड है, ताकत का ज़ोम है।" अज़ीम और नूरुद्दीन मन ही मन ताव खाने लगे—"हिन्दुओं से बदला न लिया तो शेरे-इस्लाम नहीं।"

अज़ीमा को गौरीपुर के नवाब साहब की याद आयी। उनसे दयाल ज़मींदार की पुरानी लाग-डांट है। दोनों के इलाके पास-पास हैं। जब से दयाल ने शीशमहल बनवाकर नवाब को नीचा दिखाया है, वह मन ही मन खार खाता है।

अज़ीम और नूरुद्दीन नवाब साहब के हुज़ूर में पहुँचे—"आपके रहते हुए मुसलमानों पर आँच आ जाये हुज़ूर, तब तो दुनिया में हमारे लिए कहीं ठिकाना नहीं रहेगा। काफिर का बच्चा हमारी बहू-बेटियों से कसब करा रहा है। अपने इलाके में मुसलमानों को तबाह किये डाल रहा है।"

शेरे-इस्लाम तैश खा गया। पुरानी अदावत फिर से ज़ोर मार गयी। हुक्म हुआ

—"कलकत्ता जाकर पचास गुंडों को ले आओ। भिड़ा दो उसके लठैतों से। उसके यहाँ डाका डलवा दो। और अगर उसके शीशमहल में आग लगवा सको तो तुम्हें दो हज़ार रुपया इनाम दूँगा। वह हिन्दू कुत्ता बहुत दिनों से सिर उठाकर हमारे सामने चल रहा है। मगर खयाल रहे, किसी को खबर न लगने पाये कि इसमें मेरा भी हाथ है।"

अज़ीम और नूरुद्दीन को सपने में भी खयाल न था कि इतनी आसानी से काम बन जायेगा। पाँच सौ रुपये गुंडों पर खर्च करने के लिए नकद मिले। अज़ीम और नूरुद्दीन खुशी के मारे सातवें आसमान पर पहुँच गये।

चाँदनी रात थी। अज़ीम और नूरुद्दीन नवाब साहब की कोठी से निकलकर अपने गाँव की तरफ़ चले।

कोठी से कुछ फासले पर पेड़ की आड़ में मोनाई बैठा था। अज़ीम और नूरुद्दीन उधर ही आ रहे थे। मोनाई खड़ा होकर जूते पहनते हुए खखारने लगा।

अज़ीम और नूरुद्दीन ठिठक गये, सहम गये।

मोनाई उधर देखकर बोला—"कौन? अरे अज़ीमा! कहो बेटा, अच्छे तो हो? अरे, ये कौन नूरुद्दीन है? अरे भैया, बहुत दिनों में दिखायी दिये।"

मोनाई उनके पास आने लगा। अज़ीम नफ़रत और गुस्से से काँप उठा। मोनाई हँसकर कहने लगा—"बेटा, मुझे मारकर कुछ भी नहीं पाओगे? मैं तुमसे ज़रा भी दुस्मनायगी नहीं रखता। न्याड़ा की कसम खा के कहता हूँ, भगवान जी की कसम खाता हूँ।"

मोनाई उनके बिलकुल करीब पहुँच गया। अज़ीम पर उसका नशा चढ़ने लगा। उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए मोनाई बोला—"ज़मींदार के कान मैंने ही भरे थे। तुम्हारी बेइज़्ज़ती और नुकसान भी मैंने ही कराया था। मुल भगवान जी जानते हैं, ये मैंने दुस्मनायगी के सबब से नहीं कराया।"

सुनकर अज़ीम चिढ़ उठा, ज़रा जोश आया। ताने के साथ बोला—"तो क्या प्यार जताने के लिए कराया था?"

चट से आसमान की तरफ़ आँखें उठाकर मोनाई ने जवाब दिया—"भगवान जी जानते हैं, प्यार के कारन ही ये चाल चली।"

अपने कन्धे पर से मोनाई का हाथ झटककर अज़ीम सख्ती के साथ बोला—"प्यार तो तुम अपने सगे बेटे से नहीं करते, मुझसे क्या करोगे? सुना नुरू, काका ने हमसे प्यार जताया है, हिः!"

मोनाई डपट पड़ा—"इत्ते बरस तुम्हें तोते की तरह से पढ़ाया, मुल अकिल ज़रा भी नहीं आयी। दूर की सूझती ही नहीं?"

फिर नूरुद्दीन की तरफ़ देखकर कहने लगा—"नूरुद्दीन, तुम्हें जो अपनी चाल सुनाऊँ तो कहोगे कि हाँ, काका दूर की कौड़ी लाते हैं। ये अभी क्या जाने ब्यौपार की चालें। ये तो गधा है। घर चल रहे हो?"

कहकर मोनाई चलने लगा। नूरुद्दीन और अज़ीम भी चुपचाप चलने लगे। मोनाई इस वक्त उन पर छा गया था।

मोनाई धीरे-धीरे बोलते हुए चलने लगा—"जब हम लौटकर घर आये तो गिन्नी ने तुम्हारा हाल बताया। सच मानना, मेरा कलेजा दुइ हाथ का हुइ गया। मैंने हँसके तुम्हारी काकी से कहा कि लौंडा हुसियार हुइ चला है। बेटा, रुज़गार का गुर यही है कि मौका पड़े तो सगे बाप को भी न छोड़े। मुल एक बात कहें बेटा, अपने बचपने में तुम ज़रा चूक गये, नहीं तो और लम्बा दाँव मारते!" मोनाई हँसा और फिर कहने लगा—"मैं तुम्हारी जगह होता तो जानते हो क्या करता?"

अज़ीम और नूरुद्दीन दोनों मोनाई की ओर देखने लगे।

मोनाई बोला—"बेटा, तुमने दाँव तो सीख लिया, मुल अभी सफ़ाई नहीं आयी। अरे पगले, काकी को पता भी न लगने देता कि बोरे तू निकाल ले गया है। उन्हें धोखे में ही रखता। पहले कुछ बोरे बेचकर आठ-दस हज़ार रुपै उनके हाथ में धरता, और फिर उनसे कहता कि काकी, फलाने-फलाने गाँव में यूनन वोट वाले इसी भाव पर दुइ हज़ार बोरे और निकाल रहे हैं। काका के न होने से बड़ा भारी नुकसान हुइ रहा है। यह कहके जो एक ठंडी साँस और छोड़ देता तो बेटा, तेरी काकी अपने गहने उतारकर तेरे आगे धर देती।"

मोनाई का जादू चढ़ गया। अज़ीम और नूरुद्दीन मोनाई की बातों के टोने में बँधे हुए चल रहे थे। अज़ीम मन ही मन अपनी गलती महसूस कर रहा था। मोनाई कहता गया—"अरे औरतबानी, नफे का नाम सुनते ही पानी हुई जाती। वो आठ-दस हज़ार रुपै भी तुम्हीं को दे देती, और ऊपर से अपने गहने तक उतार देती। मैं तुम्हारी जगह पर होता तो एक तीर में दो सिकार करता। रुज़गार में सबर से काम ले और ठंडे मगज से चाल सोचे। वो बैपारी क्या जो एक तीर से दुइ सिकार न कर सके।"

मोनाई काका के उपदेशों को ध्यान और श्रद्धा के साथ सुनने की आदत अज़ीम को सदा से रही है। मोनाई के प्रति श्रद्धा का भाव उत्पन्न होते ही अज़ीम का अपराधी मन आत्मग्लानि से पीड़ा पाने लगा। वह सिर झुकाकर चल रहा था। नूरुद्दीन और अज़ीम दोनों मन्त्रमुग्ध-से चुपचाप चले जा रहे थे।

मोनाई ने ज़रा नज़र उठाकर दोनों की तरफ़ देखा। देखा दोनों ही उसकी बातों को तलवार से काट चुके हैं। होंठों की मुस्कुराहट को दबाकर मोनाई ने आगे बात बढ़ाई—"अब तुम्हारी दूसरी गलती तुम्हें बतावैं?"

अज़ीम खिसियाना-सा हो गया था। शर्म के मारे उसका सिर नहीं उठ रहा था। नूरुद्दीन मोनाई की तरफ़ देखने लगा। मोनाई ज़रा हँसकर नूरुद्दीन से बोला—"इसी को कहते हैं लड़क-बुद्धि! देखो, अब सिर नहीं उठ रहा इनका! अरे बेटा, अपनी एक चाल चलो तो दुस्मन की दो चालें सोच लो। तुम ये कैसे भूल गये कि मोनाई काका बैपारी आदमी हैं, मेरी चाल पर वो भी कोई चाल ज़रूर चलेंगे। तुमने उधर तो ध्यान दिया नहीं और नूरू के साथ दूर की

कौड़ी लपकने के लिए आँख मूँदकर बढ़े। जैसे तुम सिड़ी, वैसे ये नूरू सिड़ी। अक्किल गिरों रखके रुज़गार करने चले थे साहब।"

दोनों का सिर झुक गया। नूरुद्दीन भी शिष्यों की श्रेणी में आ गया।

मोनाई फिर ज़रा ज़ोर से हँसा। बोला—"जब मैंने ये देखा तो बड़ी ज़ोर की हँसी आयी। उसके पहले, सच कह दूँ, मुझे तुम पर थोड़ा-बहुत गुस्सा ज़रूर रहा। मुल जब देखा कि लौंडा बड़ी कच्ची चालें चल रहा है तो यकीन मानो, बड़ी दया आयी। फिर ये खयाल मगज़ में दौड़ा कि आधी विद्या में ही फूलकर लड़का नदानी कर रहा है। इसे ज़रा सिच्छा देनी चाहिए। नहीं तो आगे चलकर किसी बाहर वाले से करारी मात खायेगा; मेरा नाम डूब जायेगा। इसीलिए ये सब चाल खेलनी पड़ी।"

अपने शिकारों पर मोनाई ने फिर नज़र डाली। बातों की गाड़ी और आगे बढ़ी। मोनाई ने अब आखिरी वार किया—"तुम अपने मन में सोचते होगे कि काका कोई चाल चल रहे हैं। बेटा, अगर मुझे तुम लोगों से चाल ही चलनी होती तो इस बखत तुम्हें यों टोक के न बुलाता। सुनसान रात, तुम दोनों जवान, मुझे अपना दुश्मन समझने वाले, ज़रा-सी देर में मेरी गर्दन मरोड़कर मेरी लहास फेंक देते तो कौन जानता? तुम क्या ये समझते हो कि मैं बिना सोचे-समझे ही तुम्हारे पीछे चला आया?"

अज़ीम और नूरुद्दीन दोनों चौंके। उन्हें एक नया डर पैदा हुआ। तभी मोनाई अज़ीम के कन्धे पर हाथ रखकर बड़े प्यार के साथ बोला—"बेटा, मेरे मन में कपट होता तो दूसरी चाल चलता। इस दम तुम्हारा पीछा करके तुमसे बातें करने में मेरा बड़ा गहरा मतलब है। तू तो जानता ही है, मैं सदा एक तीर से दुई सिकार करता हूँ। दयाल ज़मींदार से मिलकर तुम्हें सिच्छा भी दे दी, और अपने-तुम्हारे फैदे के लिए एक चाल भी चल गया।"

अज़ीम और नूरुद्दीन की वाक्शक्ति लुप्त हो गयी थी। आधा रास्ता तय हो गया, बोलने का काम सिर्फ़ मोनाई ही करता रहा।

सहसा मोनाई धीरे-धीरे बड़े गम्भीर स्वर में कहने लगा—"नवाब साहब को हिन्दू-मुसलमान के झगड़े के लिए उकसाया?"

अज़ीम और नूरुद्दीन एकदम से सहम गये। अज़ीम की ज़बान लड़खड़ाकर आप ही आप खुल गयी—"न...न...नहीं काका, झगड़ा..."

बात काटकर मोनाई बोला—"अरे बेवकूफ़ों, ठीक तो किया। डरते क्यों हो? अरे, यही तो मैं चाहता था। हिन्दू-मुसलमान का झगड़ा डालो, इसी में हमारा-तुम्हारा फैदा है।"

नूरुद्दीन बड़ी सफ़ाई दिखाते हुए बोला—"नहीं काका, ऐसी बात भला हम कर सकते हैं!"

मोनाई फौरन ही तानामेज़ लहजे में कह उठा—"नहीं, तुम लोग तो बस घास छील सकते हो—गधे कहीं के। अरे, मैं कहता हूँ कि नवाब साहब और दयाल के बीच में हिन्दू-मुसलमान का झगड़ा डालो। ये लोग जब लड़ेंगे तभी हम लोगों का फैदा होगा। जब तक ये

बड़े-बड़े ज़मींदार और राजा लोग हमारी खोपड़ी पर सवार रहेंगे तब तक हमें कुछ नहीं मिलेगा। क्यों भई नूरुद्दीन, कुछ झूठ कहता हूँ मैं?"

अज़ीम मोनाई की इस बात को हज्म नहीं कर पा रहा था। उसे मोनाई की सूझ-बूझ पर गहरा विश्वास था और वही विश्वास इस समय उसे मोनाई के प्रति अविश्वास उत्पन्न कर रहा था। वह चकित और भयभीत था। मोनाई को उसके और नवाब साहब के मिलने का कारण मालूम है—एक तरह मालूम ही है। वह भाँप गया है। दयाल को अगर इसने पहले ही सचेत कर दिया तो उल्टी आफत आयेगी। दयाल नवाब साहब से ज़्यादा अमीर है। ज़रा-सी लाग-डाँट होते ही उसने लाखों खर्च करके शीशमहल तैयार करा डाला। इस बार भी वह नवाब साहब को पछाड़ सकता है। मगर मोनाई को यही करना था तो इस वक्त इस तरह, यहाँ आकर वह मेल-मिलाप करने की कोशिश क्यों करता? फिर दयाल और नवाब साहब के बीच में हिन्दू-मुसलमान का झगड़ा डालने की बात भी खुद ही कर रहा है। चाहता क्या है आखिर?

अज़ीम और नूरुद्दीन दोनों मिलकर भी मोनाई से पार नहीं पा सकते। दोनों, खास तौर पर अज़ीम तो बेहद घबराया हुआ था। वह कुछ सोच ही नहीं पाता था। नूरुद्दीन अपने को सँभालकर बोला—"बात तो चौकस है काका, बाकी ये नहीं समझ में आता कि हिन्दू-मुसलमान का झगड़ा क्यों डाला जाये?"

मोनाई ने फौरन ही गम्भीर स्वर में उत्तर दिया—"इसमें एक गहरी चाल है। पहले तो तुम यह समझो कि हिन्दू-मुसलमान का झगड़ा क्यों होता है? इसलिए न कि दोनों अपने-अपने धर्म को बड़ा समझते हैं। और जब छुटाई-बड़ाई का फैसला नहीं हुइ पाता तो दोनों अपनी ताकत अजमाते हैं। है कि नहीं? कहो, हाँ?"

नूरुद्दीन ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ, ये तो सही है।"

"बस, तो इसका तातपरज ये भया कि लड़ाई धरम की नहीं होती, घमंड की होती है। क्या समझे? अरे, धरम तो भगवान जी का मार्ग है, चाहे उन्हें खुदा जी कह लो, चाहे भगवान जी कह लो। उसमें कुछ भी फरक नहीं पड़ता। फरक तो छुटाई-बड़ाई का है, सो घमंड के कारन हैं। अब तुम्हीं लोग हो, क्यों गये नवाब के पास? इसीलिए न, कि तुम्हारा उनका दीन-मजब एक है और तुम्हें ये बात मालूम रही कि दयाल और नवाब साहब की आपस में खटकती है। दयाल ने तुम्हें नीचा दिखाया, नवाब साहब की आड़ लेके तुम उन्हें नीचा दिखाना चाहते थे। कहो, आ गयी घमंड की बात कि नहीं?"

"लेकिन काका," नूरुद्दीन बोला—"हम इसलिए उनके यहाँ नहीं गये थे। हम तो..."

बात काटकर मोनाई बोला—"बेटा दाई के आगे पेट छिपाना बेफज़ूल है।"

अज़ीम और नूरुद्दीन भी यही अनुभव कर रहे थे। एक क्षण के लिए रुककर मोनाई ने फिर बात का सूत्र उठाया—"और सच्ची पूछो तो बेटा, न तो तुम्हारा और नवाब साहब का धरम एक है, न मेरा और दयाल ज़मींदार का। असली धरम तो हमारा-तुम्हारा एक है। हमारे

लिए दयाल और नवाब दोनों ही ससरे विधर्मी हैं। अरे, कलजुग में धरम काहे का? स्वारथ का। और स्वारथ हमारा-तुम्हारा एक है। हमारा स्वारथ इसी में है कि ये बड़े लोग आपस में जूझें और हम मिलकर नफा उठायें। है कि नहीं? अब देखो, यों तो नवाब और ज़मींदार में पुरानी अदावत है, मुल इस समै इन्हें लड़ाने के लिए कोई परतच्छ कारण नहीं रहा। तुम नवाब साहब के हिरदै में धरम की आग सुलगा आये। चलो, हमारा काम बन गया। बाकी हम-तुम जो इस आग में अपने घमंड के कारन पड़े तो गेहूँ के साथ घुन की तरह हम भी पिस जायेंगे। घमंड, भैया, पेट भरे पर होता है। हम-तुम तो धन के भूखे हैं, काहे का घमंड करेंगे? और जो इस पर भी घमंड करेंगे तो नासमझी में अपने पैर पर आप कुल्हाड़ी मार लेंगे। क्यों अज़ीमा, बोलो न, चुप क्यों हो?"

अज़ीम के लिए अब कोई मार्ग न था। सिर झुकाकर बोला—"मैं तुमसे बाहर थोड़ी हूँ, काका।"

मोनाई की बाँछें खिलीं, अज़ीम की पीठ पर हाथ रखकर बोला—"ये तो मैं जानता हूँ, बेटा। क्या तय कर आये हो?"

अज़ीम का सिर अभी भी नहीं उठ रहा था, सिर झुकाये हुए ही उसने जवाब दिया —"दयाल की कोठी पर हमला होगा।"

"कब?"

"नूरू कलकत्ते जायेगा, आदमी लाने।"

मोनाई बहुत गम्भीर होकर सारी बात पर गौर करने लगा—"हूँ, कुछ पैसे झटके?"

"पाँच सौ!" अज़ीम कहना नहीं चाहता था, मगर ज़बान पर मोनाई का असर था।

मोनाई बोला—"उहूँ! हमला दयाल की हवेली पर नहीं, सरसुतीपुर में जहाँ मैंने औरतें रखी हैं, वहाँ होना चाहिए। पूछो, क्यों?"

अज़ीम मोनाई के मुँह की तरफ़ देखने लगा। उसकी झिझक मिट गयी थी।

मोनाई बोला—"अगर दयाल की हवेली पर हमला भया तब इन दोनों की तो ठन जायेगी, बाकी हमारे लिए एक तीर से दो सिकार न होंगे। सुनो, औरतों के धंधे में हम तीनों का साझा रहेगा। अनाथाले में कुछ पैदा नहीं, पलटनिये ससरे शराब पी के अपनी मनमानी करते हैं। मेरी चार औरतें मर चुकीं। ठेकेदार अपना कमीसन सिर चीरकर ले लेता है। औरतों की खिलाई-पिलाई का खर्चा अलग देना पड़ता है। मैं ये चाहता हूँ कि नूरू कलकत्ते में ही सबको ठिकाने लगा आवे। उसी में नफा है। इसलिए नूरू जिस दिन गुंडे लेके आवेगा, मैं ठेकेदार को कुछ ले-देकर मोटर का इन्तज़ाम कर रखूँगा। जहाँ औरतें लादके रवाना कीं कि खाली घरों में गुंडों से हल्ला मचवाय देंगे। क्या समझे?"

अज़ीम ने सवाल किया—"ये तो ठीक है, मगर इसमें हिन्दू-मुसलमान की बात कहाँ आयी?"

"आगे आती है!" मोनाई बोला—"सुनो, इसमें एक साथ कई चालें चलनी पड़ेंगी। नवाब

साहब के रुपै से जो गुंडे लाओ तो उन्हें ये समझाना कि ये दयाल ज़मींदार के आदमी हैं। क्या समझे नूरू?"

"क्यों काका?" नूरुद्दीन ने समझने की गरज़ से सवाल पूछा।

"इसमें चाल ये है कि पलटनिये जब औरतें नहीं पायेंगे तो भड़केंगे। गुंडों को देख के समझेंगे, इन्हीं ने औरतें उड़ा दी हैं। गोरी पलटन का जो जंडैल है, उसी को मैं बाद में ये पट्टी पढ़ाऊँगा कि छावनी के ठेकेदार ने दयाल के साथ मिलकर औरतें उड़ाई हैं। सबूत दूँगा कि ठेकेदार की मोटर ही औरतों को ले गयी रही। इस तरह एक तो ठेकेदार का छावनी से पत्ता कटैगा, दूसरे जब गुंडे गिरितदार होंगे तो वे यही बतावैंगे कि हम दयाल ज़मींदार के आदमी हैं। इस तरह गोरों की गवाही दयाल के खिलाफ़ होगी। सरकार में दयाल ज़मींदार की बदनामी हुई जायेगी। दयाल का पच्छ कमज़ोर होगा। इधर तो यों साधूँगा, उधर दयाल को ये पट्टी पढ़ाऊँगा कि औरतें नवाब साहब ने उड़वाई हैं। आपके अनाथाले की औरतों को मुसलमान बना के वो आपसे बदला ले रहे हैं। मैं कहूँगा कि औरतें भूतों की महजिद में छिपाई गयी हैं। दयाल को गुस्सा दिला के उसके लठैत उधर भिजवाऊँगा, क्या समझे? और अज़ीमा नवाब साहब को भड़कावे। ये कहेगा कि दयाल आज रात महजिद तुड़वाने वाले हैं। उनके लठैत पहले ही महजिद में छिपाये रखना। क्या समझे अज़ीमा? महजिद पर दोनों पालटियों के लठैत खून-खराबा करेंगे, बात अपने-आप पुलीस और कोरट तक पहुँचेगी। पलटन के जंडैल भी दयाल के खिलाफ़ अपना अडर लिखेंगे। दयाल दोनों तरफ़ से गच्चे में आवेगा। क्या समझे? दयाल के ऊपर जादा दबाव पड़ना चाहिए। काहे से कि हम लोग इसी गाँव में रहते हैं। उसके ऊपर इत्ती आफत पड़े कि उसका ध्यान किसी दूसरी बात की तरफ़ पड़े ही नहीं। तभी हम लोग निसचिंत हुई के अपना रुज़गार कर सकेंगे। बल्के मैं तो दयाल को यहाँ तक पट्टी पढ़ाऊँगा कि मुस्लिम लीग का सुराज है, नवाब साहब को कहीं से मदद मिल रही है। कलकत्ते जाय के आप भी हिन्दू सभा का आन्दोलन कीजिए। अरे बेटा, दयाल अगर यहाँ रहा तो वह मुसलमान होने के कारण तुम लोगों पर सक करेगा। और हत्तियाचार करेगा। मैं तुम लोगों पर ज़रा भी आँच नहीं आने देना चाहता। तुम लोग तो मेरे लड़के के समान हो।"

अज़ीम और नूरुद्दीन पर मोनाई की बातों का ज़बर्दस्त प्रभाव पड़ा। अज़ीम ने गद्गद भाव से फौरन ही मोनाई के पैर पकड़ लिये। आँखों में आँसू भरकर बोला—"काका, मैंने तुम्हारे साथ बड़ी नालायकी की है। मैं बड़ा पापी हूँ।"

मोनाई ने फौरन ही अज़ीम को उठाकर अपने कलेजे से लगा लिया। बोला—"बेटा, भगवान ही जानते हैं, मैंने ज़रा भी बुरा नहीं माना। अरे भाई, नासमझी के कारण लड़के कभी ऊटपटाँग कर बैठते हैं। माँ-बाप भी जो ऐसी ही नासमझी करके बुरा मान जायें तो फिर ये संसार चले कैसे? क्यों नूरू, मैं झूठ कह रहा हूँ बेटा?"

नूरूद्दीन सिर झुकाकर बोला—"ठीक है काका, मगर इतना तो मैं भी ज़रूर कहूँगा कि

तुम्हारे जैसा धर्मात्मा इस दुनिया में होना बड़ा कठिन है। तुमको गलत समझके हमने बड़ी भूल की।"

फौरन अपने कान पकड़कर आकाश की ओर देखते हुए मोनाई बोला, "नहीं बेटा, ऐसी बात मत कहो। मेरा घमंड बढ़ेगा। जो कुछ करते हैं, सब भगवान जी करते हैं। मेरी क्या सक्ती है। अरे, भगवान जी ने चाहा तो ये दयाल और नवाब, और ये जित्ते बड़े-बड़े ज़मींदार, राजे-महाराजे हैं—ये सब एक दिन मिट्टी में मिल जायेंगे। और इनका मिट्टी में मिल जाना ही अच्छा है। ये बड़े आदमी सब राच्छस हैं, राच्छस! इनके हत्तियाचारों से पिरथी तिराह-तिराह पुकार रही है बेटा! देखा लो, लड़ाइयाँ हुइ रही हैं। बम, तोपें और मारकाट मच रही है। हमारे इन सुरग जैसे गाँवों में आज ये दसा हुइ गयी है। बस, अब पाप की हद हुइ गयी है। इनका नास करने के लिए भगवान जी ज़रूर अवतार धारण करेंगे। गीता जी में भगवान जी ने कहा है कि 'परतराना साधू नाम और बिनासा होवेगा दुष्ट नाम!' सो ज़रूर होवेगा, बेटा। तुम्हारे कुरान जी में ज़रूर यही बात लिखी होगी, क्योंकि बेटा, धरम-मजब तो सब भगवान जी के बोल हैं, सबमें एक ही बात लिखी है। अब तो हम गरीबों का सुराज होवेगा, क्योंकि गरीब ही भगवान जी के सच्चे भगत होते हैं। मैं तो, बेटा भगवान जी के उपदेस पर चलता हूँ। तुम लोग मेरे प्यारे हो, ये लोग मेरे दुस्मन हैं। इनका संहार करूँगा, तुम्हारा उद्धार करूँगा। अब ये सब चालें जो भगवान जी की दया से बैठ गयीं तो ठेकेदार, दयाल और नवाब उलट जावेंगे। फिर ठेका भी मैं ही लूँगा। क्या समझे? ठेकेदारी, दूकानदारी और ये औरतों का काम? ये औरतों का काम भी बड़े धरम का है नूरू! अन्न से बढ़कर कोई धरम नहीं। इज़्ज़त-आबरू सब इसके पीछे हैं। और बेसियाएँ जो पापिन होतीं तो भगवान जी इन्हें बनाते क्यों? पेट भरने के लिए भगवान जी ने ये सब करम बनाये हैं। कोई करम करो, मुल भगवान जी का नाम लेते रहो, फिर कोई पाप नहीं है। क्या समझे? जब मैंने गुरु जी की कंठी ली तब ये ज्ञान की गूढ़ बातें समझ में आयीं। बस इसीलिए बेटा, ये सब धंधा फैलाके अपना करम करता हूँ और आगे भी कुछ दिनों तक करूँगा। तुम सब लोग हुसियार हो। जहाँ तुम लोगों ने मिलकर काम-काज सँभाल लिया तो न्याड़ा और उसकी माँ को अज़ीमा के हाथों में सुपुर्द करके फिर मैं संन्यास ले लूँगा। क्या समझे?"

अज़ीम खुशामद करता हुआ बोला—"नहीं काका, अभी तुम्हारी कुछ उमिर थोड़े हुई है।"

"नहीं बेटा, फिर तो मैं संन्यास ले लूँगा। करम से धरम में जाऊँगा। कुछ कह लो, ये करम का मार्ग है बड़ा कठिन। बड़े मायामोह करने पड़ते हैं इसमें। आह भरकर) भगवान जी, तुम्हीं हो, तुम्हीं हो!

हच्च से एक डकार आयी। भक्तिभाव ने स्थूल रूप धारण कर लिया। पेट पर हाथ फेरते हुए मोनाई बोला—"ससुर खट्टी डकारें आय रही हैं। तुम्हारी काकी ने मीठा भात और लूची बनायी थी आज। ज़बर्दस्ती करके जादा खिलाय दिया। भगवान जी, भगवान जी!"

मोहनपुर गाँव की सीमा निकट आ गयी थी। तीनों अपनी एक बहुत बड़ी उलझन को सुलझाकर हल्के हो चुके थे, और अब किसी नयी बात की खोज में थे। चाँदनी रात थी, इसपर ध्यान गया। अपना गाँव आ गया था, इसपर ध्यान गया। फसल तैयार हो चली थी, इसपर भी ध्यान गया।

अज़ीम बोला—"फसल अच्छी रही है, काका। बाकी कोई काटने वाला नहीं इस साल।"

दस कदम आगे रास्ते में पाँच-छः कंकाल पड़े थे। जानवर माँस चाट चुके थे। मोनाई उन्हें देखकर बोला—"फसल काटनेवाले तो ये पड़े हैं भैया।"

मोनाई ने बहुत गम्भीर होकर कहा था। तीनों मौन हो गये। वे ठठरियों के करीब आ पहुँचे थे। चमकते हुए दाँतों की पंक्तियाँ, आँखों के गड्ढे, पसलियों के पिंजरे, हाथ-पैरों की हड्डियाँ —मनुष्य का अप्रत्यक्ष रूप प्रत्यक्ष देखकर तीनों के पैर ठिठक गये। उन अस्थि-पंज़रों की आड़ में सत्य ने मानो भागते हुए चोरों को पकड़ लिया। वे सहम गये। यों तो नयी बात नहीं, आँखें अरसे से ये ठठरियाँ देखने की अभ्यस्त हो गयी हैं, जगह-जगह दिखायी पड़ जाती हैं। जब तक लाशें जलाने-दफनाने की शक्ति रही, लोगों ने उनकी सद्गति कर दी। लेकिन अब तो लोगों से अपने प्राणों का बोझ ही नहीं उठाया जा सकता, फिर लाशें कौन उठाये!

गाँव में जगह-जगह ठठरियाँ बिखरी पड़ी हैं। हड्डियों के टुकड़े और सिरों की गेंद कुत्तों का मनोरंजन बन गये हैं। टूटे, उजड़े हुए मिट्टी के घर खड़ी फसलें और ठठरियों की संख्या में मोहनपुर का वैभव निहित था। सैकड़ों तपस्वियों की जीवन-ज्वाला से तपी हुई भूमि को धुँधली चाँदनी की शीतलता और प्रकाश से शान्ति मिल रही थी। धुँधली चाँदनी के प्रकाश में ठठरियाँ रहस्यमयी-सी लगती थीं।

तीनों देखते रहे, पहले मोनाई बोला—"फसलें खड़ी करनेवाले तो ये पड़े हैं भैया, फिर काटने कौन आयेगा? एक दिन ये भी हमारी-तुम्हारी तरह थे। इनके साथ हमने हाट-रुज़गार किया है; हँसे-बोले, उठे-बैठे हैं। इनके साथ लड़ाई-झगड़ा भी किया है; होली-दिवाली और ईद भी मनाई है। आज पहचान में भी नहीं आते कि कौन-कौन हैं? भगवान जी, इन्होंने ऐसा कौन-सा पाप किया रहा जो ऐसी मौत पायी? और हमने ऐसा कौन-सा पाप किया रहा जो ये दिन देखना पड़ा।"

मोनाई की आँखों में आँसू छलछला उठे।

अज़ीमा बच्चों की तरह अपने सामने के दृश्य में खो गया था।

नूरुद्दीन को अपनी भूखी माँ की याद आ रही थी, जिसे उसने भूख के ज़ोम में गला घोंटकर मार डाला था; बढ़ई मुनीर की याद आ रही थी। मुनीर की बीवी की याद आ रही थी, जिसे उसने पीट-पीटकर तन-फरोश बनाया था। उसे मुनीर की मासूम बच्चियों की याद आ रही थी। अज़ीम से उसने चाँद के चूल्हे में जलाये जाने का हाल सुना था, रुकिया की मौत की खबर सुनी थी। मुजस्सिम गुनाह बनकर बेशर्मी के साथ अपने को महसूस कर रहा था। उसे अपनों की याद आ रही थी।

अपनी कोमल भावनाओं पर संयम करते हुए मोनाई विचारक बना। बोला—"खरी ज़िन्दगी तो इन मरनेवालों की रही बेटा। ये सदा दुनिया के काम आये। और मरने पर भी काम आ रहे हैं। हमें सिच्छा दे रहे हैं—इस माटी का क्या मोह, मूरख? हंस अकेला जाई बाबा, माटी ससरी को कोई पहचानेगा भी नहीं। बस करम किया रह जावेगा। करम कर प्राणी अपना करम किये जा!"

अज़ीम और नूरुद्दीन दोनों चुपचाप खड़े थे। एक क्षण रुककर मोनाई बोला—"एक बार कलकत्ते के इस्पताल में गया था मैं। वहाँ ऐसे ढाँचे देखे थे हमने। डागदरी के लड़के इससे पढ़ते हैं।"

नूरुद्दीन—कलकत्ते का अनुभवी—फौरन बोल उठा—"अरे, मिडकल कालिज में सारी पढ़ाई इसी पर होती है। मैंने अपनी आँखों से देखा है। और मसमरीजम—जादू वालों की दूकानों में मैंने बहुत-से देखे हैं। इन्हें देखकर मुझे डर नहीं लगता काका!"

अज़ीम भी फौरन अकड़कर बोला—"डर-वर क्या, मैं तो भूतों की महजिद में रात-भर सोया हूँ। मुझे इनसे ज़रा भी डर नहीं लगता।"

मोनाई शान्त स्वर में कहने लगा—"इनसे काहे का डर बेटा? ये तो ज़िन्दगी-भर आप ही दूसरों से डरते रहे। डरते-डरते मर गये बिचारे। मेरी ये इच्छा हो रही है अज़ीमा, कि इन बिचारों की सद्गति करा दी जाये। जब तक जिये, दूसरों के काम आये; और मर जाने पर भी दूसरों के काम आवें, यही मैं चाहता हूँ। न जाने कित्ते लड़के इनसे सिच्छा पायेंगे; न जाने कित्ते-कित्ते बसीकरन मन्त्र इनपर सिद्ध किये जायेंगे।...पुन्न का पुन्न है। नूरु, कलकत्ते तो जा ही रहे हो बेटा, भाव पूछते आना इनका। क्या समझे?"

नूरुद्दीन और अज़ीम चमक उठे। बड़े उत्साह के साथ अज़ीम बोला, "वाह काका, कमाल की बात सोची है तुमने। हमारा तो खयाल भी नहीं पहुँच सकता था। क्यों नूरू?"

नूरुद्दीन तो मोनाई का भक्त हो गया था। गद्गद होकर बोला—"अरे भाई, ये काका की खोपड़ी है। ये ज़माने-भर के तजरबेकार की निगाहें हैं, जो मिट्टी में भी सोना ढूँढ लेती हैं। मैं कल ही कलकत्ते जाऊँगा काका। ये तुमने बड़ी दूर की सोची है। मगर ले कैसे जायेंगे काका?"

मोनाई बोला—"ये फिकर तुम्हारी नहीं, हमारी है। हम कर लेंगे इसका इंतजाम। और सुनो बेटा! आओ, चलते जाओ। मैं ये कह रहा था नूरू, कि अब कुछ साझे-सौदे की बात भी हुई जाय। रुज़गार-बैपार में हिसाब कौड़ी का और बकसीस लाख की। क्या समझे?"

नूरुद्दीन ज़रा कुछ लापरवाही दिखाने का स्वांग करते हुए नीम रज़ामन्दी से सिर हिलाकर बोला—"हाँ, ये तो एक तरह से ठीक है, काका! मगर..."

इसकी तरफ़ ध्यान न देते हुए मोनाई कहने लगा—"नवाब साहब से जो पान सौ की रकम तुम्हें गुंडों के लिए मिली है, उसमें से तुम जो बचा लो, वह तुम्हारा है। उसमें अज़ीमा का हिस्सा नहीं रहेगा।"

मोनाई मूँछ खुजलाने के बहाने ज़रा रुका और तिरछी नज़र से अज़ीम को देखा। अज़ीम चुप रहा। मोनाई ने आगे बात बढ़ायी—"यही नहीं, आगे भी जो तुमको हज़ार पान सौ मिल जाये, सो भी तुम्हारा।"

नूरुद्दीन ज़रा बनकर बात काटते हुए बोला—"नहीं काका, अज़ीमा का भी हक है।"

मोनाई तड़ से बोल उठा—"देखो बेटा, बुरा न मानना नूरू! अज़ीमा का क्या हक है और क्या नहीं, इसका न्याव हमारे सामने करने जोग तुम नहीं हो। तुम अज़ीमा के दोस्त हो, इसलिए मेरा धरम है कि तुम्हारा भी भला चेतूँ। बाकी देखो, बुरा मानने की बात नहीं है। अज़ीमा के भले और हक की बात जो मैं सोचूँगा, वो दूसरा कोई नहीं सोच सकता। क्या समझे? अज़ीमा मेरे दोस्त का बेटा, मेरा सागिरद है। भगवान जी जानते हैं इसे और न्याड़ा को मैंने कभी अलग करके नहीं माना। इसलिए मैं जो कहता हूँ वह सुनो। नवाब साहब के पैसे में अज़ीमा को मैं कोई हक नहीं देता। औरतों के मामले में छः-छः आने तुम दोनों के, चार आने मेरे। इन ठठरियों के मामले में भी यही फैसला रहेगा। ठठरियों में जो मेरी चवन्नी रहेगी, उसमें से एक आना मैं अज़ीमा को दूँगा, एक आना पुन्न के खाते में और दो आने मेरे। क्या समझे?"

"ठीक है काका। हमको खुसी है।" नूरुद्दीन सन्तुष्ट होकर बोला।

मोनाई फिर कहने लगा—"अच्छा, अब रही दूकान, सो उसमें अज़ीमा की चार आने की पत्ती रहेगी। और छावनी का ठेका जो लूँगा, उसमें दो आने तुम्हारे, चार आने अज़ीमा के और दस आने मेरे। देखो भाई, मैं कुछ अन्याव तो नहीं कर रहा हूँ? तुम्हें कुछ सक-सुभा होये तो अभी मेरे मुँह पर ही कह दो। मैं बुरा नहीं मानूँगा। बाकी पेट में न रखना। क्या समझे नूरू?"

नूरुद्दीन बाँछें खिलाता हुआ, हाथ जोड़कर बोला—"नहीं काका, अल्ला कसम, मैं तो बहुत खुश हूँ। तुम्हारे फैसले में कभी गैर-इंसाफी नहीं हो सकती। सच कहता हूँ अज़ीमा, आज से मैं तो काका का गुलाम हो गया हूँ, अपनी कसम!"

"और अज़ीमा!" मोनाई बोला—"जो हुइ गया उसे भूल जाओ। भगवान जी जानते हैं, मेरे मन में तुम्हारी तरफ़ से ज़रा भी मैल नहीं है।"

मोनाई का घर दिखायी पड़ने लगा।

अज़ीम बेहद शर्मिंदा हो रहा था। बड़ी दीनतापूर्वक सिर झुकाकर बोला—"मेरे मन में अब कुछ नहीं है काका। उस दम न जाने मेरे सिर पर कौन-सा भूत सवार हो गया था। अल्लाह गवाह है, मेरी रूह बड़ी तकलीफ पा रही है इस दम।"

"तू तो सिड़ी है।" मोनाई ने हँसकर अज़ीम के गाल पर एक हल्की-सी चपत लगा दी। वह अपने घर में दरवाज़े के सामने था। कहने लगा—"चले आओ, अपनी काकी से मिलते चलो। नूरुद्दीन, बुरा न मानना बेटा! अब इस दम तो मैं अज़ीमा को अपने साथ लिये जा रहा हूँ। बहुत दिनों बाद...तुम तो समझते ही हो बेटा!"

"हाँ, हाँ, काका, मुझे खुशी है। अच्छा तो मैं चलता हूँ। सबेरे मिलूँगा।" नूरुद्दीन बोला।

"अच्छी बात है, सवेरे ज़रूर आना। बस, फौरन से पेस्तर अब काम पर जुट जाना है। क्या समझे? अच्छा बेटा, जीते रहो, भगवान जी तुम्हें बनाये रखें," कहकर मोनाई अपने घर की कुंडी खटखटाने लगा।

मोनाई का प्रेमपात्र बनकर अज़ीम ज़रा बड़प्पन का भाव लेकर नूरुद्दीन से बोला —"सबेरे मिलूँगा नूरू। अच्छा, सलाम भाई।"

मोनाई की पत्नी ने दरवाज़ा खोला। अज़ीम को पति के साथ देखकर ज़रा चौंकी। अज़ीम के प्रति उसकी घृणा चेहरे पर झलक गयी। उसके ही कारण बूढ़े पति की बड़ी लाड़ली पत्नी को पति के हाथों मार खानी पड़ी थी और उसे तीस हज़ार रुपयों का गम सहना पड़ा था।

काकी से तीस हज़ार रुपये ले जाने के बाद अज़ीम आज पहली बार सामने आया था। उसकी आँखें इस वक्त झुक रही थीं।

मोनाई ने परिस्थिति को दोनों तरफ़ से सँभाल लिया। अज़ीम के प्रति उसकी काकी के प्रेम का बखान करना शुरू किया। बहुत याद करती रही है। काकी के हाथ का मीठा भात खाने का इसरार किया। अज़ीम की नादानी कोई बड़ा गुनाह नहीं, बच्चे कर ही जाया करते हैं। मरने के पहले वह अज़ीम को कुछ-न-कुछ अवश्य ही दे जाता, सो उसका हक था। फिर अज़ीम को बतलाया कि वह दयाल को मुसीबत में डालने के बाद छेदासिंह को मिलाकर उसके गोदाम में चोरी करवाने वाला है। उसमें भी अज़ीम का साझा रहेगा। चोरी करके रातोरात नावें लदवानी होंगी।

उसने यह भी बतलाया कि चोरी पाप नहीं है। दयाल की डाकेज़नी का जवाब है। अज़ीम को आगाह किया कि नूरुद्दीन को इन सब बातों की हवा भी न पहुँचने पाये। इसके बाद मोनाई ने अज़ीम और नूरुद्दीन की दोस्ती को भी नापसन्द किया—"उसका-तुम्हारा कौन साथ? वह उचक्का है; तुम सरीफ हो, बैपारी हो। काम निकाल लेना दूसरी बात है, मुदा लफंगों का साथ करने से बैपारी की साख उठ जाती है। क्या समझे!"

अज़ीम को उसने फिर से शीशे में उतार लिया। नया उत्साह देकर उसे विदा किया। मोनाई की पत्नी को अज़ीम पर विश्वास नहीं रहा था। उसके प्रति वह अपना क्रोध नहीं मिटा सकती।

मोनाई ने समझाया—"तू तो निरी पगली है। अरे, जो इस दम मिलता नहीं तो मैं ठंडा पड़ जाता। ये लोग नवाब साहब के पैसे पर गुंडागिरी करानेवाले रहे। हिन्दू-मुसलमान वाली चालें मेरे साथ भी चल रहे थे। दयाल का क्या है, बड़ा आदमी है, मगर मैं तो भिखारी हो जाता। अब इसको दम-पट्टी दे के साध लिया है। और वो चाल चली है कि सदा के लिए खटका ही मिट जायेगा। दयाल ने जो इत्ते-इत्ते हत्तियाचार मेरे ऊपर किये हैं, सो अब वह उसकी सज़ा पा जायेगा। जब वो फँस जायेगा, तब नूरू और अज़ीमा को भी अलग-अलग फाँस के मिट्टी में मिला दूँगा। जो नुकसान सहा है उसे ब्याज समेत वसूल कर लूँगा। भगवान

जी सदा सहाय रहें, कलकत्ते में महल चुनवाऊँगा। क्या समझती हो तुम! और तुम्हें तो गहनों से लाद दूँगा, मेरी लाड़ो। मोटर में बिठाय के कलकत्ते की सैर कराऊँगा तुम्हें। ज़रा इधर एक नज़र देख लो मेरी तरफ़। ऐ, तुम्हें मेरी कसम!"

बूढ़े मोनाई की तीसरी पत्नी कनखियों से उसकी तरफ़ देखकर मुस्कुरा दी।

तीसरी पत्नी का कौतूहल बड़े-बड़े सवाल करता था, जिसके आधार पर मोनाई के नये-नये सपने बनते थे—"बस गाँव में यह आखिरी बाज़ी जीत लेने के बाद गाँव का काला मुँह करके कलकत्ते चला जाऊँगा। वहीं रुज़गार फैलेगा! हम-तुम सेठ-सेठानी बनेंगे। नौकर-चाकर रहेंगे, मोटर रहेगी, कलकत्ते में बड़े-बड़े झंडे गाड़े जायेंगे। भगवान जी ने चाहा तो एक बार कलकत्ते के बड़े-बड़े धन्ना-सेठों में अपनी साख पुजवाय लेऊँगा। तुम समझती क्या हो, मेरी रानी! अरे, तुम्हें तो मैं सोने में मढ़वाय के अपनी तिजोरी में बैठाय दूँगा मेरी मैना!"

चाँदनी रात की रोमानी फिज़ा मरभुखों, मुर्दों के इस गाँव में सब तरफ़ से मायूस होकर मोनाई के आँगन में खिलखिला रही थी।

बाहर, चारों दिशाओं से कुत्तों के भौंकने की और सियारों की मनहूस आवाजें आ रही थीं। कहीं से हिस्टीरिया में चीखते हुए किसी इन्सान का दर्द रात के सन्नाटे को चीरता हुआ हवा में कँपकँपी पैदा कर देता था। वर्ना यों मुर्दों की बस्ती में तनखसोट खूँखार जानवर ही अपनी आवाज़ कर रहे थे।

मौत की आखिरी घड़ियों में, जब कि इन्सान शान्ति से दम तोड़ना चाहता है, कुत्ते और सियार उसे इस तरह मरने की मुहलत नहीं देते। जान निकलने के पहले ही कुत्तों के पैने दाँत शरीर की चीर-फाड़ शुरू कर देते हैं। दम के दम में आदमी लाश, और लाश से ठठरी में बदल जाता है।

बेनी काँपते और डगमगाते पैरों से चला आ रहा था। उसके हाथ में एक गंडासा है। उसकी नज़र एक लाश को खाते हुए कुत्तों के झुंड पर पड़ती है। कुत्तों को इस तरह पेट भरते हुए देखकर वह बर्दाश्त नहीं कर सकता। उसे कुत्तों पर गुस्सा आया। घर जाते-जाते वह लौट पड़ा। न तो कमज़ोर पैर काबू में थे और न दिमाग ही; रूहानी जोश में उसके पैरों में आँधियाँ और भूचाल बँध गये थे। गंडासा लिये हुए बेनी कुत्तों के मजमे पर झपटा। भरपूर हाथ पड़ा। एक का सिर साफ़ कट गया, दो-तीन जख्मी हुए और बाकी तमाम कुत्ते चिल्लाते हुए भाग गये।

अरसे से कुत्तों को इन्सान को मारने की आदत पड़ गयी थी, उनसे मार खाने की नहीं। कुत्ते फिर झपटे। एक की गर्दन पर पूरा वार बैठा, पर बेनी अपने ही ज़ोम में मुँह के बल लाश पर गिरा। किसी आदमी की अधखायी लाश थी। होंठों पर कच्चे माँस के एक लोथड़े ने बेनी को नया जायका महसूस कराया। वह अभी ठीक तरह से इस नये अनुभव को पहचान भी नहीं पाया कि कुत्तों ने उसकी टाँग पर हमला बोल दिया। बेनी बड़ी ज़ोर से चीख उठा। उसकी चीख में जो शक्ति अपना परिचय दे रही थी उसी ने उसे उठने का साहस दिया। दोनों

हाथ टेककर उसने अपने को उठाने की कोशिश की। एक हाथ उस अधखायी लाश के अन्दर तक घुस गया। हाथों में छीछड़े-छीछड़े लग गये, लेकिन बेनी को इसकी खबर न थी, कोई परवाह न थी। गंडासा उठाकर उसने पीछे उलटकर फेंका। कुत्ते भागे। बेनी लड़खड़ाता हुआ उठा। उसकी आँखों से खून बरस रहा था। उसका हाथ खून और छीछड़ों से सना हुआ था। उसके होंठों पर आदमी का खून लिपटा हुआ था।

बेनी किसी तरह अपने घर की तरफ़ चला।

बेनी का घर अभी भी बाकी था। सिर पर छप्पर न था, न सही, मगर चार दीवारें तो बाकी थीं। घर के दरवाज़े और बाँस-बल्लियाँ निकालकर वह बहुत पहले बेच चुका था, फिर भी उस घर के लिए उसे प्यार था। लोगों ने घरों में रहना छोड़ दिया था, मगर बेनी ने न छोड़ा। अपनी नव-विवाहिता पत्नी के साथ वह वहीं रहा।

अकाल शुरू होने के दो महीने पहले बेनी का विवाह हुआ था। वह अपनी पत्नी के सौन्दर्य पर मुग्ध था। उसकी पत्नी भी जी-जान से उसे चाहती थी। गाँव-भर में बेनी बंसी बजाने में अपना सानी नहीं रखता था। नवोढ़ा को इस पर अभिमान था। ब्याह की मेहंदी का रंग भी फीका नहीं पड़ा था कि दुनिया का रंग बदल गया। गाँव उजड़ने लगा। मृत्यु की विभीषिका सारे गाँव को निगलने लगी। शरीर की शक्ति क्रमशः क्षीण होने लगी। एक-दूसरे के प्रति अपने प्रगाढ़ प्रेम से अकाल-पीड़ित नव-दम्पती ने जीवन के लिए एक नयी प्रेरणा प्राप्त की। संसार से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर वे दोनों सबसे दूर अपने घर में ही रहने लगे। एक क्षण के लिए भी एक-दूसरे से अलग न होते थे। लेकिन आज चार रोज़ से बेनी की पत्नी का बोल बन्द हो गया था। हड्डियों के ढाँचे में एक धुकधुकी-सी चला करती है जिसे देख-देखकर बेनी की व्यग्रता बढ़ती जाती है। कल तो उसकी पत्नी ने आँखें भी नहीं खोलीं। पत्नी के बिछोह की कल्पना बेनी को जीने नहीं देती। कल से वह घर से भागा-भागा फिर रहा है। घर आता है तो पत्नी की मृत्यु को निकट आते देखकर भय से पागल होने लगता है। बाहर की दुनिया उसे और भी डरावनी नज़र आने लगती है।

इस वक्त वह परेशानी की हालत में घर से बाहर चला आया था। उसके हाथ-पैरों में ज़रा भी दम नहीं था। मगर एक दर्द, जो भूख की पीड़ा से भी ज़्यादा तेज़ और तीखा था, उसे अपनी शक्ति देकर चला रहा था। बेहोशी की हालत में लड़खड़ाकर चलते हुए शराबी की तरह वह निरुद्देश्य-सा बहका चला जा रहा था। मोनाई का मन्दिर सामने था। मन्दिर के पास ही एक ताज़ी कटी हुई गाय पड़ी थी। खून से धरती लाल थी। सिर अलग, धड़ अलग। ज़रा दूर, मन्दिर की दीवार के नीचे ही एक गंडासा पड़ा था। खून देखकर बहके हुए बेनी की निगाहें जमीं। वह ज़रा देर तक खड़ा-खड़ा देखता रहा। पैर इतनी देर तक खड़े रहने के कारण जवाब देने लगे। बेनी का ध्यान फिर बँटा। उसकी घर चलने की इच्छा हुई। चलते-चलते उसने यों ही गंडासा उठा लिया था और उसमें लगे हुए खून पर अपनी आँखें जमाकर वह चलने लगा था, तभी उसकी कुत्तों से मुठभेड़ हुई।

बेनी घर पहुँचा। उसकी पत्नी की साँस अभी माँस की झिल्ली में धड़कती हुई दिखायी दे रही थी। बेनी उसके सिरहाने बैठ गया। वह पथरा गया था। चुपचाप बैठा-बैठा अपनी पत्नी की तरफ़ देखता रहा। दिमाग बड़ी तेज़ी से दौड़ रहा था—"यह मर जायेगी, मुझसे छूट जायेगी, सदा के लिए बिछड़ जायेगी, फिर कुत्ते खा जायेंगे। नहीं, मैं इसे ऐसी जगह छिपाकर रखूँगा जहाँ कुत्ते भी न देख पायेंगे। मैं इसे अपने कलेजे में छिपाकर रखूँगा।"

बेनी की आँखें चमकने लगीं। नयी स्फूर्ति जागने लगी। उत्साह मानुषिकता की सीमाओं को लाँघकर प्रबल होने लगा। उसे इस खयाल से खुशी होने लगी कि यह अगर मुझमें समा जाये तो फिर कभी दूर न हो। यह अगर कलेजे में समा जाये तो फिर कुत्ते न खा सकेंगे। मगर यों तो कलेजे में समा नहीं सकती। और अगर नहीं समा सकती तो ज़रूर मर जायेगी और कुत्ते खा जायेंगे।

बेनी के मस्तिष्क पर यह समस्या सवार हो गयी कि कैसे वह अपनी पत्नी को मरने और कुत्तों द्वारा खाये जाने से बचाये। फौरन ही उसका हल भी सूझ गया। इसके टुकड़े-टुकड़े करके इसे कलेजे में छिपा लिया जाये, बस यह बच जायेगी। मौत इसे देख नहीं पायेगी, कुत्ते इसे खा नहीं सकेंगे। यह खयाल बेनी को स्फूर्ति और प्रसन्नता देने लगा। वह तेज़ी से उठा। उसने अपना गंडासा लिया। साँस उसकी पत्नी की छाती में बड़ी धीमी चल रही थी। बेनी ने सोचा, जल्दी करना चाहिए। मरने से पहले ही इसे काटकर कलेजे में रख लूँ, नहीं तो यह मर जायेगी।

गंडासे का पूरा वार गले पर पड़ा। अपने अंधाधुंध जोश में वह लाश को बराबर काटता ही गया, यहाँ तक कि थककर गिर पड़ा। माँस के टुकड़े उसकी मुट्ठी में आये। बेनी ने धीरे से हाथ उठाकर उन्हें देखा। आँखों में फिर नयी चमक आयी। थोड़ी देर पहले बाहर कुत्तों को मारते वक्त माँस के छीछड़े उसके होंठों से लगे थे। उसे एक नया अनुभव मिला था। अपने हाथ में पत्नी के शरीर के टुकड़े देखकर बेनी को नया उत्साह आया। वह अपने हाथ को मुँह के करीब लाता गया। आँखों की चमक बराबर बढ़ रही थी। बेनी ने उन टुकड़ों को अपने मुँह में भर लिया और चबाने लगा।

भूख का पागल इन्सान अपने को मारकर भी जीवन की भूलभुलैया में भटकने की इच्छा करता था। भूख से लड़ते-लड़ते वह क्रमशः भूख, पीड़ा, शरीर, बुद्धि और मृत्यु की चेतना से परे जाकर जीवन से लड़ रहा था। मनुष्य का यह संघर्ष उसके लिए अर्थहीन हो चला था। उन्माद से भरे हुए कृत्य निरन्तर बढ़ते चले जा रहे थे।

मोनाई के मन्दिर में पुजारी जी रहते हैं। उनके चार बच्चे हैं, विधवा बहन है, पत्नी है, और ब्राह्मण देवता अपने बड़े परिवार को लेकर भूख से लड़ रहे हैं।

ब्रह्मभोज के बाद से मोनाई ने मन्दिर के भोग आदि की व्यवस्था में भाग नहीं लिया। मोनाई तो उसी रात बाहर चला गया था। उसके तीसरे रोज़ मोनाई की पत्नी ने तीस हज़ार रुपये खोये। उसके बाद जब पुजारी जी गये तो उसने लाखों गालियाँ भगवान को सुनायीं;

देवी-देवता और बामन-ठाकुर को जी-भर कोसा; और फूटी कौड़ी देने से भी इनकार कर दिया। भगवान भूखे मरने लगे। उनके पुजारी का परिवार भी भूखा मरने लगा। पहले अपने बर्तन-भांडे बेचे, फिर ठाकुर जी की पूजा के बर्तन बेच दिये। पीतल के ठाकुरों का कुनबा भी दूकानदार के घर पहुँच गया। मन्दिर में बेचने लायक अब कोई सामान न था। घर के सात प्राणी, पत्थर के राधा-कृष्ण और मन्दिर की गाय तथा उसका बछड़ा भूख से छटपटाकर दिन और रातें गुज़ार रहे थे। मोनाई आ भी गया, मगर भोग का इंतज़ाम फिर भी न हुआ। मोनाई अज़ीम और अनाथालय के चक्कर में पड़ गया। पुजारी एक बार उसके पास जाकर गिड़गिड़ाया। मोनाई ने प्रस्ताव किया—"औरतों को अनाथालय में भेज दो। और भगवान को भोग की क्या ज़रूरत है। वो तो भाव के भूखे हैं। उनके लाखों भगत यों रोज़ ही इस तरह भूखे मर रहे हैं। वे भला भोजन करेंगे?"

सबकी भूख सहन हो जाती थी, मगर अपने चारों बच्चों और गाय के बछड़े को भूख से तड़पता देखकर पुजारी त्रस्त हो उठता था। दिन-पर-दिन बच्चे सूखते जाते थे। गाँव के दूसरे बच्चों की तरह उसके बच्चे भी दिन-पर-दिन मौत के निवाले बनते चले जा रहे थे। हारकर एक दिन उसने मोनाई के प्रस्ताव को स्वीकार करना चाहा। अपनी बहन और पत्नी को मोनाई के अनाथालय में भेजकर चार मुट्ठी चावल पाने की इच्छा की। उस दिन पति-पत्नी में भयंकर कहा-सुनी हुई। पुजारी हठ करके मोनाई के आदमियों को लाने गया। लौटकर देखा, कोठरी में दो नंगी लाशें टँगी थीं। पुजारी की पत्नी तथा बहन ने अनाथालय के भय से अपने तन की फटी धोतियाँ उतारकर फाँसी लगा ली थी। अबोध बच्चे आश्चर्य से यह तमाशा देख रहे थे।

पुजारी ने लौटकर इस दृश्य को देखा। जीने की समस्या हल होने की बजाय और भी उलझ गयी। पत्नी और बहिन को खोकर पुजारी पश्चाताप की अग्नि में जलने लगा। बच्चों को बचाने के लिए वह प्रतिक्षण चिन्ता से पीड़ित रहने लगा। समस्या कहीं भी हल होती न दिखायी देती थी और बच्चे दिन-पर-दिन मृत्यु के निकट पहुँचते जा रहे थे। अपनी भूख की पीड़ा को पुजारी बच्चों की भूख में मिलाकर खो देता था; और इस खो देने के कारण उसकी पीड़ा प्रतिपल दुगनी होती जा रही थी।

पुजारी त्रस्त हो उठा। एक दिन विचार आया, अपने बचाव के लिए हत्या करना पाप नहीं। विचार की क्रिया-प्रतिक्रिया जल्दी-जल्दी उसके मस्तिष्क को उलझाने लगी। उसकी नज़र सामने बँधी गऊ और उसके बछड़े पर गयी। युगों से बँधे मन को, ब्राह्मणत्व और हिन्दुत्व की चेतना को पुजारी की भूख झटका देकर तोड़ देना चाहती थी। संस्कारों के मोह को वह भूख की तलवार से काट देना चाहता था, परन्तु संस्कार भी कुछ कम प्रबल न थे। पत्नी और बहिन की मृत्यु, उसके हिन्दू हृदय में गोमाता का स्थान और उसके पूजा करने के पेशे ने इस भूख से लड़ते हुए इन्सान को बुरी तरह जकड़ रखा था। उसे किसी करवट भी चैन न मिलता था। पुजारी हार-हार जाता था। पाप की भावना से उसका मन बार-बार थपेड़े

खाकर तड़प उठा। राधाकृष्ण की मूर्ति के सामने खड़े होकर वह अपने को एकाग्र करना चाहता था, वह इस पाप की भावना को अपने मन से निकाल देना चाहता था—"तुम्हीं बतलाओ गोपाल, क्या यह पाप है? बच्चे फिर खायेंगे क्या?"

गोपाल चुप थे। उनका मुस्कुराता हुआ चेहरा वैसा का वैसा था।

पुजारी खीझ उठा—"तुम पत्थर के हो। पीतल के मोल भी तो नहीं बिक सकते। किसी काम के नहीं, किसी अर्थ के नहीं।"

भगवान का पुजारी अपना सम्बन्ध-विच्छेद करने के लिए भगवान से ही विद्रोह करना चाहता था। वह अपने साथ ज़बर्दस्ती कर रहा था। हत्या के लिए वह अपने विचारों का समर्थन चाहता था—न्याय चाहता था, जो उसे स्वयं अपने से ही मिल रहा था।

विद्रोह की भावना प्रतिपल ज़ोर पकड़ रही थी, क्योंकि संस्कारों की चेतना एक पल के लिए भी लुप्त नहीं हो रही थी। दिन-भर इसी संघर्ष में बीत गया। क्षण में गऊ वाले दालान की तरफ़ बढ़ता, फिर बाहर चला जाता। कभी बच्चों को ज़ोर से छाती से चिपटा लेता, फिर गुस्सा चढ़ता। कभी भगवान की कोठरी में चला जाता, हाथ जोड़ता, प्रार्थना करता, रोता-गिड़गिड़ाता, और फिर गालियाँ देने लगता और आँगन में आकर टहलने लगता। सारा दिन चक्कर काटते बीता। पुजारी के ब्राह्मणत्व, और हिन्दुत्व के संस्कारों ने हार न मानी, न मानी। उसका क्रोध बढ़ता गया। ठाकुर की कोठरी में जाकर उसने पहले तो भगवान के चरणों में अपना सिर फोड़ना शुरू किया और फिर भगवान को खींचकर पीटना शुरू किया।

इस बार उसने ज़बर्दस्त विद्रोह किया। अटूट हठ के साथ वह गाय के दालान में गया। भूख से दुबली गाय रस्सी से बँधी बैठी थी। भूख से बिलबिलाता हुआ बेजान बछड़ा आँखें बन्द किये हुए पड़ा था। कुट्टी काटने का गंडासा ताक पर रखा था। पुजारी गाय की तरफ़ गया। उधर से हिम्मत टूटी। फिर बछड़े की तरफ़ आया। बछड़े की तरफ़ जाते उसे अपने बच्चों का ध्यान आया। पुजारी का हठ फिर टूटने लगा। लेकिन वह नहीं चाहता था कि उसका हठ टूट जाये, उसके बच्चे भूखे मर जायें। उसने तेज़ी के साथ गंडासा उतारा, बछड़े को खोलने की हिम्मत फिर भी न हुई। उसने गाय की रस्सी को खोला और घसीटने लगा। गाय रंभाती हुई उठी। गाय बराबर रंभाने लगी। वह दयनीय आँखों से पुजारी को देख रही थी। शारीरिक कमज़ोरी, मन की निर्बलता और हठ पुजारी को तोड़े डाल रही थी और इसी हार पर विजय पाने के लिए वह ज़बर्दस्ती गाय को घसीटता हुआ मन्दिर के बाहर ले चला। मन्दिर में गो-वध करने की हिम्मत उसे नहीं हो रही थी।

उन्माद में पुजारी गाय को घसीटता हुआ ले जा रहा था। गाय कमज़ोर थी। मृत्यु का भय जानवर के दिल को दबोचकर उसके पैरों को और भी कमज़ोर बना रहा था। किसी तरह दस कदम चलकर गाय ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। वह गिर पड़ी। पुजारी उसे गाँव से बाहर ले जाना चाहता था। गाय को मारकर उसके माँस से अपने बच्चों का पेट भरने का निश्चय यद्यपि वह कर चुका था, फिर भी मन की गहराई में सब कुछ अनिश्चित था। केवल

संस्कार अपनी निश्चल गति से जागरूक थे। गाय ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। इस इनकार में पुजारी की हार थी। यह हार पुजारी को कतई नापसन्द थी। उसे इससे घृणा थी। उसे गाय से घृणा हो गयी। क्रोध आया। उन्माद जागा। उसने अपनी पूरी शक्ति लगाकर ज़मीन पर बैठी हुई गाय की गर्दन पर वार किया। गाय ज़ोर से चीख पड़ी। खून के फौवारे छूट निकले। वह खून, मरती हुई गाय की छटपटाहट, दर्द-भरी आँखें पुजारी पर जादू का-सा असर करने लगीं। खून बहते-बहते ज़मीन पर जमने लगा। गाय की छटपटाहट बन्द हो गयी। ब्राह्मण पुजारी के संस्कार उग्र रूप से मन को तोड़ने लगे। पुजारी ने गंडासा छोड़ दिया। उसकी इच्छा ज़ोर से चीख पड़ने की हुई, परन्तु वह चीख न सका। उन्माद चला गया, ज्ञान फिर जागा। पुजारी की आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह निकली। ज्ञान की यह चेतना उन्माद से अधिक पीड़ा देने वाली थी—"माता, मुझे क्षमा कर। भगवान मुझे क्षमा कर।" फिर उसके मन में विचार आया—"नहीं, पाप क्षमा नहीं किया जाता। उसका प्रायश्चित करना पड़ता है। मैं प्रायश्चित करूँगा। इस गंडासे से अपनी गर्दन काटूँगा।" पुजारी ने फिर गंडासा उठा लिया। सहसा उसके मन में विचार आया—"बच्चों का क्या होगा?" और उसने निश्चय किया कि बच्चों को मारकर स्वयं अपना अन्त कर देगा। मरी हुई गौमाता के चरण छूकर वह गंडासा लेकर मन्दिर की ओर चला। प्रायश्चित की पवित्र भावना उसके मन को शान्ति दे रही थी, उसे दृढ़ बना रही थी।

कैसे वह अपने हाथ से अपने बच्चों को मारेगा? कैसे गंडासा उठेगा? मन कमज़ोर पड़ने के पहले ही पुजारी का निश्चय दृढ़तर होता जा रहा था। मन्दिर के दरवाज़े पर पहुँचकर पुजारी के पैर फिर ठिठके। वह फिर कमज़ोर पड़ने लगे। गंडासा लिये मन्दिर के बाहर टहलने लगा, "यदि मैं स्वयं प्रायश्चित न करूँगा तो ईश्वर दंड देकर मुझसे प्रायश्चित करायेंगे।"

संस्कारी, आत्माभिमानी ब्राह्मण को दंड भयानक और साथ ही अपमानजनक प्रतीत हो रहा था। पेट के लिए उसकी पत्नी और बहिन को वेश्या बनाने का प्रस्ताव ही उन दोनों के आत्मघात का कारण बना। ब्राह्मण पुजारी का रोम-रोम इस महादंड की भयंकर ज्वाला से जल रहा था। प्रायश्चित करना ही उचित है। किन्तु अपने बच्चों को गंडासे से वह कैसे मार सकेगा? गाय की हत्या का दृश्य उसे कायर बना रहा था और वह कायर नहीं बनना चाहता था।

सहसा उसका ध्यान कनेर की झाड़ी की तरफ़ गया। ठाकुर की पूजा के लिए मन्दिर के बाहर कुछ फूलों के झाड़ लगा रखे थे। इधर अरसे से देखभाल छूट जाने के कारण क्यारियाँ सूख चुकी थीं। कनेर को देखते ही सहसा पुजारी का ध्यान आया कि इसकी जड़ों में विष होता है। विष द्वारा अपने बच्चों तथा अपने-आपको मारना उसे सरल प्रतीत हुआ। पुजारी प्रसन्न हुआ। उसने भगवान को धन्यवाद दिया। उसमें नया उत्साह पैदा हुआ। गंडासे से वह कनेर की छोटी-सी झाड़ी को काटकर उनकी जड़ें खोदने लगा। हाथों की शक्ति जवाब देने लगी थी, परन्तु प्रायश्चित का उत्साह उसे बल दे रहा था। उसने सारी जड़ें बटोर लीं। क्यारियों

की सूखी हुईं टहनियाँ भी बटोरकर वह मन्दिर में गया। गंडासा बाहर ही पड़ा रहा।

चूल्हा बहुत दिनों से ठंडा पड़ा रहा था। पेड़ की टहनियाँ पुजारी ने चूल्हे में रख दीं। ताक से दियासलाई की पेटी उतारी। आठ-दस तीलियाँ अभी भी बची थीं। पुजारी ने चूल्हा सुलगाया। मिट्टी का छोटा-सा घड़ा पानी से आधा भरा था। पुजारी ने उसे चूल्हे पर रख दिया। जड़ें उसी में डालकर पुजारी अति शान्त भाव से पकते हुए काढ़े की तरफ़ देखने लगा। सूखी टहनियाँ जल्दी-जल्दी जल रही थीं। पुजारी चूल्हें में बराबर नयी टहनियाँ झोंकता जाता था।

काढ़ा पककर तैयार हो गया। पुजारी पहले से भी अधिक शान्त हो गया। उसकी दृढ़ता और भी बढ़ गयी थी। उसने घड़ा उठाया। ठाकुर जी की कोठरी की तरफ़ बढ़ा। ठाकुर जी के सामने घड़ा रखकर उसने हाथ जोड़े—"गोपाल, बहुत दिनों से तुम्हारा भोग नहीं लगाया मैंने। आज सब दिन की कसर पूरी हो जायेगी।"

उसने राधा-कृष्ण के चरणों पर वह घड़ा रख दिया और उनके होंठों पर थोड़ा-सा जहर लगा दिया।

फिर बच्चों को जगाकर लाया। सबसे छोटे को गोद में उठाया। खाने-पीने के नाम पर कोई चीज़ आज उन्हें बहुत दिनों के बाद मिल रही थी। बच्चे बहुत खुश हो रहे थे, बेताब हो रहे थे।

बाप का दिल फिर डगमगाने लगा। पुजारी ने अपने को साधा। घड़े पर ढँके हुए मिट्टी के सकोरे में कनेर का काढ़ा भरकर, अपनी गोद में बैठे हुए बच्चे को उसने अपने हाथ से ज़हर पिलाना शुरू किया। बच्चा बड़े सन्तोष से ज़हर पी रहा था। बाप की आँखों में आँसू छलछला आये। पेट-भर चारों बच्चों ने ज़हर पिया। काढ़ा खत्म होने लगा। वह खुद अपने लिए भी तो चाहता था। उसका अपना भी स्वार्थ तो था। उसने ज़बर्दस्ती बच्चों को पीने से रोक दिया।

इतने में छोटा बच्चा पेट पकड़कर रोने लगा। ज़हर धीरे-धीरे सब बच्चों पर असर कर रहा था। बाप चुपचाप देखता रहा। बेटे उसकी आँखों के आगे मर रहे थे। वे सदा के लिए सो गये। पुजारी भी सदा के लिए सो जाना चाहता था। पुजारी ने घड़े का मुँह तोड़ा, जिससे पीने में आसानी हो। टूटा घड़ा हाथ में उठ आया। भगवान के चरणों में प्रणाम कर पीना ही चाहता था कि गाय का बछड़ा काँपती हुई आवाज़ में रंभा उठा।

पुजारी ठिठक गया। उसे चिन्ता होने लगी। तड़प-तड़पकर मरेगा बिचारा। काढ़ा बहुत थोड़ा है, नहीं तो उसे भी पिला देता। फिर उसे ध्यान आया। अपने स्वार्थ के लिए एक निरीह प्राणी को कष्ट देना बहुत बड़ा पाप है। जिसकी माँ को मारकर वह इस समय प्रायश्चित करने बैठा है उसको इस तरह संसार में सिसक-सिसककर मरने के लिए छोड़ जाने का क्या अधिकार है। अपने बच्चों के लिए उसे चिन्ता थी। क्या वह बच्चा नहीं है?

स्वार्थ और परमार्थ का संघर्ष पुजारी को अपार कष्ट दे रहा था। वह मरना चाहता था।

उसे मरने की प्रबल इच्छा थी। ज़हर इस समय उसके लिए अमृत था। जीवन विष से भी अधिक बुरा था। वह जीवन नहीं चाहता था। पत्नी, बहन, अपने बच्चों और गऊ का हत्यारा ब्राह्मण पुजारी ज़िन्दा नहीं रहना चाहता था।

गाय का बछड़ा अपनी काँपती हुई आवाज़ में रंभा रहा था।

स्वार्थ और परमार्थ का घोर संघर्ष चला। पुजारी कठोर बना—"इस बच्चे को सिसक-सिसककर मरने के लिए छोड़ने का मुझे क्या अधिकार है? पाप मैंने किया है। सिसक-सिसककर जियूं तो मैं! इतने दिन जियूं कि मेरा जीवन पहाड़ बन जाये! मेरे जैसे हत्यारे के लिए यही सबसे बड़ा प्रायश्चित होगा!"

गाय के बछड़े को कष्टमय जीवन से मुक्त करने के लिए पुजारी आगे बढ़ा।

पुजारी ने अपना प्रायश्चित पूरा किया, परन्तु पत्नी और बहन का आत्मघात, गो-हत्या, बच्चों की लाश और गाय के बछड़े का तड़पना पुजारी के प्रायश्चित को उन्माद से न बचा सका। अपने-आपसे भयभीत होकर, चीखकर वह भागा—बेतहाशा भागा।

8

कनक को लकड़ियों में अच्छी तरह सुला भी न पाये थे कि गिद्धों के झुंड ने लाश पर धावा बोल दिया। शिबू और पांचू को अपनी जान के लिए दौड़कर अलग होना पड़ा।

आज घर में मौत का पहला दिन था। सवेरे शिबू की गोदवाली मुर्दा दम लड़की चुन्नी ने भूख की तड़प में आखिरी ज़ोर लगाकर माँ की छाती पर मुँह मारा। उसी में दाँती बैठ गयी। माँ की छाती से दूध की बजाय खून निकल आया और चुन्नी का दम निकल गया।

पन्द्रह रोज़ से घर में भूख का राज था। सबसे छोटी बहन कनक को छः रोज़ से जूड़ी आ गयी थी। चुन्नी की मौत देखकर वह रोते-रोते बेहोश हो गयी थी।

चिर प्रत्याशित मृत्यु इस घर से भी अपना हक लेने के लिए आ पहुँची थी।

शिबू और पांचू चुन्नी को दफनाने के लिए गये। लौटकर आये तब तक कनक को उठाने की बारी आ गयी थी।

शिबू आज सवेरे से गम्भीर हो गया है। चुन्नी मरी, घर में सभी की आँखें पिघलने लगीं। बाबा तो जनम के कठोर हैं, मगर शिबू अपने जीवन में पहली ही बार आज मौन हुआ है और

आँखें खुश्क रही हैं।

रास्ते-भर शिबू-पांचू चुप रहे। बच्ची की लाश को अपने हाथों में लिये हुए शिबू मृत्यु को अति निकट से अनुभव कर रहा था।

बचपन से उसकी इच्छाओं की बेल सदा सहारा लेकर बढ़ी है। अपनी अकर्मण्यता की पालकी दूसरों के कन्धों पर रखकर उसका दर्प आगे बढ़ना चाहता था। हठ से वह अपने दर्प की रक्षा करता था। उम्र बढ़ती गयी, बुद्धि न बढ़ी। ब्राह्मणत्व, कुलीनता, पिता और छोटे भाई की प्रतिष्ठा का सहारा लेकर वह बड़ा बन नहीं सकता, इसे वह अच्छी तरह समझ गया। जुआ खेलकर या लीडर बनकर एक ही दाँव में प्रतिष्ठा को जीत लेने की कोशिश में वह बराबर लगा रहा, मगर कामयाबी हासिल न हुई। हठ चिढ़ में बदलती थी, चिढ़ गुस्से का रूप लेती थी और गुस्सा उसे उच्छृंखल बनाता था। उच्छृंखलता के आचरण में वह अपनी लघुता को ढँक लेना चाहता था। स्वयं अपने से भी वह अपनी लघुता को छिपा लेना चाहता था; वह कठोर बन गया था।

अकाल ने पर्दाफाश कर दिया। अकाल उसकी इच्छा के खिलाफ़ था। हठ, चिढ़, गुस्सा और उच्छृंखलता कुछ भी काम न आ सकी। बच्ची की मृत्यु ने आज उसे पूरी तौर से हरा दिया था। अधिकाधिक कठोर बनकर शिबू अपनी पराजय को भी जीत रहा था। वह पत्थर हो गया था।

बच्ची को दफनाकर शिबू और पांचू घर लौटे। दोनों भाई मौन थे। घर के पास आये, रोने की आवाज़ें सुनायी दीं। अन्दर गये, देखा, कनक की लाश पड़ी थी। पांचू हिल गया। शिबू वैसा ही कठोर बना रहा।

पार्वती माँ सबसे ज़्यादा रो रही थीं; उनका रोना देखकर आँखों में आँसू आते थे।

सास-ससुर—बड़ों की मौज़ूदगी में अपनी बच्ची के लिए रोना कुलीनों के अदब के खिलाफ़ माना जाता है। शिबू की बहू अपनी बच्ची से बिछड़ने का दर्द भी ननद की मौत पर उँडेल देना चाहती थी। मगर किसी में खुलकर रोने की शक्ति नहीं थी। शारीरिक कमज़ोरी और क्रमशः निकट आते हुए अपने अन्त का भय, आँसुओं को दबोच लेता था।

पास-पड़ोसी कोई नहीं आया। आबरू के ध्वस्त किले में कुलीनता मौत से छिपकर बैठ रही थी।

टिकटी के लिए चार बाँस नहीं जुड़ते थे। बेबसी पर शर्म को कुर्बान कर फटी झोली में कनक की लाश को डाल दोनों भाई उसे फूँकने ले चले।

बोझ सँभाले न सँभलता था। दोनों भाई उजड़ी हुई आबादी से परे जाकर एक टूटे और उजड़े हुए घर से थोड़ा-सा फूँस और दो बाँस पाकर किसी तरह कनक को जलाने की सोच रहे थे। इतनी लकड़ियों में लाश का जलना असम्भव था। लेकिन असम्भव को सम्भव बनाने की बेबसी से भरी हुई ज़िद से अपनी बहन की अन्तिम धार्मिक प्रेतक्रिया करना चाहते थे। दो-चार लग्गे-लकड़ियाँ और बटोरें मिल गयीं।

गिद्ध आसमान में मँड़रा रहे थे। शिबू चिथड़े से ढँकी हुई लाश के पास खड़ा था और पांचू उन दस-पाँच लकड़ियों से चिता बनाने का प्रयास कर रहा था।

चिथड़े से निकालकर लाश को लकड़ियों पर रखा। हाथों में दम न था। मन बेहद भारी हो रहा था। दोनों भाई चुप थे। लाश रखकर पांचू उस पर फूँस डाल रहा था; शिबू ने दियासलाई की डिबिया निकाली। गिद्धों का झुंड मँड़राते हुए नीचे उतरने लगा। पांचू भयभीत हो उठा। आग लगाने की जल्दी थी। लेकिन दियासलाई सुलग न पायी कि बड़े-बड़े पंखों की हवा सिर पर लगी। गिद्धों का झुंड झपट्टा मारकर नीचे उतरा। शिबू-पांचू उनके वार से बचने के लिए तेज़ी से पीछे हट गये।

पांचू ने फिर मुड़कर भी न देखा। उसकी हिम्मत न हुई। अनेक शवों की तरह उसकी बहन का शव भी थोड़ी देर में अपरिचित कंकाल बनकर शेष रह जायेगा, यह वह सोचना भी नहीं चाहता था। सत्य मजबूरी बनकर उसे पीड़ा दे रहा था। पांचू अत्यधिक विचलित हो उठा।

शिबू ने एक बार पीछे घूमकर देखा, गिद्धों के झुंड के सिवाय उसे कुछ और न दिखायी दिया। बड़े-बड़े पर फैलाकर गिद्ध चारों ओर बैठे थे और चोचें चल रही थीं। कुछ गिद्ध आसमान में भी उड़ रहे थे। अपनी बहन की लाश को इस तरह पक्षिराज के आहार का साधन बनते देखकर भी शिबू की आँखों से एक बूँद जल न टपका। शिबू सिर झुकाकर चुपचाप आगे की ओर बढ़ा।

गो-हत्या की बात, धीरे-धीरे, बचे हुए गाँव की बात हो गयी थी। मृत्यु से लड़ता हुआ उन्मादी मनुष्य एक क्षण के लिए इस खबर से उलझा भी था। अब तक इस गाँव के प्राणी हर तरह से तो मरे थे, किन्तु हथियार की मदद से किसी का खून किया गया हो, ऐसी कोई घटना नहीं हुई थी। गऊ का मारा जाना मनुष्य के लिए उस समय विशेष महत्त्व की घटना न थी, खाली मोनाई ही इस कांड को लेकर ज़रूरत से ज़्यादा शोर मचा रहा था। बचे-खुचे गाँव के आबरूदार भद्र लोग भी (अपने ऊपर पर्दा डालने के लिए) इस गऊ के मारे जाने की घटना को ज़्यादा अहमियत दे रहे थे।

आबरूदारों का बुरा हाल था। आबरू नाम की कोई चीज़ इस वक्त तक उनके साथ नहीं रह गयी थी। उनकी बहू-बेटियाँ भी खुले आम धर्मशालाओं और अनाथालयों में भेजी जाने लगी थीं। हरएक, हरएक के घर का राज़ अच्छी तरह से जानता था; फिर भी आबरू शब्द की रक्षा ज़बान से बराबर की जा रही थी। हरएक के घर में ही एक-आध-दो मौतें भी हो चुकी थीं। श्राद्धादि प्रेत-कर्म करना हरएक के लिए असम्भव हो चुका था, इसलिए जो घर में मर जाता उसके लिए यह कह दिया जाता कि वह 'परदेस' गया है। 'परदेस' और 'धर्मशाले' का मतलब हरएक आबरूदार जानता था। अपनी औरतों-बेटियों को अज़ीम और मोनाई के हाथों बेचकर जो चावल पाते थे, उसे वे सौ रुपये मन के हिसाब से खरीदा हुआ बताते। आबरू जाये तो जाये, मगर आबरू का खयाल दिल से न जाता था। मन्दिर के सामने ही

कटी हुई गाय को देखकर आबरूदार हिन्दू धर्म की याद करने लगा। मोनाई के साथ-साथ मन्दिर के अन्दर जाकर पुजारी के चारों बच्चों और गाय के बछड़े को मरा हुआ देखा। सबके मुँह से निकले हुए नीले झाग देखकर लोगों ने घटना को समझ लिया। हर आबरूदार को यह मौत बहुत अच्छी लगी। ज़हर खाकर आबरू बचा लेना लोगों को महान आदर्श का सार जँचा। उनकी निगाह में ज़हर की इज़्ज़त बढ़ गयी। गो-हत्या का तज़किरा दबने लगा था। ज़हर की ख्वाहिश हरएक को होने लगी थी।

आज मृत्यु से अधिक आत्मीयता हो जाने के कारण पांचू विचलित हो उठा था। मृत्यु पर वह झुंझला रहा था। क्या इस देश में एक भी आदमी ज़िन्दा न बचेगा? क्या पृथ्वी से मनुष्य जाति ही उठ जायेगी? आज गाँवों में है, कल शहरों में मौत फैलेगी। एक दिन सारा देश मानवविहीन हो जायेगा।

पांचू की कल्पना क्रमशः सजीव होने लगी। उजड़े हुए गाँव, उजड़े हुए नगर, उजड़ी हुई दुनिया उसकी कल्पना के रंगों से भरी जाने लगी। थोड़े-से लोग, जो कि अमीर कहलाते हैं, बच जायेंगे। मगर वे भी कब तक बचे रहेंगे? जब अन्न पैदा करनेवाला ही न बचेगा तो खानेवाला क्या खाकर जीवित रहेगा? रुपया, सोना, चाँदी और जवाहरात को क्या दाँतों से चबाया जा सकेगा। मोटरों और ऊँचे-ऊँचे महलों से क्या पेट का कभी न भरनेवाला गड्ढा भर पायेगा? नहीं। वे भी एक दिन मरेंगे। उन्हें भी एक दिन मरना ही होगा। बड़े समाज को अपने स्वार्थ के लिए मारकर छोटा समाज भी जीवित नहीं रह सकता। स्वार्थ की व्यक्तिगत संज्ञा ही गलत है। हर आदमी स्वार्थी होना चाहता है। लेकिन असलियत यह है कि वह अपने स्वार्थ को पहचानता नहीं। व्यक्ति का स्वार्थ समाज का ही स्वार्थ है। जब समाज ही न रहेगा तो व्यक्ति कैसे जीवित बचेगा।

पांचू की कल्पना अपने गाँव से लेकर कलकत्ते तक के विनाश का दृश्य देख रही थी। और कलकत्ते तक ही नहीं, उसकी कल्पना सारे विश्व को मानव-शून्य देख रही थी। वह बम, तोपें, टैंक, हवाई जहाज़, बड़ी-बड़ी राजधानियाँ, ऊँचे-ऊँचे महल, मोटरें, ट्रेनें, रेडियो, टेलीफ़ोन और ज्ञान-विज्ञान की सब चीज़ें मानव की असफलता का चिह्न बनकर शेष रह जायेंगी, घरों में कुत्ते लौटेंगे। दुनिया में जानवर ही बच जायेंगे। आदमियों की ठठरियाँ ही उनकी याद दिलाने के लिए बच रहेंगी।

मानव का एकमात्र प्रतिनिधि बनकर अपने कल्पना-लोक में घूमता हुआ पांचू दुनिया को इसी तरह से देख रहा था। घर की दो मौतों ने उसके विचारों की गति और भी तीव्र कर दी थी। उसे एक-एक करके सब मौतें देखनी होंगी, यह बात वह अपने ऊपर संयम करके सोच रहा था। माँ, बाबा, भाई, पत्नी, भावज, तुलसी, दीनू, परेश—दुनिया की हर चीज़ वह इसी तरह से जी भरकर देखने लगा, जैसे अब वे सदा के लिए उसकी आँखों से ओझल हो जायेंगी।

शिबू को सवेरे से इतना गम्भीर और मौन देखकर पांचू का दिल घबरा रहा था। वह

जानता है कि उसके भाई का हृदय बड़ा कोमल है। शिबू की बड़ी-से-बड़ी ज़्यादतियों के बावजूद भी वह उसे बहुत प्यार करता था। शिबू हमेशा ज़रूरत से ज़्यादा बोलता, शेखी बघारता, चीखता-चिल्लाता, और जल्दी ही हँसने या रो पड़ने का आदी था। पांचू उस रूप में शिबू को देखने का आदी था। शिबू की यह गम्भीरता उसे उसके स्वभाव के विपरीत लग रही थी। उसे डर था, दादा के दिल को ज़बर्दस्त चोट पहुँची है। कहीं कुछ हो न जाये।

मृत्यु आज घर से दो प्राणी कम कर गयी। दीनू और परेश भी किसी वक्त जा सकते हैं। उन दोनों के हाथ-पैरों में सूजन आ गयी थी। बौदी (शिबू की बहू) पहले से ही दुबली थी, अब तो कंकाल-मात्र ही रह गयी थी। मंगला कितनी फीकी पड़ गयी है बेचारी! परन्तु उसकी बड़ी-बड़ी मदभरी आँखों में अब भी चमक है। आज भी उसके होंठों पर मुस्कुराहट बार-बार आती है, बल्कि पहले से ज़्यादा आती है। पांचू ने अक्सर गौर किया है, मंगला आजकल ज़बर्दस्ती हँसने और हँसाने की कोशिश भी करती है। बौदी की मुस्कुराहट बड़ी डरावनी होती है। दाँतों की पंक्तियाँ खुलते ही अपनी विकरालता का परिचय देती हैं। तुलसी बिलकुल नहीं हँसती। उसका ध्यान उड़ा-उड़ा-सा रहता है। वह ज़्यादातर चलती-फिरती भी नहीं, बैठी रहती है या लेटी रहती है। कमज़ोरी के बावजूद भी वह करवटें ज़्यादा बदलती है।

माँ आजकल ज़रूरत से ज़्यादा चिड़चिड़ी हो गयी हैं मगर वह चिड़चिड़ापन निहायत ऊपरी है। उस चिड़चिड़ेपन के बीच उनकी गम्भीरता छिपी हुई है। सवेरे से शाम तक वही सबसे ज़्यादा बोलती, चिल्लाती और चलती-फिरती हैं। बिना बात की आड़ लेकर घर के सब लोगों पर चीखा-चिल्लाया करती हैं, सबको गालियाँ दिया करती हैं—'मरो, मरो' किया करती हैं।

पांचू को माँ का यह स्वभाव भी बड़ा अस्वाभाविक-सा लगता था। आज सवेरे चुन्नी की मौत पर उन्होंने बड़ा तूफान मचाया। जब बड़ी बहू की छाती में ही चुन्नी की दाँती बैठ गयी थी, और छाती से खून निकलने लगा था, बड़ी बहू चीखकर आँखें उलटने लगी थी। माँ ने एकदम से सबको गालियाँ देना शुरू कर दिया। एक सिरे से सबको 'मरो, मरो' कर डाला; लेकिन उस बीच में मंगला से उन्होंने पानी मँगाया; तुलसी को बुलाकर भावज को पकड़ने के लिए कहा; ज़बर्दस्ती चुन्नी के जबड़ों में अँगूठे डालकर उसका मुँह खोला और उसकी लाश को कूड़े की तरह आँगन में पटककर घर में सबको चौंका दिया। झटके के साथ सँभलकर बड़ी बहू भी उधर देखने लगी। पांचू निश्चयपूर्वक जानता है कि उसकी माँ पागल नहीं हुई हैं। उस अमानुषिक-सी लगने वाली कठोरता में माँ की बुद्धि बहुत गहरे जाकर काम कर रही है। घर में आने वाली मृत्यु को तुच्छ करके, घर-भर के दिलों में समाये हुए मौत के डर को झटका देने के लिए वह बहुत कठोर हो गयी थीं। माँ के इस कृत्य ने इस समय बड़ी बहू को मरने से बचा लिया था, हरएक के जीवन में कुछ दिन और बढ़ा दिये थे।

पांचू गौर कर रहा था, जब दोनों चुन्नी को दफनाकर घर लौटे तब घर के बाहर तक रोने की आवाज़ें आ रही थीं। सबसे ऊँची और सबसे ज़्यादा दर्दनाक माँ की आवाज़ आ रही थी।

कनक की मौत पर माँ का इस तरह से रोना रुलाना भी पांचू को बड़ा ही अस्वाभाविक-सा लगा था। जब ये लोग घर पहुँचे तो एक बार वह दर्द नये जोश के साथ बढ़ा। पांचू भी रो पड़ा; मगर शिबू नहीं रोया था। कनक की लाश को झोली में डालकर बाहर ले जाने से पहले माँ ने पांचू को एक ओर बुलाया और गम्भीर आवाज़ में कहा—"रास्ते में अपने दादा का ध्यान रखना, बेटा!" पांचू को ताज्जुब हुआ था। माँ की आवाज़ में ज़रा कँपकँपी न थी। पांचू ने ताज्जुब के साथ इसे महसूस किया था और उसे इससे बल मिला था। आप धैर्य धरकर माँ को धैर्य देने की इच्छा उसके मन में सहज ही जाग्रत हुई। वह माँ को धैर्य बँधाने लगा। माँ ने उत्तर दिया—"धरती माता अपना धीरज आप ही धरती हैं बेटा! छिन-छिन टूट रही हैं, पर दुनिया अब तक बची भी उन्हीं के कारन है। तू मेरी फिकर मत कर। मैं टूट जाऊँगी, पर हारूँगी नहीं।"

इसके बाद से वह माँ को एक नये रूप में देखने लगा था। इतने दिनों की महातपस्या का तेज उनके कृशगात को प्रतिक्षण नवजीवन दे रहा था। उसी जीवन की ज्योति से वे अपने बच्चों को खिला रही हैं। पांचू धरती के रूप में अपनी माता को देखता था—धरती, जिसे मनुष्य प्रतिक्षण अपने पैरों तले कुचलता है परन्तु उसी के सहारे खड़ा भी है! लेकिन पांचू सोचता है, इस तरह से माँ और कितने दिन जी सकेगी? कब तक, पांचू सोचता, धरती भी इन अत्याचारों को सह सकेगी?

पांचू की पूर्व-कल्पना फिर जाग उठी—"आदमी से खाली दुनिया, अपनी ही छाती पर धरती अपने महान बेटे का स्मारक लेकर शोक करेगी। उसे अपने दूसरे बच्चों का खयाल भी तो है। आदमी की बुद्धि, ज्ञान-विज्ञान की अनगिनत निशानियाँ भी एक दिन खंडहर होकर मिट्टी में मिल जायेंगी, धरती फिर टीलों, पहाड़ों और हरियाली से ढँक जायेगी। मानव के चिह्न का अस्तित्व लोप हो जाने के बाद धरती फिर अपने दूसरे बेटों—पशुओं और पक्षियों के लिए जीवनदायिनी और सुखद बन जायेगी।"

इस विचार से पांचू के अहं को बल मिला। फौरन ही शिबू की याद आ गयी।

कनक को गिद्धों के हवाले छोड़ आने के बाद, थोड़ी दूर आगे चलकर शिबू और पांचू, दोनों दो अलग-अलग रास्तों पर चलने लगे थे। शिबू घर की ओर चलने की बजाय ब्राह्मण पाड़े के उत्तर की ओर चल दिया। वहाँ शिबू की मित्र-मण्डली के तीन सदस्य रहते हैं। शिबू को उधर जाते देख पांचू कुछ न बोला। सोचा—"अच्छा है, वहाँ जाकर उनका यह मौन टूटेगा। दिल का गम कुछ कम होगा।" पांचू घर की ओर चला आया। घर में दोनों बहुओं और तुलसी से घिरी हुई माँ बुखार से तपते हुए परेश को गोदी में लिटाकर सबको अपने पाँच बेटों की मौत के बारे में अपनी आपबीती सुना रही थीं। और उस वर्णन में, घबराहट में की गयी अपनी बेवकूफ़ियों का जिक्र करते हुए वे हँसती जाती थीं। उस हँसी के पीछे, पांचू ने देखा, बड़ी ज़बर्दस्त थकान छिपी हुई थी। माँ के चेहरे पर चमकते हुए तेज में भी उस थकान को छिपा लेने की शक्ति नहीं थी। पांचू को इस अनुभव से पीड़ा हुई, परन्तु उसने धैर्य बँधाने वाले

माँ के कठोर संयम को ग्रहण करने का प्रयत्न किया। वह बाबा की कोठरी में चला गया।

बाबा की चारपाई के पायताने को छुआ। कोठरी में काफ़ी उजाला नहीं था। चारों तरफ़ टाँड़ों पर किताबों के बस्ते मद्धिम-से दिखायी देते थे। बाबा की चारपाई पर सामने के दरवाज़े से हल्का-हल्का प्रकाश आता था। एक गौरवर्ण अस्थि-पंजर आँखें बन्द किये पड़ा था। दाढ़ी और सिर के बढ़े हुए अस्त-व्यस्त बाल मुख की श्री को बढ़ा रहे थे। बाबा एकदम निश्चेष्ट-से पड़े थे। पायताने किसी को महसूस करके बाबा चेतन हुए। पांचू ने देखा, बाबा सुनने के लिए तैयार हैं। पांचू फौरन ही बैठकर, उनका एक पैर अपनी जांघ पर रखकर मलते हुए कहने लगा—"कब इसका अन्त आयेगा, बाबा?"

आवाज़ में गहराई लिये हुए, निर्विकार और शान्त रहकर बाबा ने उत्तर दिया—"जब इस अन्त में से आदि का सिर उदय होगा। बदलते हुए युग के झकोले तो लगेंगे ही पांचू। अपने बड़े समाज को जगाने के लिए यदि मनुष्यों का यह छोटा-सा समाज तपस्या करता है तो करने दो, परन्तु इस तपस्या को कामना-रहित और निरुद्देश्य न बनाओ। उद्देश्य-रहित की हुई तपस्या संसार में घृणा उत्पन्न करेगी। घृणा मत उत्पन्न करो पांचू! कामना करो कि तुम्हारी बलि मानव में प्रेम की भावना उत्पन्न करे।"

बाबा का यह उत्तर उसके लिए सन्तोषजनक न था। उलझकर वह बोला—"घृणा निरर्थक और निरुद्देश्य नहीं है, बाबा। वह मानव की स्वाभाविक प्रतिक्रिया है।"

बाबा की दाढ़ी-मूँछों में हँसी आयी। बोले—"घृणा की गति है कहाँ? विनाश ही में न? तुम्हारा यह अकाल क्या है? मनुष्य की घृणा ही न? यह महायुद्ध क्या है? कौन-सा आदर्श है इसमें? सत्य एक असत्य के साथ संधि करके दूसरे असत्य का सर्वनाश करने के लिए युद्ध कर रहा है। मनुष्य इसे राजनीति कहकर अर्द्धसत्य का पोषण करता है। अर्द्धसत्य अज्ञान का कारण है। ज्ञान प्रेम का मूल्य है और प्रेम की गति है निर्माण तक—निर्माता तक।"

हथेली से ठोड़ी को पकड़े हुए पांचू कोठरी की छत की तरफ़ देख रहा था। अँधेरा उसकी आँखों में जम गया था। धीरे-धीरे आँखों की ज्योति ने उस अन्धकार को वश में किया और छत की कड़ियाँ दिखायी पड़ने लगीं।

अपनी खिड़की के बाहर छिटकी हुई चाँदनी और तारों को पांचू देख रहा था। मंगला उसकी छाती में मुँह छिपाकर सो गयी थी। वह आज बहुत थक गयी थी। आज उसकी हँसी भी सहम गयी थी।

सिर को टेके हुए पांचू का दाहिना हाथ थकान महसूस कर रहा था। लेकिन मंगला के जाग उठने के भय से वह ज़रा भी न हिला-डुला, चुपचाप खिड़की के बाहर छिटकी हुई चाँदनी और आसमान के तारों को वह देखता रहा। अपनी छाती से चिपकी हुई मंगला के स्पर्श को वह अपनी थकान से अधिक मूल्यवान समझता था। वह यह महसूस करता था कि मंगला दिन-पर-दिन कमज़ोर होती जा रही है। उसे यह डर था कि यह स्पर्श-सुख न जाने कब सपना हो जाये।

सहसा चीख सुनायी दी। मंगला चौंककर जाग पड़ी। पांचू उठकर बैठ गया। बौदी क्यों चीखी? दादा के कमरे के किवाड़ भी ज़ोर से खुले। पीछे से दादा की आवाज़ भी आयी —"शाली चरका देकर भाग गयी। घरवाले जैसे तुझे बचा ही तो लेंगे। हारामज़ादी, तू मेरी वस्तु है। यू आर माई थिंग, शाली!"

दिन-भर के बाद दादा की आवाज़ सुनी थी। मंगला और पांचू दोनों सहमकर एक-दूसरे की ओर देखने लगे। पांचू उठकर तेज़ी से नीचे की ओर चला। पीछे-पीछे मंगला भी चली। आँगन में शिबू अपनी पत्नी को नंगा करके उस पर बलात्कार करने पर तुला हुआ था।

बाबा तक अपनी कोठरी से बाहर आ गये थे। माँ, तुलसी, दीनू, परेश, पांचू और मंगला सकते में खड़े रह गये।

शिबू की बहू अपनी शक्ति-भर लड़ रही थी। सारे घर के सामने—सास-ससुर, ननद, देवर, देवरानी और अपने छोटे-छोटे बच्चों के सामने नारी की लाज लुटी जा रही थी और लाज का लुटेरा था स्वयं उसकी लाज का रक्षक—उसका पति।

शिबू को अपनी पत्नी के प्रति बेहद गुस्सा था। उसके पास सीधा तर्क था कि पत्नी पति की मिल्कियत है और इसीलिए कुदरतन उसे सर्वाधिकार प्राप्त है। बच्चा अपने खिलौने को जैसे जी चाहे खेले, उसे तोड़ भी डाले—इसमें खिलौने को शिकायत क्यों हो। पांचू की जिद ठीक इसी किस्म की थी।

दिन-भर मृत्यु की विभीषिका ने उसे मन ही मन बहुत तड़पाया था। मृत्यु का भय पत्थर की शिला बनकर उसके कलेजे पर रखा था। वह दिल ही दिल में दर्द से घुट रहा था। उसे उससे बचने का कोई मार्ग नहीं मिलता था।

रात आयी, पत्नी कमरे में आयी। भय को जीतने की भावना क्रमशः शिबू को उत्तेजित करने लगी। अपनी पत्नी के भूखे-सूखे शरीर और टूटे हुए मन पर वह बलात्कार करने लगा। पत्नी को जितनी ही पीड़ा होती थी, शिबू का आनन्द उतना ही बढ़ता था। शिबू की पत्नी के लिए पति के अत्याचार असह्य हो उठे।

आज सवेरे ही घर में दो मौतें हुई थीं। अपनी बच्ची मरी थी; दोनों बच्चे भी अब-तब हो रहे थे। ननद की मौत का गम था। और सबके ऊपर अपनी शारीरिक निर्बलता के कारण बड़ी बहू बिलकुल टूट गयी थी। उस पर शिबू का यह हिंसक उन्माद! सहनशीलता की सीमा से परे, इस अमानुषिक अत्याचार से घबराकर बड़ी बहू ज़ोर से चीख उठी। प्राणों के भय से उसमें उस समय बेहद बल आ गया था।

अपनी पत्नी के सहसा यों चीख पड़ने से शिबू चौंक पड़ा। वह ज़रा अलग हटा। मौका पाकर अपने प्राण बचाने के लिए बड़ी बहू फुर्ती से दरवाज़े खोलकर नीचे भागी। पहले तो शिबू सहम गया, बाद में अपनी असफलता पर भयंकर क्रोध जागा। वह दबनेवाला नहीं है। वह किसी से भी नहीं डरता। वह अपनी इच्छा ज़रूर पूरी करेगा। उसकी पत्नी उसकी मिल्कियत है। अपनी मर्ज़ी के मुताबिक वह उसका उपभोग कर सकता है। यह विचार शिबू

को क्रोध में पागल बनाकर अपनी पत्नी के पीछे-पीछे नीचे दौड़ा ले गया। घर-भर की परवाह न करके वह अपना अधिकार और बड़प्पन सिद्ध करना चाहता था। शिबू अपनी पत्नी को काबू में लाकर उस पर बलात्कार करने लगा। पांचू और मंगला ने अपने मुँह फेर लिये। तुलसी माँ की नज़रें बचाकर चुपके से उधर देख लेती थी।

माँ ने अपने मन को तुरन्त ही सँभाल लिया। वह आगे बढ़ी और ज़बर्दस्ती शिबू को पीछे ढकेलने लगीं। माँ को आगे बढ़ते देख पांचू की चेतना लौटी। झूठी लाज छोड़कर भावज को इस राक्षसी अत्याचार से बचाने के लिए वह आगे बढ़ा। माँ ने बेटे को घसीटते हुए कहा —"पापी, माँ-बाप की तो शर्म कर।"

शिबू तैश खा रहा था। पांचू उसे कसकर पीछे से पकड़े हुए था, अपने को पांचू के हाथों से छुड़ाने का प्रयत्न करते हुए वह गरजकर माँ से बोला—

"यह बाबा को सिखाओ जाकर। उनका अब बखत भी है शरम करने का। छोड़ो मुझे।"

शिबू के इस उत्तर से अपनी चिर शंकित आशंका के साथ साक्षात्कार कर, माँ का मन अन्दर ही अन्दर लज्जा और पीड़ा लिये हुए ज़मीन में तेज़ छुरी की तरह गड़ गया। माँ ने तुरन्त अपने मन को सँभाल लिया और शिबू को दोनों हाथों से ढकेलते हुए, पांचू से चिल्लाकर कहा—"घर से बाहर निकाल दो इस चांडाल को। यह हत्यारा मेरे पाप की संतान है। मेरे पाप का फल है।" उनकी आँखों में आँसू आ गये थे, उनकी आवाज़ उखड़ गयी थी।

बाबा के तन की आँखें बन्द थीं, परन्तु मन की आँखें अपने चरित्र की सबसे बड़ी दुर्बलता को आज आमने-सामने देख रही थीं। स्त्री-विषय में बाबा के असंयम और अधैर्य ने उनके हरएक बच्चे को गलत तरीके से काम की चेतना दी। पांडित्य के दीपक के नीचे इस तरह सदा अन्धकार बना रहा। इस समय उन्हें ऐसे अनेक दृश्य याद आ रहे थे, जबकि उनकी लापरवाही ने उनकी अबोध संतानों के मस्तिष्क को विकृत करने में सबसे अधिक सहायता पहुँचाई थी। माँ और बाप, दोनों ही अपनी कमज़ोरियों से हारकर अपने बच्चों के शत्रु बन गये।

बाबा चरित्रवान थे। जीवन में कभी किसी दूसरी स्त्री की ओर उन्होंने आँख उठाकर भी न देखा था। पत्नी को वह पति की कामेच्छा तृप्त करने का साधन मानते थे और इस नाते वह पत्नी को सदा पति की मिल्कियत ही समझते रहे। पार्वती माँ में भी स्वाभिमान की मात्रा कम न थी। दोनों ने एक-दूसरे से अपने स्वाभिमान की रक्षा करने के लिए संधि-सी कर ली थी। पति के इच्छा करते ही वह अपना शरीर समर्पित कर देतीं और इसके मूल्य में वह अपनी हठ पूरी किया करती थीं।

बाबा शहर के कॉलेज में संस्कृत के प्रोफ़ेसर थे। पार्वती माँ को शहर अच्छा नहीं लगता था। वह गाँव में ही रहती थीं। बाबा हर शनिवार की शाम को घर आया करते थे। पार्वती माँ ने पाँच बच्चों को खोकर शिबू को पाया था। वह उसे एक पल के लिए भी अपनी आँखों से ओझल न होने देती थीं। उनके लाड़-प्यार ने ही शिबू को जिद्दी और चिड़चिड़ा बनाया था।

बाबा हर बार इसे बड़े दुःख के साथ अनुभव करते थे और पार्वती माँ से शिबू को पढ़ाने-लिखाने और समझदार बनाने की बात मौके-मौके पर निकाला करते थे। शिबू की किसी भी कमज़ोरी के बारे में किसी का कुछ भी कहना पार्वती माँ को बहुत अखरता था। वे चिढ़कर कहतीं—"बचपन में सभी के लड़के ज़िद्दी होते हैं। रही पढ़ने की बात, सो बखत आने पर सब आप सीख लेगा। अभी उसकी उमर ही क्या है। क्या पढ़े बिना काम नहीं चलता? और धन तो जो किस्मत में होता है तो बिना पढ़े भी मिल जाता है। पढ़-लिख के नौकरी करने से ही सबके महल नहीं चुना करते।"

बाबा चेतावनी देते, कहते—"तुम बड़ी भूल कर रही हो। बच्चे को एक उम्र से ज़्यादा अगर बच्चे की तरह ही रखोगी तो उसकी गैर-ज़िम्मेदारियों का सारा दोष भी तुम्हारे ज़िम्मे आयेगा। पढ़ाना सिर्फ़ नौकरी कराने के लिए ही ज़रूरी नहीं है। विद्या से चरित्र का विकास होता है।"

पार्वती माँ पर बाबा की इन बातों का कभी भी कोई अच्छा असर नहीं पड़ा। वे और चिढ़ जातीं। और बाबा शनिश्चर की रात खराब करना नहीं चाहते थे।

बाबा ज्ञानी और चैतन्य थे। परन्तु अपनी इस कमज़ोरी के प्रति वह सदा अन्धकार में रहे। धर्मपत्नी के साथ संभोग करने को उन्होंने कभी व्यभिचार नहीं समझा और इसी नासमझी में वे अपनी धर्मपत्नी को सदैव के लिए अपनी वेश्या बनाकर उसके साथ व्यभिचार करते हुए गृहस्थ धर्म का पालन करते रहे।

अंधे रह जाने के बाद जब कोई काम न रह गया तब उनकी कामवृत्ति और भी ज़ोरों में उभरी। पार्वती माँ इस ओर से सचेत रहते हुए भी पति के हाथों का खिलौना बनकर रह गयीं। शिबू की बात ने आज बाबा और पार्वती माँ, दोनों की ही आँखें खोल दीं। मगर अब इससे लाभ ही क्या?

पार्वती माँ मर जाना चाहती थीं। अपने ऊपर का सारा क्रोध वे रो-रोकर शिबू पर उतार रही थीं—"घर से निकाल दो इस चांडाल को। मेरी आँखों के सामने से हटा दो इसे।"

बौदी और तुलसी को पार्वती माँ अपनी कोठरी में ले गयीं और अन्दर से दरवाज़ा बन्द कर दिया।

शिबू के डर से मंगला भी अपने कमरे में चली गयी थी। शिबू आपे से बाहर होकर चीख रहा था। अपनी परवशता पर बिगड़कर वह हर एक को गालियाँ दे रहा था और गालियाँ देकर वह आप ही घर से बाहर जाने लगा। पांचू सामने खड़ा था। जाने से पहले पांचू को माँ और बहन की गालियाँ देते हुए उसने उसे कस-कसकर दो तमाचे मारे और घर से बाहर चला गया।

पांचू मार खाकर भी चुप खड़ा रहा। उसके मन ने आज बड़ी करारी मार खायी थी। अकाल की समस्त घटनाएँ और यातनाएँ आज की इस घटना के सामने तुच्छ हो गयी थीं। बाहर की घटनाओं से पीड़ा पाने पर उसका मन घर में शान्ति पाया करता था, परन्तु आज के

बाद उसके घर से भी शान्ति चली गयी थी। आज की घटना के बाद वह विचलित हो उठा था। शिबू के लिए कुछ भी असम्भव न था। बेनी ने अपनी बहू का खून कर डाला। गाय तक का वध किया जा चुका था। हथियार पाने पर शिबू भी अपने सारे घर का वध कर सकता है। शिबू घर में आग लगा सकता है। उससे कुछ भी बईद नहीं। लेकिन क्या पांचू उन सब दृश्यों को अपनी आँखों से देख सकेगा—क्या पांचू अपने परिवार को नष्ट होते देख सकेगा!

पांचू घर से भाग जाना चाहता था। वह फिर सोचता, "मेरे जाने के बाद घर को दादा के अत्याचारों से बचाने के लिए कोई भी नहीं बचा है।" वह विचार मन में बार-बार उठकर भी पांचू का हौसला न बढ़ा सका। घर पर रहना अपना कर्तव्य समझकर भी वह घर से भाग जाना चाहता था—"मैं कोई बुरी बात अपनी आँखों से होते न देखूँगा। मेरे बाद भले ही कुछ भी हो जाये। आँखों से न देख सकूँगा तो दुःख भी न होगा।"

कर्तव्य से विमुख होकर पांचू कायरता की ओर बढ़ रहा था और अपनी इस कायरता को वह बहानों में छिपा लेना चाहता था—"मैं अगर यहाँ रहूँ, तब भी कुछ नहीं हो सकता। खूँखार पागल को कौन रोक सकता है? कहीं बाहर जाऊँगा। कलकत्ते-वलकत्ते कहीं चला जाऊँगा। कोई नौकरी ढूँढूँगा। मिल गयी तो घरवालों की भी कुछ रक्षा हो जायेगी।"

पांचू ने भागने का निश्चय कर लिया और इस निश्चय के साथ ही साथ उसके मन में एक भीषण द्वन्द्व छिड़ गया। यह घर, माँ, बाबा, मंगला सभी एकसाथ उससे छूट रहे थे। शिबू, बौदी, तुलसी, माँ, भतीजों का ध्यान मुख्य रूप से उसके मन में नहीं था। माँ की याद पीड़ा देनेवाली थी। बाबा से उसका सम्बन्ध पिता-पुत्र से अधिक गुरु-शिष्य का रहा। उसकी प्रत्येक बौद्धिक समस्या के साथ बाबा का घनिष्ठ सम्बन्ध था, लेकिन इसके साथ ही साथ उसके भीतरी मन में कहीं यह विचार भी मौज़ूद था कि बाबा अब केवल कुछ ही दिनों के मेहमान हैं। माँ-बाप से सबका सम्बन्ध एक दिन छूटता ही है। उसके चले जाने से बाबा और माँ को बड़ा कष्ट होगा, यह विचार भी पांचू को बड़ा व्यग्र कर रहा था। सबसे अधिक उसे मंगला की याद आ रही थी। उसकी ओर से वह बहुत चिन्तित था। उसका क्या होगा? मंगला में उसके चित्त की सारी वृत्तियाँ एकाग्र हो गयी थीं। एक बार उसकी इच्छा हुई कि वह मंगला को भी अपने साथ लेता चले। विचार ने उसे एक क्षण के लिए स्फूर्ति भी दी, परन्तु फौरन ही उसके मन में डर समाया, मंगला उसे जाने से रोक लेगी। माँ और बौदी को छोड़कर मंगला कभी भी न जायेगी। घर में रुकने के लिए पांचू बिलकुल तैयार न था। सारे संसार से भागकर उसे घर में शान्ति मिलती थी; और अब उसे घर ही महान अशान्ति का केन्द्र-स्थल दिखायी देता था। घर के प्रति उसकी विरक्ति इस समय इतनी बढ़ गयी थी कि पांचू घर छोड़ देने के विचार को अपनी आत्मा का आदेश मानता था। उसे विश्वास था कि इसी में उसका कल्याण होगा। मंगला का आकर्षण उसे अपनी ओर खींचते हुए भी निर्बल हो चला था।

पांचू के पैर धीरे-धीरे दरवाज़े की तरफ़ बढ़ते गये। उसकी इच्छा हुई कि जाने से पहले वह एक बार सबको देख लेता। पांचू लौटा। अपने कमरे की सीढ़ियों तक पहुँचकर पैर फिर

ठिठक गये—मंगला कहीं जाग न रही हो।

चोर की तरह पांचू दबे पैरों से नीचे उतर आया। माँ की कोठरी का दरवाज़ा बन्द था। बाबा अपनी चारपाई पर बैठे हुए थे। घुटनों में उनका मुँह छिपा हुआ था। दूर ही से—मन ही मन—पांचू ने प्रणाम किया। स्मृति में हरएक को सामने लाकर उसने मरे मन से सबसे विदा ली। आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी।

पांचू का निश्चय डगमगाने लगा। फौरन ही पांचू सतर्क हो गया। वह घर के दरवाज़े की तरफ़ चला। चौखट लाँघते ही पैर ठिठके। इस घर में वह अब शायद लौटकर न आयेगा। कदम घर से बाहर पड़ा। घर उसकी आँखों के सामने था। दुमंज़िले पर उसके कमरे की खिड़की खुली हुई थी।

पांचू का ध्यान उड़कर अपने कमरे की तरफ़ चला गया। थोड़ी देर पहले तक इसी कमरे में पड़ा हुआ चाँदनी रात और तारों को देख रहा था। मंगला उसकी छाती में मुँह छिपाकर बाँह डाले सो रही थी। कितना सुख था उस स्पर्श में! और उस सुख का ध्यान आते ही फौरन बड़ी बहू की चीख और बाद का सारा कांड उसके मन को दहलाने लगा। मंगला कहीं खिड़की से देख न रही हो। पांचू और ज़्यादा डरा। फौरन ही सामने से हटकर घर की दीवाल के किनारे-किनारे से जल्दी-जल्दी कतराता हुआ वह आगे बढ़ा।

घर धीरे-धीरे दूर होता चला जा रहा था। चाँदनी रात के प्रकाश में घर धुँधला होते-होते मिट गया। पेड़ों की आड़ आ गयी, गाँव की हद आ गयी। पांचू रुक गया। वह अपनी जन्मभूमि को छोड़ रहा था। छोड़ने से पहले एक बार आँखें भरकर वह अपने गाँव को देख रहा था।—वह अपना सारा जीवन देख रहा था। इन्हीं खेतों में वह खेला-कूदा है। बड़ा हुआ है। अनेक सुख-दुखों के नाते इसी भूमि पर उसके साथ जुड़े हैं। मोहनपुर उसकी जन्मभूमि, कर्मभूमि, समरभूमि रही है। अकाल के इन दिनों की सारी अनिश्चयता को लिये हुए भी उसके जीवन की एक निश्चित गति साथ भी रही है। घर-गाँव छूटने के साथ ही साथ पांचू का उस निश्चित जीवन के साथ भी नाता टूट रहा है। सारे संसार में घूमकर वह इस गाँव में लौटता था; यहाँ उसका घर था। जन्म के साथ बँधा हुआ उसका आकर्षण केन्द्र नष्ट हो रहा है। सवेरे जब माँ को पता लगेगा, मंगला अनुभव करेगी, सारा घर सुनेगा...!

चुम्बक-शक्ति का यह आखिरी खिंचाव था। अपनी निर्बलता को परास्त करने के लिए पांचू फिर आगे बढ़ा। मगर वह जायेगा कहाँ? "कहीं भी! घर नहीं जाऊँगा।" आँखों में आँसू भरकर ज़िद के साथ उसने अपनी सारी समस्याओं को अन्तिम निर्णय दिया।

पांचू ने पीछे मुड़कर भी नहीं देखा। आँखों से आँसू बह रहे थे और वह आगे बढ़ रहा था। हठ के कठिन पाश में अपनी समस्त कोमल वृत्तियों को जकड़कर आगे बढ़ा जा रहा था। अशान्ति के उद्वेग से हृदय उमड़ा चला आ रहा था; सिर में भारीपन के साथ बुद्धि की अगति थी, आँखें आँसुओं से भरी हुई थीं। अपने आस-पास की किसी भी वस्तु का ध्यान उसे नहीं था। पथहीन, लक्ष्यहीन पांचू चलता ही जा रहा था, मानो चलने का कहीं अन्त नहीं है।

रोने की आवाज़ कहीं दूर से कानों में आयी। चेतना फिर भूमि पाकर लौटी। पांचू ने सिर उठाया, ध्यान स्थिर हुआ। पांचू ने अनुभव किया कि रोने की आवाज़ दूर नहीं, बिल्कुल उसके पास ही है।

बायीं तरफ़ खंडहर में कोई पड़ा हुआ दिखायी दिया। रोने की आवाज़ किसी बहुत छोटे बच्चे की-सी थी। पांचू को वह आवाज़ अपनी तरफ़ खींचने लगी। ध्यान स्थिर हो चुका था, बुद्धि फिर काम करने लगी थी। पांचू ने अपनी इच्छा का समर्थन किया। वह उस ओर बढ़ा। ताज़ा पैदा हुआ बच्चा माँ की एक टाँग पर चढ़कर हाथ-पैर पटक रहा था और रो रहा था।

पांचू के लिए जीवन में यह एक नया अनुभव था। एक क्षण के लिए वह हतबुद्धि होकर खड़ा रहा, फिर संकोच उत्पन्न हुआ। नग्न नारी सामने निश्चेष्ट पड़ी थी। बच्चा उसकी नंगी टाँग पर पड़ा कमज़ोर आवाज़ से रोता हुआ धीरे-धीरे हाथ-पैर पटक रहा था। नाल की लम्बी डोरी माँ के शरीर से जुड़ी हुई थी।

पांचू को बड़ी लज्जा मालूम हुई। घूमकर वह लौटने लगा, लेकिन पैर आगे न बढ़े। इस असहायावस्था में एक सद्यःजात शिशु और माँ को छोड़कर आगे बढ़ जाने के विचार पर उसकी आत्मा ज़ोर से धिक्कारने लगी। मगर साहस न होता था; मन ही मन लज्जा से वह गड़ा जा रहा था।

सहसा शिशु को बचाने की प्रेरणा इतनी प्रबल हो उठी थी कि पांचू का भय और संकोच टिक न सका। पांचू दृढ़ होकर उस ओर घूमा। वह झुका। नारी में जीवन का कोई चिन्ह नहीं मालूम होता था। अपने संदेह को मिटाने के लिए पांचू स्त्री के खुले मुँह और नाक के पास हाथ ले गया। साँस नहीं चल रही थी। साहस करके पांचू ने स्त्री की छाती के बीच हाथ रखे —धड़कन भी नहीं थी। स्वयं उसका हृदय इतने ज़ोर से धड़क रहा था कि तबियत होती थी, उठकर भाग जाये। मगर वह उठ न सका। स्त्री के शरीर में गर्मी से अनुमान किया, स्त्री को मरे हुए अधिक-से-अधिक दस-पन्द्रह मिनट हुए होंगे। फौरन ही उसका ध्यान शिशु की ओर गया। लड़का था, अत्यन्त दुर्बल, गर्भ के मल से सना हुआ, नाल जुड़ी हुई।

पांचू के हाथ-पैर फूल रहे थे। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह बच्चे को कैसे बचाये, उसकी नाल कैसे अलग करे? कभी देखा नहीं, अनुभव नहीं—घर से निकलते ही वह मानव-जीवन की सबसे बड़ी गार्हस्थिक उलझन में पड़ गया था। इतना उसने ज़रूर सुन रखा था कि नाल काटी जाती है। वह कैसे काटेगा? आस-पास में नज़र बेकार ही घूम गयी। टूटा-उजड़ा हुआ घर था। बच्चे को बचाने की तीव्र इच्छा और घबराहट के साथ-साथ अपनी असहायावस्था और अनुभवहीनता पर उसे बड़ी ज़ोर से झुंझलाहट आ रही थी। मृत शरीर के साथ बच्चे का सम्बन्ध अधिक देर तक नहीं रहना चाहिए, उसके मन में यह बात बार-बार अपने-आप ही उपज रही थी। जी कड़ा करके पांचू ने दोनों हाथों से खींचकर नाल बीच से तोड़ दी। बच्चा माँ के शरीर से अलग हो गया। आधी लटकती हुई नाल समेत उसने बच्चे को हाथों में उठा लिया। कमज़ोर बच्चा रोते-रोते हाँफ रहा था।

पांचू के सामने एक नयी समस्या थी, बच्चा बचेगा कैसे? इसका कोई उत्तर उसके पास न था। लाश से ज़रा हटकर, बच्चे को गोद में लिये हुए पांचू टूटी हुई दीवार के सहारे बैठ गया। वह थककर चूर हो गया था। दस रोज़ से भूखा था, आज सवेरे दो-दो लाशों का बोझ उठा चुका था, शिबू की रोक-थाम में भी बड़ी मेहनत करनी पड़ी थी, फिर उसके बाद इतना चलकर आया और अब यह श्रम। दीवार से सिर टिकाकर पांचू ने आँखें बन्द कर लीं। उसे बड़ी शान्ति मिल रही थी। गोद में बच्चा हाथ-पैर पटक रहा था। तन और मन से अत्यधिक थका हुआ होने पर भी पांचू इस समय सुख और शान्ति का अनुभव कर रहा था। अपने अन्दर वह एक किस्म की ताज़गी महसूस कर रहा था।

पांचू ने आँखें खोलीं। बच्चे का क्या होगा? इसे हवा लगती होगी। पांचू ने अपनी कमीज़ उतारकर उसे उढ़ा दी।...बड़ा कमज़ोर है, कैसे बचेगा?...मगर बच जाये। कैसे भी हो इसको बचाना चाहिए। इसे दूध मिलना चाहिए। पायेगा कहाँ से हतभागा? अरे अकाल में जन्म लिया है। लोग मर रहे हैं और यह पृथ्वी पर मृत्यु देखने आया है। माँ मर गयी बेचारे की।

पांचू का ध्यान उस स्त्री की ओर गया। बहुत दुबली नहीं थी। जान पड़ता है, कुछ रोज़ पहले तक इसे खाने को मिलता रहा है। कपड़ा भी बदन पर है। इस घर की नहीं मालूम होती। सूरत-शकल से भले घर की ही जान पड़ती है। किसके घर की होगी? यहाँ कैसे आयी होगी? सारा इतिहास इसकी मृत्यु के साथ ही लुप्त हो गया है।

कल्पना अँधेरे में भटककर लौट आयी। पिछली रात की चाँदनी के उजाले में पांचू ने देखा, बच्चा गोरा है। दुबला-पतला बहुत है, कहीं मर न जाये। रो रहा है, भूखा होगा। लेकिन भूख तो समस्या है।

एक सर्द आह पांचू के दिल से निकली। दस रोज़ से भूख की पीड़ा को सहते हुए उसे उसकी आदत पड़ गयी है। एक तरह से भूख अब उसे सताती नहीं। हाँ, शरीर की कमज़ोरी और भूख की याद बेहद सताया करती है। बच्चे की भूख का खयाल कर उसे पीड़ा हुई। मगर कोई चारा न था। बच्चे पर ही उसने अपना सारा ध्यान केन्द्रित कर दिया। बच्चा रो रहा था। पांचू धीरे-धीरे अपनी टाँगें हिलाने लगा। ज़रा देर बाद बच्चा चुप हो गया। पांचू को शक हुआ, फौरन ही बच्चे की नाक के पास हाथ ले गया। बारीक साँस की हवा उसने अपनी हथेली पर महसूस की। उसे राहत हुई—"किसी तरह यह बच्चा बच जाये!...अगर मैं यहाँ न आता तो? शायद इसकी जान बचाने के लिए ही मैं इधर से आ निकला। शायद इसकी जान बचाने के लिए ही मेरे घर में वह कांड हुआ और मुझे घर छोड़ना पड़ा।"

यह खयाल पांचू को बड़ा अटपटा-सा मालूम हुआ, मगर उसके साथ ही साथ यह घटना, यह एक नया और विचित्र अनुभव भी उसे एक बड़ा चमत्कार-सा मालूम पड़ रहा था।

उसके खयाल एक नये दायरे में घूमने लगे। एक नये दृष्टिकोण से वह तमाम बातों को देखने लगा। मनुष्य के जीवन में घटनाओं का चक्र किस तरह से चलता है? एक के बाद एक घटना इस तरह से आ जाती है, जैसे वह पहले ही से निश्चित की गयी हो। यह सब है क्या?

क्या जो कुछ भी होता है, वह अपने-आप होता है, अकस्मात् होता है? क्या जीवन घटना-मात्र ही है? कभी ये घटनाएँ हमारे जीवन में उखड़ी हुई-सी आती हैं। उनकी विश्रृंखलता के कारण तर्क की सीधी गति में बाधा पड़ती है, परन्तु यहीं तक क्या जीवन की घटनाओं का अन्त हो जाता है? क्या यह घटना नहीं कि अकाल बंगाल में ही फैला हुआ है। सदा का रोगग्रस्त और प्रखर बुद्धि वाला यह प्रांत ही क्यों सदैव सारी पीड़ाओं और यातनाओं को भोगता है? यों तो सारा देश ही महान संकट और विपत्ति-काल से गुज़र रहा है फिर भी बंगाल के ऊपर यह काँटों का ताज और क्यों रख दिया गया? क्या कारण है इसका? क्या यह महायुद्ध घटना-मात्र है?

यह प्रश्न पांचू के तर्क की शक्ति के निकट आ गया था। महायुद्ध के कारणों को बुद्धि जानती है। अपने बौद्धिक क्षेत्र में आकर उसे एक तरह का सुख मिला। बच्चे की तरफ़ देखा, उसकी नाक पर हथेली रखकर साँस की गति मालूम की। प्यार-भरी आँखों से वह बच्चे की ओर देखने लगा।

यह बच्चा जी जाये! कामनापूर्ण नेत्रों से बच्चे की ओर देखते हुए उसे सहसा यह विश्वास होने लगा कि बच्चा जी जायेगा। अपने इस विश्वास के लिए वह मन में तर्क खोजने लगा। पांचू ने सोचा—"गर्भ से ही यह बच्चा अकाल की यातनाओं को सहने की कठोरता लेकर पैदा हुआ है।"

इस तर्क के आधार पर पांचू सोचने लगा—"माँ के मर जाने के बाद भी यह बच्चा जीवित रहा, क्या यह घटना जीवन के सत्य को सिद्ध नहीं करती?"

इस विचार की पृष्ठभूमि में अकाल का चलचित्र उसे दिख रहा था। विचार उसी दिशा में आगे बढ़े—"लाखों आदमी मर जाने पर भी बंगाल आज जीवित है। क्या इससे जीवन अजेय सिद्ध नहीं होता?"

सवाल में ही जवाब के तौर पर ज़ोरदार 'हाँ' की ध्वनि छिपी थी—जो निःस्पृह नहीं थी। उसमें खुशी की गूँज थी, बंगाल के जीवन को वह अपने जीवित बचे रहने में देख रहा था। इसीलिए समर्थन करने के लिए इस प्रश्न के साथ ही पीड़ा व्यग्र होकर आँखों में छलछला उठी। उसका एक हाथ बच्चे के सिर के नीचे और उसकी टाँगों पर रखा था। जैसे ही आँखें छलछलायीं, वैसे ही हाथों ने झटका खाया—हाथों ने बच्चे को पेट के पास घसीट लिया।

बच्चा जाग पड़ा। रोने लगा। पांचू का ध्यान बँटा। वह रोते हुए बच्चे की तरफ़ चौंककर देखने लगा। वह झुंझला गया। उसे अपनी पीड़ा और अपने रोने में इस समय सुख मिल रहा था; दूसरे का रोना अखरा। मगर गलती चूँकि अपनी थी, इसलिए झुंझलाहट खुद अपनी गलती से ही उलझने लगी। गलती क्या है, यह समझ में नहीं आती थी। उलझन डबल हुई; गुस्सा चढ़ा। गुस्सा बुद्धि में सेंध लगाकर फिर राजनीति के क्षेत्र में कूद पड़ा। तेज़ी के साथ वह सोचने लगा—"अपनी सेना के साथ सुभाष बाबू के आने पर बंगाल कहीं उनके साथ मिल न जाये, इसलिए बंगाल को पहले से ही तबाह कर दिया गया। यह अकाल भारत को

गुलाम बनाये रखने की राजनीति है।"

पांचू जोश में आ गया। बच्चे के रोने पर ध्यान गया, जोश के साथ उस पर तरस आ गया। प्यार उमड़ा। उसने फिर टाँगें हिलानी शुरू कीं और बड़े प्यार के साथ धीरे-धीरे, बच्चे को थपथपाने लगा। बच्चा क्रमशः सिसकियाँ भरते-भरते फिर चुप हो गया—"छोटी-छोटी आँखें मींचे पड़ा है। कैसा प्यारा है! बच्चे कैसे प्यारे लगते हैं! बच्चा किसी का भी हो, सब पर प्यार आता है।" पांचू को फौरन ही खयाल आया—"बच्चा ही तो बड़ा होकर आदमी होता है। आदमी होते ही भेदभाव शुरू हो जाते हैं—क्रोध, घृणा, हिंसा!"

पट से पांचू को ध्यान आया, कल शाम ही बाबा ने कहा था—"उद्देश्य-रहित की हुई यह तपस्या संसार में घृणा उत्पन्न करेगी। घृणा मत उत्पन्न करो पांचू! कामना करो कि तुम्हारी बलि मानव में प्रेम की भावना उत्पन्न करे।"

कल शाम को पांचू को यह उत्तर सन्तोषजनक न लगा था। इस समय उसके विचार चूँकि उसी दिशा में बहने लगे थे, इसलिए बाबा का प्रवचन तुरन्त ही ध्यान में आ गया। इस रूप में अपने विचारों का समर्थन पाकर वह पुलकित हो गया। बच्चे की ओर देखने लगा; बच्चा सो रहा था। प्रेम की भावना इस समय प्रबल थी। बच्चा 'बहोऽत ही' प्यारा लगा। सहसा विचार आया—"यह प्यार कहाँ से आया? इतनी ही देर में मुझे इससे ममता क्यों हो गयी? मैंने इसे बचाया, इसलिए न? मैंने एक जीवन को बचाया। ठीक-ठीक, यों कहा जाये, कि जीवन के प्रति मेरे प्रेम ने जीवन को बचा लिया—सच!"

पांचू बहुत खुश हुआ—"तब फिर मैं इसे अपनी करतूत क्यों मानूँ?" इस खुशी ने दिमाग को हल्का-सा नशा दिया। वह सोचने लगा—"जीवन आप अपने को बचाता है। अनेक रूपों में, और अनेक स्वभावों में एक ही जीवन रमता है।"

पांचू भी रमने लगा। वह सोच रहा था—"अपने अस्तित्व को हर शरीर में सिद्ध करके वह अपनी संगठित एकता का परिचय देता है। यही समाज है।"

ये पढ़े-सुने तो सदा के थे, मगर गुनने आज बैठे। गुनने बैठे तो उनको अपना बना लिया। युगों के तराज़ू पर पांचू गोपाल अपने वाक्यों को वेदवाक्यों से तोलने लगे। दोनों पलड़े काँटा नोक सधे हुए जँचे। जो बड़े-बड़े कह गये, वही हम भी कह रहे हैं।

बुद्धि का गुब्बारा फूलने लगा—"इकाई की चेतना मनुष्य को भ्रमवश एक ही शरीर, एक ही रूप की सीमा में देखने लगी, परन्तु ज्यों-ज्यों सत्याग्रह द्वारा मनुष्य अनुभव प्राप्त करता गया, उसने अपने को इस भ्रम से मुक्त कर कुटुम्ब और समाज की स्थापना की। इकाई की चेतना ने तब सामूहिक रूप तो धारण कर लिया, मगर वह तब भी मानव-समाज के बड़े-बड़े भागों में, अलग-अलग बँटी रही। अज्ञान में सत्य का आलोक छिपाये ये बड़े-बड़े समाज आगे बढ़े। अनेकों स्थूल दृष्टि-सुगम भेदभावों के कारण मनुष्य मनुष्य को अपरिचित लगा। अपरिचय से भय और भय से हिंसा। हिंसा मनुष्य के अन्दर अज्ञान से उत्पन्न है..."

पांचू इस बात के प्रति चैतन्य था कि वह सोच रहा है। उसके विचार उतने ऊँचे जा रहे हैं,

इसकी उसको खुशी थी। इस खुशी की चेतना से उत्साह पाकर, उसकी विचार-धारा दिमाग की ऊपरी सतह पर बहती ही चली जा रही थी—"हिंसा अज्ञान का नाश करने के हेतु उत्पन्न हुई सद्प्रेरणा की ही प्रतिक्रिया है। निर्माण द्वारा सत्य को प्राप्त करने के लिए यह ज्ञान की अति तीक्ष्ण वृत्ति, अपनी ओर से चेतना-विमुख होने के कारण ही हिंसा बन जाती है। हिंसा में भी उसका अलक्षित उद्देश्य अपनी इकाई को ही सिद्ध करना होता है। स्थूल अज्ञान को काट डालने की चेतना तो ठीक है, गलत सिर्फ़ इतना ही है कि हिंसा द्वारा वह केवल अपनी (व्यक्तिगत) इकाई को सत्य सिद्ध करने का भ्रमपूर्ण प्रयास करता है। उपचेतन में उसे इस भ्रम का ज्ञान अवश्य रहता है, क्योंकि हिंसा की भावना उत्पन्न होने से मनुष्य को कभी आनन्द प्राप्त नहीं होता।" खयाल आया, खुद भी चौंके—"हाँ, ये बात है? मैंने इतनी बढ़िया बात सोच ली!"

पांचू अपने-आपको महापुरुषों के रूप में अनुभव कर रहा था। संसार को बचाने वाला मसीहा, संसार को जगाने वाला पैगम्बर और संसार को आलोक देने वाला अवतार एक अनजान बच्चे को बचाकर, दीवार के सहारे बैठा हुआ लोक-कल्याण के लिए चिन्तन कर रहा है। घमंड था तो यहाँ तक, मगर बहुत दबा हुआ। इसकी बहुत हल्की-सी चेतना से बुद्धि झेंपकर अपने विचारों को अपूर्व शान्ति के रूप में अनुभव करने लगी। और उसी अपूर्व शान्ति की छाया में अवतार—पैगम्बर—मसीहा ने बच्चे की ओर प्यार-भरी नज़रों से देखा। बच्चा उसे इतना प्यारा लगा कि उसे जगाकर खेलने की इच्छा हुई। 'अवतार' एक अनजान बच्चे को खिलाकर, प्यार जताकर, उस मानव-शिशु का महत्त्व बढ़ाना चाहता था। फौरन ही भूख का ध्यान आया। जागेगा तो रोने लगेगा। अपनी भूख का ध्यान भी आया। 'अवतार' भी दस रोज़ से भूखा रहने को मजबूर है। 'अवतार' के साथ मजबूरी का खयाल कुछ जमता नहीं। गुस्सा आ गया। अकाल लानेवाले राक्षसों के ऊपर क्रोध 'अवतार' को ही आ रहा था, मगर बुद्धि और तर्क पांचू के ही थे। पांचू तेज़ होकर सोच रहा था—"हमारी आज़ादी की न्यायपूर्वक माँग के एवज़ में हमें अकाल दिया जाता है? सन् '42 का दमन किया जाता है? सन् '42 का भारत-दमन सामूहिक रूप से विश्व की मानवता का शिरोच्छेदन करने का एक अति अमानुषिक प्रयास था। मनुष्य की सहज उठी हुई स्वतंत्रता की प्रेरणा को बर्बरतापूर्वक कुचलकर उसके मन में सत्य और जीवन के प्रति अनास्था उत्पन्न करने का राक्षसी कृत्य था, वह दमन। इतना नहीं सोचता मनुष्य कि जो अत्याचार वह दूसरों पर करता है, वही उलटकर यदि उसके ऊपर किये जायें तो?"

दुनिया उसके सामने कितनी नादान है, इतनी-सी बात भी नहीं समझता! नादानों की लिस्ट में बड़े-बड़े नाम अन्तर्चेतन में थे, हिटलर, मुसोलिनी, चर्चिल, तोजो, रूज़वेल्ट, स्टालिन—ये दुनिया के सूत्रधार कितने अहमक हैं जो हेडमास्टर पांचू गोपाल मुखर्जी से सबक नहीं लेते! इस खयाल की वजह से खुशी थी; साथ ही साथ अपने ऊपर होनेवाले अत्याचारों को, खयाल के बहाने, अंग्रेज़ों पर लागू कर उन्हें अकाल-पीड़ित देखकर, खुशी

हुई। खयाल की आड़ में यह खयाली तस्वीर इतनी तेज़ और तीखी थी कि उसने गुज़रते-गुज़रते में अपनी आड़ को भी काट दिया। असलियत खुल गयी। हिंसा की जिस वृत्ति का वैज्ञानिक रूप से विश्लेषण करते हुए कुछ देर पहले उसने अपने को समझाया था, इस वक्त वह खुद ही उस चक्कर में पड़ गया। खुदी का गुब्बारा फूलते-फूलते फट गया। खुद अपने-आपके सामने ही बड़ी झेंप मालूम पड़ने लगी। 'अवतार' का भूत उड़न छू हो गया। उसे बड़ी तकलीफ़ होने लगी—"समझते हुए भी फिर वही भूल कर बैठा।" क्षुब्ध अहं ने अपने मार खा जाने का कारण बुद्धि की गैर-ज़िम्मेदारी में देखना चाहा, नतीजा उल्टा ही हुआ। अपनी परेशानी के जवाब में उसे खयाल आया—"मैं जो कुछ सोचता हूँ, सही मानता हूँ, उसे करता नहीं।"

बच्चा हिला; रोने लगा। पांचू का ध्यान उचटा। बच्चे को उठाकर अपने सीने से लगा लिया—"इसे बचाना चाहिए। इस वक्त इसकी चिन्ता करना ही मेरा सबसे बड़ा काम है।"

पांचू उठ खड़ा हुआ। रोते हुए बच्चे को कन्धे से चिपकाकर 'आ-आ' करके चुप कराने लगा। बच्चे का गर्म स्पर्श उसके हृदय को करुणार्द्र करने लगा। प्रेम ने उसके बाह्यावतार को रोमांचित कर दिया। मन अपनी असीम-सी लगने वाली सीमाओं के साथ शान्तिमय हो गया। इतना गहरा सन्तोष, अहं-रहित चेतना की यह शान्ति, अन्तर के गहन छोर से उदय होकर कुछ पल के लिए उसे आत्म-विस्मृति और आनन्द की लहर में बहा ले गयी।

पांचू इस नवीन अनुभव के प्रति चेतन हुआ। अपूर्व अनुभव था, कितना आनन्द था। चेतना उत्पन्न होते ही वह आनन्द सत्य न रहकर उसकी छाया-मात्र रह गया। कुछ भी हो, पांचू का मन इस समय छक गया था। अकाल की सारी पीड़ाओं की थकावट और चिन्ताओं का बोझ उतर गया था। वह बहुत निर्मल, शान्त और हल्का अनुभव कर रहा था। बच्चे की पीठ पर हाथ फेरते हुए प्रसन्न होकर उसने सोचा—"यह अनुभव मुझे इस बच्चे से मिला है। ...और मेरा यह अनुभव भी इस बच्चे की ही तरह अंकुर-मात्र है। दोनों साथ-साथ बढ़ेंगे। मैं इसे इसी रूप में देखूँगा। मेरा ध्यान बराबर जमा रहेगा, फिर कभी गलती न होगी।"

बच्चे को कन्धे से चिपकाकर पांचू टहलने लगा। एक गुदगुदी-सी अनुभव करते हुए उसने सोचा—"इसका नाम? नाम क्या रखूँ इसका? कैसा नाम रखूँ? इसकी जाति क्या है?"

पांचू ने उसकी माता की तरफ़ देखा। वह धरती की तरह शान्त पड़ी थी। पांचू ने आगे सोचा—"इसकी जाति भला क्या हो सकती है? इसकी माँ कौन है? अपने को इसकी माँ कहनेवाला जीव तो चला गया। आदमी का बेटा है, मैं इसे आदमी ही कहूँगा। यह जाति, वर्ण वगैरह से पाक है।...यह सब तो है, मगर अब इसके पालने की फिक्र करनी चाहिए। कहाँ ले जाऊँ इसे?"

रास्ता सूझता नहीं। मन अकुलाया। घर की याद आयी; मंगला की याद आयी। वह इसे पालेगी।

मन में संकोच हुआ—"जिसे छोड़कर चला आया, उस घर में क्या लौटकर जाऊँ? इस

खयाल से जो पीड़ा हुई, उसे दूर करने के लिए सन्तोष आया। खयाल आया—"मुझे अब यह बड़ा घर मिल गया है। सारी दुनिया मेरा घर है।"

पैगम्बरपन से बचने के लिए फिर हल्का-सा झटका खाया—"यह सब होते हुए भी आदमी के लिए घर तो चाहिए ही। और क्या मेरे घरवाले इस दुनिया से अलग हैं? फिर उन्हें क्यों छोड़ दूँ?...मगर वहाँ तो आप ही बुरा हाल है, इस बच्चे की परवरिश क्या होगी! सब लोग सोचेंगे, मंगला कहेगी, यह क्या नयी बला ले आये?"

पांचू नहीं चाहता था कि उसके 'आदमी' को बला समझा जाये। उसे तकलीफ़ हुई। मगर, फिर सोचा—"मंगला ऐसा नहीं सोचेगी। उसका हृदय बड़ा कोमल है। स्त्री का हृदय बड़ा कोमल होता है, उसमें माँ की ममता सहज ही उत्पन्न होती है। मंगला के अन्दर सोयी हुई माँ इसे ज़रूर छाती से लगा लेगी।

मंगला की याद आयी। उसे सुख हुआ। मंगला के प्रति फिर नया आकर्षण जागा। घर लौट चलने की इच्छा हुई। वह सोचने लगा—"घर से भाग आना मेरी कायरता थी। मैं अपने कर्तव्य से भाग आया। हाँ, और नहीं तो क्या? मैंने अकाल से लड़ने की कोशिश ही नहीं की। सिर्फ़ तकलीफ सहता रहा। अपने लिए माँगने में शर्म आती थी! शर्म क्यों आती थी? आबरू जाने के डर से! मगर वह तो फिज़ूल है। भूख शर्म की बात नहीं, सबको लगती है। मैं सबकी भूख के लिए माँगूँगा। सबकी भूख में मेरी भूख भी तो शामिल है, मेरा घर और यह 'आदमी' भी तो शामिल है।"

पांचू के मन में नयी आस्था जागी—"हाँ, मैं लड़ूँगा। मोनाई से, दयाल से—उन सब लोगों से जिनके पास सबकी भूख के साधन छीनकर जमा हैं।"

दिमाग में गुस्से की हल्की लहर-सी उठी। उसके विरोध में फिर फौरन ही खयाल आया —"उनका अपराध नहीं। सारे अत्याचार नासमझी की वजह से करते हैं। और यह नासमझी युगों से हमारे साथ है। क्या मुझमें नहीं है? किसमें नहीं है? लेकिन यह नासमझी दूर कैसे हो? जिस पाशविक शक्ति के बल पर मानव-समाज का सत्तावादी वर्ग इस नासमझी का पोषण कर रहा है, क्या उसके आगे सिर झुका देना ठीक होगा? क्या यह सत्य के प्रति अन्याय न होगा? अवश्य होगा। इस अन्याय की जड़ उखाड़ फेंकना ही हमारा धर्म है। यही सत्य है।"

अन्न मनुष्य के खाने के लिए है। अन्न की कीमत पैसा नहीं, मनुष्य की भूख है। व्यक्ति का स्वार्थ समाज की भूख को नहीं खा सकता! मनुष्य के जन्म-सिद्ध अधिकारों का अपहरण नहीं कर सकता।

पांचू अपने में एक नयी स्फूर्ति का अनुभव करने लगा। खोया हुआ भविष्य और अकर्मण्य वर्तमान जीवन की नयी आशा और विश्वास से शक्तिशाली हुआ।

उसने सोचा—"हम लड़ेंगे। हम अन्न के हर गोदाम पर कब्जा करेंगे। हम जियेंगे। लेकिन इससे अत्याचार और बढ़ेंगे, घृणा उत्पन्न होगी। और न लड़ने से क्या घृणा उत्पन्न नहीं होगी?

आत्मपीड़ा पहुँचाकर तो शर्तिया होगी। सत्ता की बलिवेदी पर लाखों नर-नारियों का जो यह अमानुषिक बलिदान हुआ है, उसका परिणाम दिन के उजाले की तरह स्पष्ट है। घृणा एक ओर सत्य की आड़ लेकर लड़ेगी, दूसरी ओर स्वार्थ की। सत्य स्वार्थ पर विजय पायेगा, परन्तु, घृणा साथ रहेगी। विजय-लिप्सा प्रतिक्रियावश पाशविक बनेगी और आदिम युग के मानव की परम्परा से प्राप्त पशुवृत्ति का अपने अन्दर से नाश करना ही सच्ची क्रान्ति है। यही नये जीवन को गतिशील करेगा।"

बच्चा कुनमुनाया। पांचू का ध्यान उधर गया। उसे प्यार से थपथपाकर उसी तेज़ी से वह सोचने लगा—"हमारा बलिदान, हमारी कर्मण्यता और हमारी क्रान्ति इस बच्चे की दुनिया को इन्सान के रहने योग्य बनायेगी, जिसमें अमीर-गरीब न होंगे, रंगभेद न होगा, धर्मभेद न होगा, जातीयता और राष्ट्रीयता न होगी—एक दुनिया होगी, एक मानव समाज होगा।"

एक सुखद कल्पना पूरी हुई। उससे मन आनन्द से भर उठा। मगर उसके साथ ही उसने सोचा—"लेकिन इस सपने को साकार करना है। विचारों के चौराहे पर खड़े होकर अकर्मण्यता का तमाशा देखना फिज़ूल है। वे आदर्श और सिद्धान्त झूठे हैं जिन पर अमल न हो सके। तब? मुझे क्या करना है?"

पूर्व-निश्चय के साथ एक-एक विचार उतरने लगा; घर चलना है। इस बच्चे की जान बचानी है। मानव-हृदय में जिस स्वार्थ-रहित प्रेम और कर्तव्य का आभास मुझे इस बच्चे द्वारा मिला है, उसे कर्म में बदलना है—रोटी लेनी है; अपना जीने का अधिकार सुरक्षित करना है। दयाल और मोनाई वर्ग हमारा वह अधिकार अब अपने ताबे में नहीं रख सकता। यह वर्ग हमारे ऊपर अत्याचार करता किस बल पर है? हमारे ही कुछ आदमियों को अपनी पूँजी और स्वार्थ में हिस्सेदार बनाकर बहका लेता है। छेदासिंह, दयाल के पछाँही लठैत, पुलिस, फ़ौज के सिपाही यह सब कौन हैं? हमारे ही आदमी हैं, पीड़ित मनुष्यता के ही अंग हैं। ये हमसे दूर नहीं रह सकते। हमारा संगठन, हमारा नैतिक बल, हमारी न्याय की आवाज़ इन्हें बहुत दिनों तक हमसे दूर नहीं रख सकती। सत्तावादी पूँजीपतियों का वशीकरण मन्त्र अब अधिक दिनों तक इन्हें अपने जादू में नहीं बाँधे रह सकता। जनशक्ति, जनक्रान्ति सत्तावादियों के स्वार्थ के किले तोड़ देगी। तभी हमारी शक्ति से हमको ही डरानेवाला मानव-समाज का यह छोटा-सा वर्ग अपंगु होकर चेतेगा। पैसा ही उसकी सर्वोपरि शक्ति है। जब वह पैसे से हमें खरीद नहीं सकेगा तो आप सही रास्ते पर आ जायेगा! उसकी घृणा का लक्ष्य भी वही होगा जो हमारा है —पूँजी और सत्ता!

सवेरा हो चला था। पूरब में लाली छा रही थी। पांचू घर की तरफ़ बढ़ रहा था। पांचू के कर्तव्य का मार्ग स्पष्ट और निश्चित था।

परेश रात ही में मर चुका था। मुँह-अँधियारे उठकर पार्वती माँ पांचू को पुकारने के लिए सीढ़ी तक गयीं। दरवाज़े के पास कोई सिर झुकाये बैठा था। अँधेरा था, कुछ साफ़ न सूझा। पूछा —"कौन?"

"मैं!"

मंगला की आवाज़ इतनी गम्भीर कभी नहीं सुनी। पार्वती माँ सन्न रह गयीं—"छोटी बहू तुम! पांचू कहाँ है?"

छोटी बहू के यहाँ बैठे रहने का और मतलब ही क्या हो सकता है? पार्वती माँ झपटकर आगे आयीं। मंगला उठकर खड़ी हो गयी। बड़ी-बड़ी आँखें ज़बर्दस्ती खुश्क रहना चाहती थीं। मंगला की चिन्ता में गहरा मान समाया था—"मुझसे बिना कहे चले गये?"

रात बड़ी देर बाद भी जब पांचू ऊपर नहीं आया तब मंगला को संदेह हुआ। तब तक मंगला अपनी 'बकुलफूल' के बारे में ही सोचती रही थी; उसके दिल में इस वक्त क्या बीत रही होगी? ज्याठा मोशाई सदा के ऐसे ही हैं। बड़ी बहू बिचारी ने जाने ऐसे कौन-से पाप किये हैं? जनम की दुखियारी रही है बिचारी। भगवान भला ऐसे किसी की लाज लेता है? मैं तो फिर जीती न उठती।

दाँती जकड़ गयी, रोंगटे खड़े हो गये, सारे शरीर में कँपकँपी-सी दौड़ गयी, मंगला की आँखें भर आयीं। ध्यान तुरन्त ही पांचू की तरफ़ दौड़ा, अभी तक नहीं आये?

मंगला का दिल धक् से हो उठा। वह फिर बैठी न रह सकी। उतरकर नीचे आयी। माँ की कोठरी बन्द थी। बाबा अपनी कोठरी में पड़े थे। कहीं नहीं। दरवाज़ा देखा, खुला था। मंगला के पैरों तले धरती निकल गयी। फिर सोचा, "भाई के पीछे गये होंगे। मगर ज्याठा मोशाई इस वक्त आपे में थोड़े ही हैं। लाख बेहया हों, मगर कोई भी समझदार आदमी ऐसा काम हरगिज़ नहीं करेगा। वह ज़रूर पागल हो गये हैं। इनके बस के नहीं हैं। कहीं उल्टा-सीधा न हो जाये!"

मंगला दरवाज़े के पास पांचू के लौट आने की आस में बैठी रही। ज्यों-ज्यों रात बीतती जाती, अपने आँसुओं को रोकने के लिए वह पत्थर होती चली जाती। वह मान किये बैठी रही—"मुझसे बिना कहे गये क्यों?" जब बड़ी देर हो गयी तो उसके मन में अनायास शंका जाग उठी—"ज्याठा मोशाई के पीछे नहीं गये। वे चले गये हैं—सदा के लिए घर छोड़कर चले गये हैं। अब नहीं आयेंगे। उनको बड़ा सदमा पहुँचा है, पर मुझसे कहकर क्यों नहीं गये? साथ नहीं रखना चाहते थे, न सही! मुझसे बताकर तो जाते।"

पार्वती माँ के पूछने पर मंगला ज़ब्त न कर सकी। लाख न चाहने पर भी उसका गला भर आया; आँखें छलछला उठीं। वह बोली—"ज्याठा मोशाई के जाने के बाद ही कहीं..."

इससे अधिक वह न बोल सकी। सुनकर माँ चुपचाप खड़ी रहीं। वे पत्थर हो गयी थीं। एक बार राह पाकर मंगला के आँसू फिर न सके।

सहसा बाहर की कुंडी खड़की। पार्वती माँ दरवाज़े की ओर देखने लगीं। मंगला ने बड़ी

आशा के साथ झपटकर दरवाज़े की कुंडी खोल दी। मंगला और माँ सहमकर पीछे हट गयीं। शिबू ने नूरुद्दीन के साथ घर में प्रवेश किया।

मंगला दरवाज़े के पीछे हो रही थी। माँ से शिबू की आँखें मिलीं। माँ ने फौरन ही मुँह फेर लिया। भारी आवाज़ में शिबू नूरुद्दीन से बोला—"चले आओ भीतर।" कहकर शिबू अन्दर की ओर बढ़ा। नूरुद्दीन पीछे-पीछे चला।

पार्वती माँ ने उन्हें अन्दर जाते हुए देखा। मंगला दरवाज़े के पास ही सहमी हुई खड़ी थी।

शिबू ने दालान में प्रवेश किया। माँ की कोठरी सामने थी। बड़ी बहू बुत की तरह बैठी थी। परेश की लाश पास ही पड़ी थी। दीनू और तुलसी पास ही लेटे हुए थे।

शिबू सीधा कोठरी में पहुँचा। तुलसी सहमकर उठ बैठी। बड़ी बहू ने आँखें ऊपर की ओर उठायीं। वह शिबू को देखने लगी। वह भावना और विचार-शून्य हो चुकी थी। शिबू को देखकर वह न तो चौंकी न सहमी—बस देखती ही रही। शिबू ने शक्ति-भर कड़ककर हुक्म दिया—"उठ!"

बड़ी बहू चुपचाप बैठी ही रही। उसकी निगाहें बराबर शिबू पर ही जमी रहीं।

माँ अन्दर आ गयी थीं। शिबू से तेज़ आवाज़ में बोलीं—"क्यों आया है यहाँ?"

शिबू ने माँ को कोई जवाब न दिया; उनकी तरफ़ देखा भी नहीं। तेज़ी से बड़ी बहू का हाथ पकड़कर घसीटा और डपटकर बोला—"उठ!"

घसीटे जाने के कारण बड़ी बहू औंधी होकर ज़मीन पर गिर पड़ी।

माँ ने आगे बढ़कर बहू का हाथ छुड़ाने की चेष्टा करते हुए शिबू से कहा—"छोड़ दे उसे। जा मेरे घर से चला जा।"

अपने दोनों हाथों से पार्वती माँ शिबू को पीछे ढकेलने लगीं। शिबू ने ज़ोर से माँ को धक्का देते हुए कहा—"चल हट!"

माँ गिरने लगीं। दीनू नीचे ही पड़ा था। चीख मारकर तुलसी झपटी और माँ को दोनों हाथों से पकड़ लिया। दीनू तो बच गया, मगर तुलसी न सँभल सकी। माँ को लिये-लिये ही धरती पर गिर पड़ी।

माँ घबरा गयी थी। वह जल्दी उठ भी न सकी। बड़ी बहू पत्थर की तरह बैठी रही। तुलसी नीचे ही दबी हुई थी; उठने की कोशिश कर रही थी। शिबू भी एक सेकेंड के लिए सहम गया था। नूरुद्दीन कोठरी के दरवाज़े पर आ गया था। उसे देखकर शिबू होश में आया। बड़ी बहू का हाथ झटककर बोला—"उठती है कि नहीं!"

बड़ी बहू ने एक बार बच्चों की तरफ़ देखा; मुँह फेर लिया और चुपचाप उठ खड़ी हुई।

माँ चारों तरफ़ से घिर गयी थीं। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था।

शिबू जल्दी से बड़ी बहू को घसीटता हुआ कोठरी के बाहर ले आया।

"लाओ, चावल लाओ।" बड़ी बहू को नूरू की ओर ढकेलते हुए उसने कहा।

माँ से इसका आशय छिपा न रहा। नूरुद्दीन को देखकर माँ के मन में जो आशंका उत्पन्न

हुई थी, वह ठीक निकली। नूरुद्दीन से शिबू के चावल माँगते ही माँ काबू से बाहर होकर तड़प उठीं। तुलसी अभी भी उन्हें पकड़े हुए खड़ी थी। तुलसी के हाथ से छूटकर माँ आगे आयी। वह हिंसक रूप से क्रुद्ध हो उठी थीं। उन्होंने उछलकर दोनों हाथों से शिबू का गला पकड़ लिया—"मैं तुझे मार डालूँगी। मैं तुझे जीता न छोड़ूँगी।"

पीछे से वार हुआ था। शिबू का गला घुट रहा था। नूरुद्दीन ने आगे बढ़कर शिबू को पार्वती माँ के हाथों से मुक्त किया। शिबू हाँफते हुए पुनः शक्ति-संचय कर माँ की ओर झपटते हुए बोला—"साली, मुझे मारना चाहती थी—हैं!"

नूरुद्दीन ने फौरन ही शिबू को पकड़ लिया—"ये क्या बचपना करते हो बड़े ठाकुर! अरे चावल लो, खाओ-पियो, मौज करो। ये भी अपने धरमशाले जायेंगी, खायेंगी, पियेंगी, मौज करेंगी। गहना है, कपड़ा है..."

"नहीं!" पार्वती माँ ने झपटकर दोनों हाथों से तुलसी और बड़ी बहू को दबोच लिया —"तेरे घर में बहू-बेटियाँ नहीं हैं! जा, उन्हें धरमशाले में ले जा। जा, चला जा। निकल!"

पार्वती माँ इतने ज़ोर से चीखीं कि उनकी आवाज़ उखड़ने लगी। शिबू ने बड़ी बहू को अपनी तरफ़ घसीटकर कहा—"ये मेरी वस्तु है। मैं इसे बेचूँगा।"

"नहीं! नहीं! हट!" माँ हाँफ-हाँफकर धीरे-धीरे अपना विरोध ज़ाहिर कर गफलत में डूब रही थीं। वह गिरने लगीं। तुलसी के कन्धे पर उनका एक हाथ था। अपनी शक्ति को एकत्रित करने के लिए वह जूझ रही थीं। तुलसी के कन्धे पर दबाव पड़ा और वह भी माँ के साथ लड़खड़ाकर बैठ रही।

शिबू की आँखें लाल हो रही थीं। वह तेज़ होकर बोला—"मैं इसे बेचूँगा। मुझे भूख लगी है...भूख! ला, चावल ला!"

बड़ी बहू पत्थर की तरह चुपचाप खड़ी थी। तुलसी माँ के हाथ को अपने कन्धे पर अनुभव करते हुए उसके भार को महसूस कर रही थी। उसका चेहरा तमतमा उठा था। वह अन्दर ही अन्दर अपने से लड़ रही थी।

नूरुद्दीन ने गठरी खोली। शिबू चावल देखकर हिंसक आह्लाद के साथ उस ओर झपटा। तुलसी ने भी चावलों को बड़ी भूखी दृष्टि से देखा।

माँ अभी भी अपने काबू में न आयी थीं। साँस बड़े ज़ोर से चल रही थी।

नूरुद्दीन ने दो मुट्ठी चावल निकालकर धरती पर रख दिये और पोटली बाँधने लगा। शिबू ने चौंककर देखा—"बस?"

"और क्या करूँ, क्या खजाना भर दूँ! हड्डियों का ढाँचा तो खड़ा है। हाँ, इसके लिए आध सेर तक दिया जा सकता है।" नूरुद्दीन ने तुलसी की तरफ़ देखकर कहा।

तुलसी ने उत्साहित होकर उठना चाहा। माँ ने उसे दोनों हाथों से दबोच लिया और भिखारी की तरह दयनीय दृष्टि से शिबू को देखकर कहने लगीं—"बेटा, मेरी जान न ले। मेरी आबरू न ले बेटा! मैं तेरे पाँव पड़ती हूँ।"

पार्वती माँ कहती जातीं और तुलसी को दबोचती जातीं। आँसुओं का वेग प्रबल हो रहा था।

शिबू का ध्यान इस ओर न था। बड़ी बहू के लिए इतने कम चावल मिल सके, इसी बात पर अपने सारे गुस्से का भार रखकर वह बड़ी बहू की ओर झपटा—"साली, तेरे दाम कम लगे।"

पास आने के पहले ही सूखी हड्डियों की शक्ति का भरपूर तमाचा शिबू के मुँह पर पड़ा। बड़ी बहू के हाथ से तमाचा खाकर शिबू चौंक उठा, क्रोध आया। नूरुद्दीन फौरन ही आगे बढ़कर बड़ी बहू के आगे आते हुए, शिबू के दोनों हाथ पकड़ते हुए ज़ोर देकर बोला—"अब ये मेरी हो चुकी है, बड़े ठाकुर!"

मज़बूत हाथों में पड़कर शिबू का गुस्सा सहम गया। बड़ी बहू का हाथ पकड़कर नूरुद्दीन चला। मूक पशु की भाँति बड़ी बहू एक मालिक से दूसरे के हाथों में चली गयी।

कल रात की घटना के बाद से बड़ी बहू एक शब्द भी नहीं बोली थी। परेश मर गया। बड़ी बहू ने एक नज़र से उसे देखकर मुँह फेर लिया था। सारी रात घुटनों को हाथों से बाँधे सिकुड़कर वह बैठी रही थी। फटी आँखों से किसी एक तरफ़ देखते हुए वह वक्त गुज़ार रही थी। उसका ध्यान किसी ओर भी नहीं था। लाज खोकर वह भावशून्य हो गयी थी। उसके चेतन मन में केवल घृणा के संस्कार शेष थे, उसके चित्त की सारी वृत्तियाँ उसी में लय हो गयी थीं। बड़ी बहू बिक गयी। उसके मन में धरमशाले का ज़रा भी भय न था। विवाह के बाद से आज तक शिबू के प्रति उसने अपने मन में घृणा को ही पाला। शिबू ने अपनी पत्नी को सदा दासी की तरह ही मान दिया था। जूते की धूल ज्यों बार-बार झाड़ी जाती है और फिर लिपट जाती है—बड़ी बहू के लिए पति के चरणों के सिवा दूसरी गति ही नहीं थी। शिबू के अत्याचारों का खिलवाड़ बड़ी बहू को अपनी परवशता के प्रति दिन-रात घृणा उत्पन्न कराता रहता। शिबू का भय उस पर हरदम छाया रहता था। दो मुट्ठी चावलों के बदले में बिक जाने के बाद वह पूर्ण रूप से भय-मुक्त हो गयी थी। शिबू को तमाचा मारने का साहस इसी की प्रतिक्रिया थी। धर्मपत्नी, सहधर्मिणी, अर्द्धांगिनी आदि विशेषणों की अधिकारिणी वेद-पुराण-पूजिता नारी व्यवहार में पुरुष की तुच्छ से तुच्छ दासी बनकर, अपने स्वामी द्वारा प्रतिदिन होने वाले अत्याचारों की आदी हो गयी थी। अत्याचारों के प्रति नारी का भय अपनी समस्त क्रिया-प्रतिक्रिया की कड़ी आँचों को सह चुकने के बाद निस्तेज हो चुका था। एक प्रकार का जीवन बिताते-बिताते नारी जीवन का रस खो चुकी थी। फिर दासता के रूप में ही सही, लेकिन नारी के जीवन में नया परिवर्तन आ रहा था, फिर प्रगति हो रही थी। एक क्षण के लिए ही सही, किन्तु दासता की घोर अगति में परिवर्तन द्वारा गति का आभास पाकर नारी ने नया बल पाया था। स्वामी (पुरुष) के रूप में भय और घृणा को तमाचा मारकर नारी ने विद्रोह किया; विद्रोह की भावना का जोश फिर नयी अवगति की ओर बढ़ा।

नूरुद्दीन और बड़ी बहू दालान पार कर दरवाज़े की ओर बढ़ रहे थे। अपनी बेबसी में

जकड़ी हुई पार्वती माँ दालान को अपनी बाँहों में पूरा बल लगाकर कसती जा रही थीं।

चलते हुए नूरुद्दीन ने इशारे से तुलसी को अपनी तरफ़ बुलाया। उसके इस आमन्त्रण में एक विचित्र मादकता थी, लालच था।

बौदी का दादा को तमाचा मारना, उनका नूरुद्दीन के साथ आगे बढ़ना और नूरुद्दीन का इशारा तुलसी को खुले विद्रोह के लिए प्रेरित कर रहा था। तुलसी माँ के शरीर से चिपककर दबी जा रही थी। रो-रोकर पार्वती माँ गुहार कर रही थीं—"अरे, मेरी आबरू गयी! हाय! सुनते हो! तुम्हारे बेटे ने मेरी आबरू ले ली!"

"मैं भी जाऊँगी।" सहसा तुलसी चीख उठी और पूरी ताकत लगाकर माँ की बाँहों के बंधन को तोड़कर, उन्हें धक्का देते हुए तुलसी नूरुद्दीन की तरफ़ धायी।

पार्वती माँ का रुदन सहसा स्तम्भित हो गया। वह आँखें फाड़कर तुलसी को देखने लगीं। तुलसी के पास जाने के लिए पार्वती माँ के प्राण शरीर का मोह त्यागकर निकल आये।

शिबू चावलों के पास बैठा हुआ, पहली मुट्ठी फाँकने जा रहा था, वह चौंककर तुलसी को देखने लगा।

नूरुद्दीन बड़ी बहू का हाथ पकड़कर खड़ा हो गया। तुलसी के लिए उसने मुस्कुराकर दूसरा हाथ बढ़ा दिया।

शिबू कच्चे चावल चबाना छोड़कर सहसा उठकर लपका। नूरुद्दीन अपने बचाव के लिए सावधान हो गया। शिबू ने पास आकर गिड़गिड़ाते हुए कहा—"नूरुद्दीन, इसके चावल?"

नूरुद्दीन अकड़ा—"किसके चावल जी?"

उँगली के इशारे से तुलसी को बताकर गिड़गिड़ाते हुए शिबू चावल माँगने लगा।

नूरुद्दीन दोनों औरतों के साथ दरवाज़े की तरफ़ बढ़ते हुए बोला—"अबे कैसे चावल? ये तो अपनी खुशी से जा रही है।"

तुलसी खुशी से जा रही थी। उसने सुन रखा था कि धरमशाले में सिर्फ़ जवान औरतें ही भर्ती की जाती हैं। वहाँ उन्हें खाने को मिलता है, पहनने को मिलता है, बड़ा सुख मिलता है। तुलसी भी खाना चाहती है, कपड़ा चाहती है और वह सुख चाहती है, जो उसे अभी तक नहीं मिला, जिसकी वह बरसों से कल्पना करती आयी है।

नूरुद्दीन उसे आगे बढ़ाकर ले चला।

शिबू रोते हुए बच्चों की तरह मचला—"मेरा चावल दो!"

चलते-चलते ज़रा रुककर नूरुद्दीन ने एक बार सिर से पैर तक शिबू को देखा और हँस पड़ा। बोला—"अबे, ये टापटिन्नक दिखाता किसे है? साले जो एक फूँक मार दूँगा तो बेटा, कन्ने पर से कट जायेगा। चल बैठ घर में। उल्लू की दुम कहीं का।"

मंगला अपने कमरे की सीढ़ियों पर छिपी हुई खड़ी थी। नूरुद्दीन के दहलीज़ में आते ही उसने जल्दी से अपने कमरे में जाकर भीतर से किवाड़ बन्द कर लिये।

मंगला खिड़की से बाहर देखने लगी। धरमशाले वाला 'बकुल फूल' और 'दीदी मनि' को

लिये हुए चला जा रहा था।

मंगला ज़िन्दगी के सूनेपन में खोयी हुई खड़ी रही।

नूरुद्दीन तुलसी और बड़ी बहू को लेकर चला गया। नूरुद्दीन की डाँट खाकर, अपनी असहायावस्था पर शिबू को बड़ी खिसियाहट छूटी। उसके होंठ काँपने लगे, आँखें बरस पड़ीं। शिबू रोता जाता और बीच-बीच में चावल की फंकी भी लगाता जाता था। माँ की तरफ़ देखा, वह ज़मीन पर झुकी हुई पड़ी थी। शिबू रोता हुआ माँ के पास आया। माँ का सिर उठाकर देखा मुँह खुला हुआ था, आँखें फटी की फटी रह गयी थीं। बचपन से शिबू का यही एक सहारा था। जब उसे दुनिया की गोद में जगह न मिलती तब माँ के पास आता। इस आश्रय के प्रति उसका विश्वास इतना गहरा था कि ऊपरी तौर पर वह उसकी परवाह करना छोड़ चुका था। माँ को मरी हुई देखकर वह घबरा गया। उसकी आँखें उमड़ पड़ीं। वह अपनी माँ की लाश से चिपट गया। सहसा माँ की लाश को ज़मीन पर लिटाकर उसने माँ का खुला हुआ मुँह देखा। फिर अपनी आँखें पोंछीं और लपककर सारा चावल मुट्ठी में उठा लिया। माँ के खुले हुए मुँह में चावल डालकर, शिबू अपनी रूठी हुई माँ को मना लेना चाहता था। फिर मृत्यु की चेतना हुई। शिबू का हाथ रुक गया। खोये हुए बच्चे की तरह वह चारों ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा। कोठरी में दीनू पड़ा था, परेश पड़ा था। पिता का प्रेम आँसुओं के साथ उमड़ रहा था। शिबू उठकर गया। देखा, परेश मर चुका था, दीनू के दिल की धड़कन धीमी-धीमी चल रही थी, वह कुछ ही क्षणों का मेहमान था। शिबू कुछ देर तक आँसुओं-भरी आँखों से उसकी तरफ़ देखता रहा। अचानक उसने बच्चे के अधखुले होंठों में थोड़े-से चावल डाल दिये और उठ खड़ा हुआ। वह बाबा की कोठरी के सामने आया। बाबा कोठरी के दरवाज़े का सहारा लिये खड़े थे। शिबू चुपचाप उनकी तरफ़ देखता रहा। सहसा उसकी मुट्ठी खुली। थोड़े-से चावल बच रहे थे। हथेली झुकाकर, बाबा की कोठरी के सामने चावल गिराने लगा—उसकी नज़रें बाबा के चेहरे पर ही रहीं। देखते-देखते वह चीख मारकर रोता हुआ घर से भागा।

खिड़की से मंगला ने देखा, ज्याठा मोशाई चीखकर बड़ी तेज़ी के साथ भागते चले जा रहे थे।

मंगला की आँखें भर आयीं। शिबू उसके पति का भाई था। शिबू की आड़ में मंगला को अपने पति के चले जाने पर रोना आ रहा था।

मंगला अपने विश्वास को तोड़ना नहीं चाहती थी। वह रोकर अपना अमंगल नहीं करना चाहती थी। उसके मन में कोई ज़ोर देकर कह रहा था—"वह आयेंगे। मुझे छोड़कर वह कैसे रह सकते हैं।"

आँखें पोंछकर मंगला नीचे उतरी।

बाबा अपने दोनों हाथ फैलाये दालान में कुछ टटोलते हुए आगे बढ़ रहे थे।

मंगला ने आगे बढ़कर बाबा का हाथ पकड़ लिया।

बाबा झिझके। स्त्री का हाथ पहचाना—"छोटी बहू!"

ब्याहकर आयी तब से आज तक कभी बाबा से बात नहीं की थी; मंगला ने केवल छोटी-सी 'हूँ' कह दी।

कठोर संयम करते हुए भी बाबा का गला भर आया। गद्गद होकर बोले—"माँ मंगला! जब तू है तो जगत् का कल्याण अवश्य होगा।"

मंगला चुपचाप आँसू बहाती रही। मंगला के सिर पर हाथ फेरते हुए बाबा बोले—"पांचू का कोई अमंगल नहीं होगा, बेटी। वह एक दिन अवश्य आयेगा। अवश्य आयेगा। इसी विश्वास के बल पर ही मेरे प्राण मुक्ति पा रहे हैं।"

मंगला ने फौरन ही गले में आँचल डालकर बाबा के चरण छुये। उसके आँसू उनके चरणों पर टपक रहे थे। बाबा रुंधे हुए कंठ से बोले—"पगली न हो माँ। चल उठ तो, मुझे अपनी माँ के पास ले चल।"

मंगला बाबा को सहारा देकर पार्वती माँ की लाश के पास ले गयी। मंगला का हृदय फटा जा रहा था। बाबा बैठ गये। पार्वती माँ के सिर पर हाथ फेरते हुए बाबा ध्यानमग्न हो गये। अंधी आँखें छलछला उठीं। आवेश में आ रुंधे हुए कंठ से बाबा ने पाठ करना आरम्भ किया:

का तव कान्ता कस्ते पुत्र: संसारोऽयमतीव विचित्र:।
कस्यं त्वं वा कुत आयातस्तत्वं चिंतय तदिदं भ्रातः।।
भज गोविन्दं, भज गोपालं, गोविन्दं! गोपाल!! गोपाल!!!

बाबा पाठ कर रहे थे, मंगला का हृदय फटा जा रहा था। बाबा जब पाठ करते थे, मंगला और उसकी बकुल फूल मुस्कुराया करती थीं, और पार्वती माँ को चिढ़कर, झुंझलाकर अन्त में बाबा की कोठरी में जाना ही पड़ता था। बाबा का वह संन्यास आज सत्य को चरितार्थ कर रहा था। स्वर उखड़ने लगा, क्रमशः क्षीण होने लगा और अन्त में होंठों का कंपन भी रुक गया। मृत्यु को देखते-देखते मंगला यद्यपि कठोर हो गयी थी, फिर भी उसे इस समय भय लग रहा था। संसार में वह अकेली रह जायेगी। बाबा की आखिरी साँस तक घर में एक से दो का सहारा है। मंगला एकटक लगाये बाबा के शरीर में प्राणों की धुकधुकी को देख रही थी। साँसें जल्दी-जल्दी चल रही थीं—वेग क्रमशः शिथिल पड़ने लगा—साँसें टूट-टूटकर चलने लगीं। हर साँस की गति के बाद इति का भ्रम होने लगा—और फिर अन्त भी आ गया।

मंगला अकेली रह गयी। घर में चार लाशें पड़ी थीं। घर खाली था।

हर तरफ़ उसकी नज़र जाती—ईंट-ईंट मुर्दा मालूम पड़ रही थी। इस घर का विगत जीवन इस समय उसके ध्यान में नहीं था, भविष्य को वह देखना चाहती थी और वहीं वह निरुपाय थी, निस्सहाय थी। जी घुटकर रह जाता था।

जीवन के लिए मंगला को कहीं से भी प्रेरणा नहीं मिल रही थी; फिर भी वह मरना नहीं चाहती थी। एक बार 'उनको' देखे बिना उसे मरकर भी चैन नहीं आयेगा। मन घबराता भी

था। कब तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, कब आयेंगे? परन्तु मन अपनी एकमात्र आशा और विश्वास के साथ जीवित रहना चाहता था—जब भी आयें, वह आयेंगे। विकलता अति तीव्र गति से अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर साँसों से टकराने लगी। जीवन की इच्छा कठोर होकर अपनी रक्षा करने लगी। स्मृति में केवल 'उनकी' प्रतीक्षा का संस्कार-मात्र शेष था। मंगला विचारशून्य, भावशून्य थी। मंगला स्तब्ध थी...

उसका शरीर हिला। चेतना ऊपर उठने लगी। अन्तर के स्तर में 'उनका' अति प्रिय स्वर गूँज उठा, क्रमशः सुनायी पड़ने लगा। अन्दर ही अन्दर मंगला को भ्रम की चेतना हुई और उससे विकलता जागी। स्वर अधिक स्पष्ट हुआ।

"मंगला! मंगला!!"

आँखें यद्यपि खुली थीं, किन्तु पथरा-सी गयी थीं। देखने का अन्तर्हठ तीव्र से तीव्रतम हुआ। आकृति धुँधली से स्पष्ट हुई। मंगला ने देखा—'वह' सामने खड़े थे; उनकी गोद में बच्चा था जो रो रहा था। पति को देखते ही, सन्तोष के अतिरेक से मंगला की आँखों में आँसू छलछला आये। अवरुद्ध कंठ से स्वर लड़खड़ाकर फूटा—"आ गये!"

पांचू ने देखा, मंगला फिर झकोला खा रही है। पांचू को कुछ न सूझा। उसने जल्दी से मंगला की गोद में बच्चे को डाल दिया और उसे पकड़कर बैठ गया।

मंगला अपने से लड़कर सावधान हुई। उसने गोद फैलाकर बच्चे को ठीक तरह से सँभाला, फिर उसे गौर से देखा। पांचू कहने लगा—"इसे बचाना होगा, मंगला! इसे बचाने के लिए ही मैं तुम्हारे पास लाया हूँ।"

मंगला ने बच्चे को गोद में चिपका लिया। बच्चे के सम्बन्ध में कोई प्रश्न पूछने के पहले उसके मन में पांचू को घर की बात बताने की इच्छा हो रही थी। आँखों में आँसू भरकर मंगला ने बाबा और माँ की लाशों की तरफ़ देखा।

पांचू ने पहले ही सब कुछ देख लिया था। घर में प्रवेश करते ही, पहली नज़र डालने के साथ ही साथ उसे अपने को मज़बूत बनाना पड़ा था। मंगला बैठी थी। उसने मंगला को आवाज़ दी। मंगला न बोली। वह पास आया, दो आवाज़ें दीं। मंगला की आँखें खुली हुई थीं। पांचू को विश्वास हुआ, वह जीवित है। नाक के पास हाथ ले जाकर साँस को महसूस किया। उसे आश्चर्य हुआ, मंगला उसे देख क्यों नहीं पाती; उसकी आवाज़ क्यों नहीं सुन पाती? उसने मंगला को हिलाना शुरू किया, कई आवाज़ें दीं। जब मंगला को होश आया, तब उसने पांचू को देखा, उसकी आँखों में आँसू आये और वह बोली। पांचू ने तब सन्तोष की एक गहरी साँस ली थी। बच्चे को उसकी गोद में डाल देने के बाद जब मंगला ने अपने को सँभालकर बच्चे को सँभाल लिया तब उसे विश्वास के साथ-साथ प्रसन्नता भी हुई। फिर जब वह बाबा और माँ की लाशों को देखने लगी तो पांचू घबराया—दुःख का दौरा कहीं जीती बाजी फिर न हरा दे! उसने मंगला के दिल से मृत्यु का बोझ हटाना चाहा। बड़े धैर्य के साथ उसने कहा—"जो होना था, वह हो गया। अब इसे सँभालो। इसे बचाओ। इसे बचाने के लिए

ही हम-तुम जियेंगे।"

अविश्वास के वातावरण में जीवन के प्रति विश्वास की इस दृढ़ता ने पति और पत्नी, दोनों को ही अपूर्व धैर्य और बल दिया। स्वयं पांचू को भी अपनी इस बात के द्वारा अपने अन्दर की अदमनीय, चिर विजयी, विकासमयी शक्ति का परिचय मिला। प्रलय में सृष्टि के बीजांकुर फूटने लगे।

पांचू बोला—"मैं सब प्रबन्ध करने जाता हूँ। बच्चे की जीवन-रक्षा...और...जीवन का मृत्यु के प्रति ऋण भी उतारना है।" उसने सशंकित स्वर में पूछा—"तुम घबराओगी तो नहीं?"

पति को आश्वासन देते हुए मंगला ने गर्दन हिलाई; कहा—"अब नहीं।" फिर ममता-भरी दृष्टि से वह अपनी गोद में सोते हुए बच्चे को देखने लगी।

●●●